CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाकवि बाणभट्ट

विरचित

कादम्बरी

(महाश्वेतावृत्तान्त)

सम्पादक

डॉ० देवर्षि सनाढ्य, एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, गोरखपुर विश्वविद्यालय

श्री विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, एम० ए०, शास्त्री

कुल सचिव, डा० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

आलोचनाकार

डॉ० विद्यानिवास मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रोफेसर, तथा अध्यक्ष, आधुनिक भाषा एवं भाषा-विज्ञान-विभाग

डा० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

ग्रन्थालय

आगत क्रमांक

द्वारा प्रदत्त

लखनऊ

वाराणसी

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

015,3 D6B,1
152L7

मूल्य : पाँच रुपया

तृतीय संस्करण : १९७७ ई०

विश्वविद्यालय प्रकाशन
संशो. मूल्य
५८
चौक - वाराणसी

❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀
वाराणसी।
आगत क्रमांक......1255..........
दिनांक..........14/6..........

प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी।

मुद्रक : भोला यंत्रालय, खजुरी, वाराणसी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुजनवनजवनविसरे हंसो जगतामनन्यमधुसिन्धुः।
विहरति सकलो 'भैरवनाथ' विभुर्यः सदा गुणैर्विदितः॥

स्तुतीनां वर्णैर्ग्लौमधुरकरकान्तिः कलरवा
विभुं नाथं शम्भुं प्रणतिनवभावैः स्वरगुरुम्।
समर्चन्ती वाणी कमलसरघा या रसधुरो
'महाश्वेता' सेयं तदधिशयशोभं विलसताम्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कादम्बरीका 'महाश्वेतावृत्तांत' कादम्बरीके पाठकोंके निमित्त विशेष महत्त्व-पूर्ण प्रसंग है। बाणकी रसमयी वाणीका कला-विकास इस संविधानकमें अपनी पराकाष्ठाको पहुँचा है। गद्य-रचनाका अद्भुत संघटन, अलंकारोंकी मार्मिक योजना, वर्णनकी सूक्ष्मदृष्टि तथा प्रेमकी तीव्र अनुभूति, आकर्षण एवं वियोग-व्यथाका विश्वव्यापी संवेदन 'महाश्वेतावृत्तान्त' में अत्यन्त सजीव है।

प्रस्तुत संदर्भको उपयोगी बनाने के निमित्त उसकी टीका आदिके संयोजनमें यथासंभव समस्त प्राप्त सामग्रीका उपयोग करनेकी चेष्टा की गई है। इस पुस्तकमें जो कुछ 'सु' है, वह इसी चेष्टा का परिणाम है, जो कुछ 'कु' है, उसके लिए संपादकद्वय क्षमा-याचना सहित अपराधी हैं।

भाई श्री विद्यानिवास मिश्रने विद्वत्तापूर्ण आलोचना लिखनेमें जो श्रम उठाया, उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना, मानो अपनेको ही धन्यवाद देना है। उनकी आत्मीयता-प्राप्ति पर सम्पादकोंको अभिमान है।

श्री हेमचन्द्र जोशी एवं श्री राजकिशोरमणि त्रिपाठी बन्धुओंकी यदि इस अवसरपर वन्दना न हो तो................?

विजयादशमी, २०१७ वि०
विश्वविद्यालय,
गोरखपुर।

• देवर्षि सनाढ्य
• विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कादम्बरी-मंगलम्

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः॥ १ ॥

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः॥ २ ॥

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्धलक्षया।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्॥ ३ ॥

नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि॥ ४ ॥

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात् कस्य भयं न जायते।
विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निहितं सदा मुखे॥ ५ ॥

कटु क्वणन्तो मलदायकः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनशृंखला इव।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव॥ ६ ॥

सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम्।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम्॥ ७ ॥

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥ ८ ॥

हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः।
निरन्तरश्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव॥ ९ ॥

बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे ।
सरस्वती सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे ॥ ११ ॥

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्त्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥ १२ ॥

हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।
अभूत् सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥ १३ ॥

विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः ।
उषस्सु लग्नाः श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥ १४ ॥

विधानसंपादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः ।
मखैरसङ्ख्यैरजयत् सुरालयं सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव ॥ १५ ॥

स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलोपमं क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृताम् ॥ १६ ॥

महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः ।
द्विषन् मनः प्राविविशुः कृतान्तरा गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा इव ॥ १७ ॥

द्विशामलीकामलभङ्गताङ्गतस्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः ।
चकार यस्याध्वरधूमसञ्चयो मलीमसः शुक्लतरं निजं यशः ॥ १८ ॥

सरस्वतीपाणिसरोजसंपुटप्रमृष्टहोमश्रमसीकराम्भसः ।
यशोंशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत ॥ १९ ॥

द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठचया महामनोमोहमलीमसान्धया ।
अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ॥ २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाणभट्ट : व्यक्तित्व और कृतित्व

व्यक्तित्व

सौभाग्यवश बाणभट्टने स्वयं अपने जीवनके बारेमें यथेष्ट सूचना दे दी है। यह सूचना न केवल बाणभट्टके बारेमें बल्कि बाणके तत्कालीन समाजके बारेमें भी बहुत ही उपयोगी सूचना है और एक तरहसे समग्र भारतीय साहित्यमें अपने ढंगकी अद्वितीय सूचना है। हमें उनके हर्षचरितसे तथा उनकी कादम्बरीके पूर्वश्लोकोंसे जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसके आधारपर बाणका जीवनचरित संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है। उनकी कादम्बरीमें चित्रित पात्रोंके साथ बाणके व्यक्तित्वका तादात्म्य प्राप्त करनेकी एक अद्‌भुत चेष्टा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने की है और उन्होंने बाणके व्यक्तित्वके विकासकी बहुत सजीव कल्पना अपने उपन्यास 'बाणभट्टकी आत्मकथा' में प्रस्तुत की है। हम यहाँ उस कल्पनात्मक स्तरपर तो नहीं, पर तथ्योंको उनकी रचनाके आलोकमें रखते हुए उनके जीवनका संक्षिप्त परिचय नीचे दे रहे हैं।[1]

बाणभट्टका जन्म वात्स्यायन वंशमें हुआ था। बाणभट्टने अपने वृद्ध प्रपितामह कुबेरसे प्रारम्भ करके अपना वंशानुक्रम इस प्रकार दिया है :—

कुबेर

अच्युत | ईशान | हर | पाशुपत

पाशुपत → अर्थपति

अर्थपति → भृगु | हंस | शुचि | कवि | महीदत्त | धर्म | जातवेदा | चित्रभानु | लक्षण | अहिस्त | विश्वरूप

चित्रभानु → बाणभट्ट

बाणभट्ट → (भूषणभट्ट या पुलिन्दभट्ट)

---

१. मंगल-श्लोक सं० १०, ११, १२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुबेरके बारेमें कादम्बरीमें यह सूचना मिलती है कि उनके चरणकमलोंकी वन्दना अनेक गुरुओंने की है तथा वे वैदिक यागविधिके अनुष्ठाता सोमपायी शास्त्रज्ञ ब्राह्मण थे। उनके घरमें सुग्गे भी विद्वानोंको पद-पदपर यजु और सामके पाठ करते समय अशुद्धि करनेपर झिड़की दे देते थे। अनुमानतः कुबेरका समय बाणभट्टसे १०० वर्ष पूर्व रहा होगा और यह समय मगधके पूर्वकालीन गुप्त-सम्राटोंके भाग्य-विपर्ययका समय है। ४६० ई० के प्रारम्भ से लेकर ५३३ ई० तक इस वंशमें इनके ९-१० नाम मिलते हैं। सबसे प्रभावशाली नाम बालादित्यका है। कुबेर इस भानुगुप्त बालादित्यके समकालीन रहे होंगे। इसने हूणोंको निश्शेष करने में बहुत बड़ा योगदान दिया था। कदाचित् कुबेर इनके द्वारा अत्यन्त सम्मानित हुए होंगे। कुबेरके पौत्र अर्थपति[2] हुए, जिनके शिष्योंने बहुत दूरतक उनकी विद्याकी सुरभि फैलायी। अर्थपतिने असंख्य यज्ञ किये। उनके पुत्र चित्रभानु[3] हुए। उनकी भी विद्या, साधना तथा यज्ञपरायणता प्रथित थी।। चित्रभानुसे ही राजदेवीमें बाण उत्पन्न हुए। बाणका बाल्य-जीवन बड़े कष्टका रहा। जन्मते ही इनकी माताका देहान्त हो गया। यज्ञोपवीत हो जानेके बाद अध्ययनके मध्यकालमें ही, जब ये १४ वर्षके थे तभी उनके पिता भी स्वर्गवासी हो गये। बाणके पूर्वजोंके पास अतुल सम्पत्ति थी, इसलिए वे यज्ञ और दानकी परम्परा अक्षुण्ण रख सके थे। यह स्मरण रखनेकी बात है कि गुप्त वाकाटक वंश तो प्रसिद्ध ब्राह्मण-वंश था ही। मयूर शर्माने कुन्तल प्रदेशमें कदम्ब वंशकी संस्थापना की थी। बाण भी ऐसे ही किसी वंशमें उत्पन्न हुए थे। बाणभट्टके गुरुका नाम भर्वुशर्मा था। इनकी वन्दना कादम्बरीके आमुखमें बाणने इस प्रकार की है कि "मैं गुरु भर्वुशर्माके उन चरण-कमलोंकी वन्दना करता हूँ, जिनकी वन्दना सिर झुकाकर अनेक मौखरि राजाओंने की है तथा उनके सामन्तोंके मुकुटसे निरन्तर संघृष्ट होनेके कारण जिनके चरणोंकी उँगलियाँ रक्तिम हो जाती थीं।[4] मौखरि सम्राटोंके अभ्युदयका समय ईसाकी छठीं

---

२. मं० श्लो० १४

३. मं० श्लो० १५

४. मं० श्लो० २

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शताब्दीका उत्तरार्ध ही है। इस प्रकार उनके कुलगुरुके रूपमें यदि भर्वुशर्माकी प्रतिष्ठा रही हो और उन्हें लम्बी आयु मिली हो तो बाणके कथनमें कोई अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इस प्रकार बाणभट्टका जन्म लक्ष्मी और सरस्वतीकी छायामें हुआ। अत्यन्त कल्पनाशील और उमंगी होनेके कारण ही बाणभट्टकी स्वच्छन्द वृत्तिको पिताके मरते ही यह सुअवसर प्राप्त हुआ कि वे देश-देशान्तरोंका भ्रमण करें। विभव उनके पास था ही, उनके साथ बहुत लम्बी फौज चली।

शूद्रा विमातासे उत्पन्न दो भाई चन्द्रसेन और मातृभाषाकवि परम मित्र ईशान, प्रेमी मित्र रुद्र और नारायण, विद्वान् मित्र वारवाण और वासबाण, गीतिकार वेणीभारत, प्राकृत भाषाके कवि कुलपुत्र वायुविकार, बन्दीजन अनंग वाण और सूचीबाण, संन्यासिनी चक्रवाकिका, सँपेरा मयूरक, तमोली चण्डक, वैद्य मन्दारक, वाचक सुदृष्टि, सुनार चामीकर, हीरेका काम करनेवाला सिन्धुषेण, कायस्थ गोविन्दक, चित्रकार वीरवर्मा, शिल्पी कुमारदत्त, मृदंगी जीमूत, गायक सोमिल और ग्रहादित्य, प्रसाधिका कुरंगिका, बाँसुरी बजानेवाले मधुकर और पारावत, संगीताचार्य दर्दुरक, चम्पी करनेवाली केरलिका, नचानेवाला तांडविक, जुआरी आखंडल, धूर्त्त भीमक, नर्त्तक शिखण्डक, नर्तकी हरिणका, भिक्षु सुमति, क्षपणक वीरदेव, कहानी सुनानेवाला जयसेन, शैव वक्रघोण, तांत्रिक कराल, भूगर्भ-विशारद लोहिताक्ष, रसायनवेत्ता विहंगम, झांझ बजानेवाला दामोदर, ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष और संन्यासी ताम्रचूड़क तथा अन्य और साथी उनके साथ चले। इतनी भिन्न रुचियोंवाले व्यक्तियोंको अपने साथ लेकर लम्बी यात्रापर चलना संपत्तिके अलावा बड़ी सर्वग्राहिणी प्रतिभाकी अपेक्षा रखता है।

बाणभट्टने बादमें अपने इस स्वच्छन्द भ्रमणका अनुताप भी व्यक्त किया है। शुरू-शुरूमें लगता है कि उनका भ्रमण विविध प्रकारके देशोंके पर्यटन तथा अनेक प्रकारकी कलाओंके दिग्दर्शन तक ही सीमित था, पर जैसे-जैसे अनुभव परिपक्व होता गया, वैसे-वैसे उनके भ्रमणका उद्देश्य भी महान् होता गया। उन्होंने अनेक राजकुलोंको देखा, उनकी कार्यविधिका निरीक्षण किया तथा इनके साथ ही अनेक गुरुकुलोंकी सेवा की, जहाँ विद्याध्ययन भी इन्होंने किया। बहुत समयके बाद (अनुमानतः ३० वर्ष बाद) वे पुनः अपनी जन्मभूमिमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वापस आये। इस भ्रमणमें उन्होंने अपने व्यक्तित्व और अपनी प्रतिभाके कारण प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त की, नहीं तो वापस आनेपर आप्त परिजनोंके द्वारा उनका स्वागत नहीं होता। कुछ समय घर रहनेके बाद इन्हें स्थाण्वीश्वरके अधिपति सम्राट् श्रीहर्षदेवके भ्राता कृष्णके पाससे एक सन्देश मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण बाणके बारेमें सुन चुके थे और दूरदर्शी होनेके कारण यह समझते थे कि बिना बाणभट्ट जैसे विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्तिको साथ लिये वर्द्धन-वंशका साम्राज्य स्थिर नहीं हो सकता। बाणभट्टका वंश राज-परम्पराओंका वंश था और उनका व्यक्तित्व अनेक देशोंके देखने तथा अनेक स्थितियोंके अध्ययन करनेके कारण स्वयं ही एक बहुत बड़ी निधि था। हर्षदेवने कुछ पिशुन लोगोंसे बाणकी कला-यात्राके बारेमें कुछ अन्यथा सुनकर उनके प्रति कुछ भ्रान्त धारणा बना ली थी और पहले बहुत क्रुद्ध भी हुए थे कि बाणभट्ट ऐसे वंशमें उत्पन्न होकर भी इस प्रकार निम्न श्रेणीके लोगोंके साथ घूमकर अपनी प्रतिष्ठा खो रहे हैं। कृष्णने समझाया भी कि बचपनमें कौन नहीं ऐसी चपलताएँ करता? पर श्रीहर्षने इस बातपर कुछ-कुछ ही विश्वास किया। इसीलिए कृष्णने इसकी आवश्यकता समझी कि बाणसे सम्राट्का साक्षात्कार हो जाय और उनकी भ्रान्ति अपने-आप निर्मूल सिद्ध हो जाय।

वस्तुतः यहींसे बाणके जीवनमें एक नया मोड़ शुरू होता है। यह कहना कि बाण राजाश्रयके लोभमें हर्षके पास गये बाणके साथ बहुत बड़ा अपराध करना होगा। कारण यह है कि यदि ऐसा होता तो वे इतनी स्वच्छन्दतासे अनेक प्रकारके राजकुलोंमें न घूमते, पहले ही हर्षके आश्रयमें गये होते या कृष्णके सन्देश मिलनेके पूर्व ही हर्षके पास पहुँचे होते; पर बाणको धनकी आवश्यकता नहीं थी, आवश्यकता थी प्रतिष्ठाकी। जब उन्हें यह सूचना मिली कि व्यक्ति हर्ष नहीं, बल्कि सम्राट् हर्ष उनके सम्बन्धमें गलत धारणा बना चुके हैं तो उन्हें यह शंका हुई कि उनकी प्रतिष्ठापर आघात पहुँचनेवाला है। आखिर सम्राट् ही तो उस युगमें जनमतका प्रतिनिधि था। इसलिए अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए बाणभट्ट कृष्ण-जैसा मित्र पाकर ही श्रीहर्षके पास जानेका निश्चय किया। जानेके पूर्व उन्होंने शंकरकी पूजा की, हाथमें रुद्राक्ष लिया, धवल दुकूल वस्त्र पहिना, हवन किया, ब्राह्मणोंको दान दिया और मलयगिरि चन्दनका लेप करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वेत माला धारण की। उनकी छोटी बुआ मालतीने उनका तिलक किया और तब दाहिना पैर पहले रखकर प्रीतिकूटसे बाहर निकले। इससे यह लगता है कि श्रीहर्षके यहाँ जाते समय बाणभट्टके मनमें गहरी आशंकाएँ थीं। ये आशंकाएँ अपने लिए उतनी नहीं थीं, जितनी अपने कुलके लिए और अपने कुलकी मर्यादाके लिए। वे यह जानते थे कि श्रीहर्षसे मुठभेड़ होनेपर सम्मानकी रक्षाके लिए प्रगल्भ होना पड़ेगा। उस समय अविनय भी हो सकता है और अविनय दिखलाना परम्परा के विरुद्ध होगा। इसीलिए अपने मनमें विवेकको जगाकर ही वे आगे बढ़े। पहले दिन ग्रीष्म-सन्तप्त, पानीके कष्टसे पीड़ित हो उन्होंने मल्लकूट नामक गाँवमें डेरा डाला। वहाँ उनके जगत्पति नामके मित्र रहते थे, जो उनके रिश्तेमें भाई भी लगते थे। रातभर वहाँ रहकर दूसरे दिन गंगाको पार करके याष्टिक गृहक नामके जंगली गाँवमें रात बितायी। तीसरे दिन मणितार नगरके समीप, जहांपर श्रीहर्षदेवकी छावनी पड़ी हुई थी, वहाँ पहुँचे। प्रीतिकूट शोणके किनारे था; और साथ ही यह गंगा और शोणके संगमसे बहुत दूर भी नहीं था, और मणितारतक ढाई दिनोंका ही रास्ता वहाँ से है इसलिए अनुमान किया जाता है कि प्रीतिकूट ४०—५० मीलके आस-पास ही मणितार रहा होगा। यह स्थान गंगाके उत्तर देवरिया या छपरा जिलेमें कहीं होना चाहिए।

यह भेंट हर्षवर्द्धन और भास्करवर्माके बीच हुई सैन्यसन्धिके बाद तथा राज्यश्रीकी खोजके बाद ही हुई होगी; क्योंकि हर्षचरितमें बाणने वहाँतक ही वृत्तान्त लिखा है। श्रीहर्षदेव राज्यश्रीकी तलाश करके उन्हें वापस ला रहे थे और वे शशाङ्कके विरुद्ध प्रयाण की तैयारी करके भी भास्करवर्माके दूतके आनेके कारण ढिलक गये। शशांक अधिकांश इतिहासकारोंके मतमें गौड-नरेश था। स्व० राखालदास वन्द्योपाध्यायके मतमें वे मगधके गुप्त-सिंहासनके वास्तविक उत्तराधिकारी थे, और उनका विरुद नरेन्द्र गुप्त था। शशांकको हर्ष और भास्कर-वर्माकी सैन्य-सन्धिके कारण बहुत ही विकट युद्ध करना पड़ा और इसमें वे टिक न सके। आश्चर्यकी बात है कि बाणभट्टने न तो शशांककी विजयकी कहानी ही दी है न श्रीहर्षदेवके पुलकेशी द्वितीय द्वारा ६२९-३० ई० के आस-पास पराजित होनेकी ही चर्चा की है। दूसरी ओर ६३० के बाद हर्षदेवके दर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बारमें प्रभूत सम्मान पानेवाले युवन्चांगने भी बाणभट्टका उल्लेख नहीं किया है। इसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो बाणभट्टका निधन ६२० के पूर्व हो चुका था या हर्षदेवकी उत्तरकालीन धार्मिक नीतिसे क्षुब्ध होकर ही बाणभट्ट उनके राजदरबारसे विलग हो गये थे। भर्वुशर्माको गुरु माननेवाली बात और हर्षदेवके बारेमें चक्रवर्ती होनेका ही उल्लेख यह संकेतित करता है कि बाणभट्ट साथी थे हर्षदेवके अभ्युदयके ज्वारके, न कि उसके भाटे के। इसीसे उनकी दोनों कृतियाँ—हर्षचरित नामक आख्यायिका तथा कादम्बरी नामकी कथा—अधूरी ही रह गयीं। कादम्बरीका शेष अंश पिताके ही संकेतपर उनके पुत्र पुलिनभट्ट या भूषणभट्टने लिखा। एक तरह उसने अपनी मौलिक प्रतिभा पिताके कार्यको पूरा करनेमें ही संकल्प कर दी और बाणकी शैलीके साथ एकाकार हो जानेके कारण ही वह संस्कृत-साहित्यके इतिहासमें अपने लिए अलग स्थान नहीं बना सका, नहीं तो स्वयं ग्रन्थ लिखनेपर उसका भी नाम सुबन्धु, दण्डी, बाण, धनपाल, भोजके साथ लिया जाता। यह भी उल्लेखनीय है कि हर्षचरितका आख्यान अष्टम उच्छ्वासके बाद आगे नहीं बढ़ा। यदि बाणभट्टमें हर्षदेवके लिए कुछ श्रद्धा होती तो वे कादम्बरीकी तरह हर्षचरितको भी पूरा करनेका भार अपने पुत्रपर छोड़कर मरते। पहली भेंटमें ही बाणके स्वस्ति कहनेपर राजाने उन्हें प्रणाम नहीं किया, उलटे अन्य पुरुषमें उपेक्षाभावके एक वचनमें यह प्रश्न किया 'यह बाण वही है' और उनकी ओरसे मुँह यह कहते हुए फेर लिया कि यह बहुत बड़ा भुजंग है। बाणको बात लगी और उन्होंने जवाब दिया, "कैसे अनजानकी तरह दूसरेके बहकानेमें आकर बिना कुछ सोचे-समझे आप इस प्रकार कृपा कर रहे हैं। आपने मुझे साधारण कोटिमें रखकर ही मेरे बारेमें गलत धारणा बनायी है, नहीं तो मैं सोमपायी वात्स्यायन वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण हूँ, मेरे उपनयन आदि संस्कार यथासमय किये गये। मैंने वेदांग सहित चारों वेदोंका सम्यक् अध्ययन किया है, शास्त्रोंका पारायण किया, विवाह करनेके अनन्तर गृहस्थ धर्ममें अवस्थित हूँ। मेरी भुजङ्गता आपको क्या दिखी? बचपनमें किसको चंचलता नहीं होती? मैं अपनी सफाई क्या दूँ? समय पाकर स्वयं आप मुझे जान जायँगे।" कुछ ही दिनोंमें बाणको हर्षदेवके दरबारमें बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। इसकी सूचना बादके कवियोंने दी है। हर्षके दरबारमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाणके अलावा मातंग दिवाकर, मयूरभट्ट और धावकके नाम भी मिलते हैं। धर्मके बारेमें शैव होते हुए भी उदार दृष्टि रखनेवाले बाणभट्टका निर्वाह हर्षकी वादकी नीतिसे होना सम्भव नहीं था। उनका हर्षदेवके साथ समागम हर्षके लिए चाहे कितना ही लाभप्रद हुआ होगा, बाणके लिए केवल इसलिए आवश्यक था कि उसके बिना बाणकी कुल-प्रतिष्ठा सुरक्षित नहीं होती। बाणने स्वयं लिखा है कि सेवामें बड़ा कष्ट है। नौकरी बहुत विषम है और न उसमें पुरखोंकी ही कोई प्रीति है, न कुलमें सेवा होती आ रही है, न हर्षके किसी उपकारका ही प्रतिदान देना है, न उनसे बचपनकी कोई मैत्री ही है, न उनके पास जानेमें उसके कुलका कोई गौरव ही है, न कोई विद्या की जिज्ञासा ही वहाँ शान्त हो सकती है, न राजाके चापलूसोंसे कोई परिचय है, न धन खर्च करके उन्हें वशमें करनेकी तरकीब ही मालूम है। लेकिन मित्रोंने बुलाया है, जाना ही है। बाणभट्टकी यह मनोवृत्ति ही उन्हें हर्ष और उनके दरबारसे विलग रख सकी है, नहीं तो वे भी धावक और मातंग दिवाकरकी भाँति ही केवल नाममात्रके लिए इतिहासमें स्मरण किये जाते।

हर्षचरितको स्तुति-काव्य कहा जा सकता है या नहीं, इस सम्बन्धमें आगे विवेचना होगी, यहाँ इतना ही संकेत करना पर्याप्त होगा कि यदि इसका उद्देश्य हर्षको प्रसन्न करना होता तो कदाचित् अपने ही वंशका परिचय इसमें पहले इतने दर्पके साथ नहीं दिया जाता। हर्षचरित केवल तत्कालीन प्रचलित गद्य-साहित्यके एक विशेष प्रकारमें कौशल प्रदर्शित करनेके लिए लिखा गया था, इसी-लिए उसमें हर्षसे अधिक हर्षके समयका विवरण है, जिसके अन्तर्गत जहाँ एक ओर राजदरबार और राजाओंके संधि-विग्रह हैं, वहीं दूसरी ओर शान्त तपोवन, ब्राह्मणोंका आश्रम, जंगली गाँव और अपने बन्धु-बान्धव अधिक हैं, जो बाणके बड़प्पनमें अपनेको साझीदार मानते हैं। अनुश्रुतिमें बाणभट्टके दो पुत्र बताये जाते हैं। ज्येष्ठ पुत्रके बारेमें कहा जाता है कि वह केवल विद्वान् था, सहृदय नहीं था। मरनेके पहले अपनी प्रिय रचना कादम्बरीका भार बाणभट्ट अपने सुशिक्षित पुत्रोंमेंसे एक को देना चाहते थे। उन्होंने दोनोंकी परीक्षा लेनी चाही। सामने एक ठूँठा पेड़ था, उसीका वर्णन करने के लिए, दोनोंसे बारी-बारीसे कहा। जेठने कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"शुष्कः काष्ठः तिष्ठत्यग्रे।" छोटेकी बारी आयी तो उसने सँवारा—"नीरस-तरुरिह विलसति पुरतः।" बाणने परख लिया कि सहृदयता किसमें है और उन्होंने यह काम छोटेको ही सौंपा। बाणभट्टका गार्हस्थ्य जीवन बहुत ही सुखमय था। अपने कुलमें वह सबसे बड़े थे और उन्हें अपने छोटे भाइयोंसे बहुत ही सम्मान भी प्राप्त हुआ था। सहोदर भाई तो उनके कोई नहीं थे, न उनके चाचाके लड़के थे, उनके पारशव भ्राता थे और उनके दूसरे बचपनके साथी भी बराबर उनके आश्रित बने रहे। बाणभट्टकी दिनचर्या समृद्ध और विद्याव्यसनी ब्राह्मणकी थी। विद्याभ्यास, यज्ञक्रिया, शास्त्रार्थ, काव्यगोष्ठी, पुराण-पाठ, एवं समय-समयपर उत्सवोंमें संगीत, नृत्य—ऐसे ही क्रिया-कलापोंमें उनका दिन बीतता था। ऐसे आकर्षक और पूर्ण व्यक्तित्वके बारेमें प्रणयकी कल्पना असम्भाव्य नहीं जानी जाती, यद्यपि हर्षचरितमें इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं है। बाणभट्टने बचपनमें शरारत चाहे जितनी की हो पर बादके जीवनमें वे बहुत गम्भीर रहे। उनकी रचना कादम्बरीसे इसीका साक्ष्य मिलता है। उनमें प्रेमका आदर्श छिछला न होकर बड़ा अतलस्पर्शी था। कायिक विलासको बाणने कभी ऊँची दृष्टिसे नहीं देखा। नारी बाणके लिए बहुत आदर और श्रद्धाकी वस्तु थी। उनके जितने भी नारीपात्र हैं, वे सभी शुचितासे द्योतित हैं। बाणभट्टकी दृष्टि निषेधकी नहीं है, यह इसीसे सूचित है कि वे जैसे एक ओर बूढ़े भैरवाचार्य-जैसे साधक और दिवाकरमित्र-जैसे सौगतको सहानुभूतिका दान दे सकते हैं, वहीं दूसरी ओर राजकुमार और गन्धर्वकन्याको भी। वे प्रकृति और मनुष्य दोनोंमें समान रूपसे रमे हुए कवि थे। जीवनके अनुभवकी व्यापकता और सहानुभूतिकी तरलताने उनकी प्रतिभाको निखार दिया था। इसमें सन्देह नहीं है कि बाणभट्ट जैसे बहुश्रुत और सहृदय कृती संस्कृत-साहित्य-में या तो कालिदास हुए हैं या फिर—पण्डितराज जगन्नाथ ही!

कृतित्व

वैसे बाणभट्टके नामसे चार रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—कादम्बरी कथा, हर्षचरित आख्यायिका, पार्वती-परिणय नाटक और चण्डीशतक (स्तुति-काव्य)। परन्तु चण्डीशतक और पार्वती-परिणय निश्चित रूपसे ही किसी दूसरे बाणकी रचना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, कादम्बरीकार और हर्षचरितकारकी नहीं। कादम्बरी और हर्षचरित एक ही व्यक्तिकी रचनाएँ हैं, यह इसीसे प्रमाणित है कि हर्षचरितमें दिया गया वंश-परिचय कादम्बरीके वंश-परिचयसे एकदम मेल खाता है तथा भाषा, शैली और भावभूमिकी दृष्टिसे भी दोनों एक ही व्यक्ति द्वारा रचित हैं। दोनों ग्रन्थोंमें कौन पूर्व है, यह निर्णय करना बहुत ही कठिन है। तब भी रचनाकी परिपक्वताकी दृष्टिसे कादम्बरी निश्चित रूपसे हर्षचरितके बादकी रचना जान पड़ती है। हर्षचरितमें भाषा प्रयोगकी अवस्थामें अधिक है तथा उसमें सन्दर्भोंका संग्रथन भी कादम्बरी जैसा संतुलित नहीं है। समूचे हर्षचरितमें इतिहासको साहित्यमें बाँधनेका प्रयत्न किया गया है। राजनीतिक इतिहास तो यह बन नहीं पाया है। पर उस युगका सांस्कृतिक इतिहास—यह बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। इसमें तत्कालीन जन्मोत्सव, मरणके बादके संस्कार और आचार, तन्त्रसाधन, अरण्य जीवन, ब्राह्मणोंका जीवन, प्रयाग-वर्णन, राजकुल-वर्णन तथा बीच-बीचमें लोकाचारके विविध पक्ष बाणभट्टने पिरोकर रखे हैं। इन वर्णनोंमें अलंकार-बहुलता तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षणका सर्वत्र प्रमाण मिलता है। बाणभट्ट वर्णनमें विशदताके पक्षपाती हैं, इसीलिए वे तत्कालीन चित्रकलाकी ही तरह कहीं कोई अंश अनालोकित और रिक्त नहीं छोड़ना चाहते। कहीं-कहीं यह लगता है कि वर्णन अनावश्यक है और कथाके प्रवाहमें बाधक है। यह स्मरण रखनेकी बात है कि जिस अर्थमें आधुनिक साहित्यमें कथा, कहानी गृहीत हैं, उस अर्थमें उस युगमें गृहीत नहीं थे। कथा और आख्यायिका ये दोनों विधाएँ गद्य नहीं बल्कि गद्यकाव्यके अन्तर्गत आती थीं। इसीलिए इनका काव्यत्व प्रधान है, कथात्व अप्रधान। काव्यकी परम्परा घटनाको केवल सूत्रके रूपमें देखती है। महाकाव्यमें भी घटनाओंका संग्रथन विविध वर्णनोंको सन्निविष्ट करनेके उद्देश्यसे किये जाते थे। किरातार्जुनीय तथा शिशुपाल-वधमें कथाका अंश बहुत ही कम है। रघुवंशकी तरह एक बड़े वंशकी लम्बी गाथा उनमें नहीं है, न रामायणकी तरह एक व्यक्तिका सम्पूर्ण चरित ही उनमें हैं, केवल अंशमात्र दोनों काव्योंमें है। बाण भारविके उत्तरवर्ती और माघके पूर्ववर्ती हैं। वर्णनका यह लोभ इसी युगके नाटककार भवभूतिको भी उतना ही है। उत्तररामचरितमें द्वितीय और षष्ठ अंक तथा मालतीमाधवमें आधेसे भी अधिक अंश लंबे वर्णनोंसे ही व्याप्त है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्योरेमें जानेको इस प्रवृत्तिके कारण छठी शताब्दीके अन्तमें भारतीय संस्कृतिकी तत्त्वग्राहिणी दृष्टि मन्द पड़ती गयी, पर बाणभट्टमें बाह्य आडम्बर और आभ्यन्तर सत्त्व के बीच अद्भुत् समन्वय स्थापित करनेकी प्रवृत्ति लक्षित होती है। बाणभट्टके वर्णन वर्णनोद्दिष्ट न होकर काव्यके मुख्य अर्थको उपकृत करनेवाले हैं। शय्या (शैली) की चर्चा हर्षचरित तथा कादम्बरी दोनोंमें हैं। हर्षचरितमें आख्यायिकाके लिए सुखबोध एवं वर्णविन्यासपर बल दिया गया है। कादम्बरीमें 'रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता' कहकर उसी बातको रसके अधीन करके पुष्ट किया गया है। बाणभट्टको ऐसी शैली प्रिय है, जो रसके अनुगुण होनेके कारण अनायास अर्थका उद्भास कराये। बाणभट्टके युगकी भाषा, चित्र एवं शिल्प-कलाओंकी अलंकृत तथा जटिल अभिव्यक्तिको ध्यानमें रखते हुए बाणकी भाषा निश्चित रूपसे अधिक सरल, प्रवाहयुक्त एवं सरस है। न तो सुबन्धुकी वासवदत्ताकी तरह प्रत्यक्षर-श्लेषकी प्रतिज्ञा ही इसमें पायी जाती है, न माघ और भारविकी तरह चित्र-काव्य-रचना की लालसा ही कहीं है और न अनुपयुक्त स्थानमें भवभूतिकी तरह वागाडम्बर बांधनेकी ही उत्कण्ठा दृष्टिगोचर होती है। बाणभट्ट कालिदासकी भाँति ही अपने युगकी मर्यादाके भीतर रहते हुए भी बहुत ही संयत तथा सन्तुलित हैं।

इस संक्षिप्त भूमिकाके साथ हम पहले बाणकी भाषापर विचार करेंगे। बाणभट्टने गद्यको दो कारणोंसे माध्यम बनाया। एक तो उनकी स्वच्छन्द कल्पनाके लिए अबाध गतिसे उड़नेकी इस माध्यममें जितनी शक्ति थी, उतनी पद्यमें नहीं। दूसरे, पद्यका माध्यम उत्कर्षपर पहले ही पहुँच चुका था, उसमें नया उत्कर्ष नहीं लाया जा सकता था। उसका मुख्य कारण यह था कि संस्कृत भाषा बाणभट्टके समयमें पहुँचते-पहुँचते बहुत ही सीमित ढंगकी भाषा रह गयी थी एवं शिष्ट जनोंमें प्राकृत तथा अपभ्रंश-रचना जागृत हो गयी थी। इसलिए अब पद्य और गीत जितनी बंकिमाके साथ प्राकृत एवं अपभ्रंशमें लिखा जा सकता था, उतनी बंकिमाके साथ संस्कृतमें नहीं। गद्यके बारेमें ऐसी बात नहीं थी। उसका कारण जहाँ एक ओर संस्कृत-नाटकोंके अभिनयका बहु-व्यापक प्रचार था, वहाँ विविध दर्शनोंके बीच तत्त्वचिन्तनकी दृष्टिसे छिड़नेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवादोंका वातावरण भी कम प्रेरक नहीं था। नाटकके प्रभावके कारण जहाँ गद्यकी भाषामें वक्रता आयी, वहाँ दार्शनिक चिन्तनके कारण उसमें अर्थकी परिच्छिन्नता आयी। इसीलिए संस्कृत-गद्य इस युगमें भले ही बोली जानेवाली भाषाके रूपमें व्यापक तौरसे व्यवहृत नहीं हुआ हो, पर राजशासन, अध्ययन एवं सांस्कृतिक क्षेत्रमें बहुत ही प्रबल माध्यमके रूपमें विकसित हो रहा था। अभी शंकराचार्य, वाचस्पति मिश्र और जयन्त भट्ट जैसे दार्शनिक संस्कृत-गद्यके धनी नहीं पैदा हुए थे, न भोज, धनपाल, सोड्ढल और रूपगोस्वामी जैसे साहित्यिक गद्यके शिल्पी ही प्रादुर्भूत हुए थे। बाणभट्टके संमुख गद्य एक उर्वर-क्षेत्रके रूपमें प्रस्तुत था। बाणभट्टने संस्कृत-गद्यकी इस संभावनाको परखा और उसे अपनी प्रतिभाका प्रसाद देकर विविध प्रकारकी अभिव्यंजनाके लिए समृद्ध बनाया।

बाणके सामने गद्य-काव्यके दो रूप प्रचलित थे—आख्यायिका और कथा। आख्यायिका और कथाकी जो परिभाषाएँ संस्कृत-साहित्य शास्त्रमें मिलती हैं, वे बाणकी दो रचनाओंको ध्यानमें रखकर लिखी गयी हैं। बाह्य स्वरूपपर अधिक ध्यान देनेके कारण वे परिभाषाएँ अधूरी एवं अतात्त्विक हैं। वस्तुतः आख्यायिका और कथामें मुख्य भेद वही है, नाटक और प्रकरणमें। आख्यायिकामें प्रख्यात इतिवृत्त रखना आवश्यक है तथा उसमें कथा संस्मरणात्मक ढंगसे कही जाती है, जबकि कथामें इतिवृत्त उत्पाद्य या कल्पित होता है और कथाकार अन्य पुरुषके रूपमें कहानीको प्रस्तुत करता है। आख्यायिकामें इसीलिए व्यक्तिगत अनुभव प्रधान रहता है, जब कि कथामें व्यक्तिगत अनुभवका समाजीकरण प्रधान रहता है। आख्यायिकामें रसपरिपाक आख्याताके व्यक्तित्वके कारण है जबकि कथामें कथाकार अपने व्यक्तित्वका पूर्ण रूपसे समर्पण कर देता है और रसके आलम्बन विभाव कथाकारसे प्रत्यक्षतः असंलग्न हो जाते हैं। एक प्रकारसे आख्यायिका शुद्ध रूपसे कथा है ही नहीं। उसमें कौतुक-वर्द्धनपर उतना ध्यान ही नहीं है, जितना कि वृत्तान्तको अधिक सजीव एवं विशुद्ध बनानेपर है। आख्यायिकाकी परम्परा बाणके बाद अधिक विकसित नहीं हुई, पर उनसे पूर्व वह परम्परा थी। वस्तुतः यह महाकाव्यका ही एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकारसे गद्यमें रूपान्तर था। क्रमशः आख्यानोंके प्रति जो भारतीय जीवनमें श्रद्धा थी, वह क्षीण हो गयी। इसीलिए कथाका महत्त्व बढ़ा। बाणभट्टकी आख्यायिका का मूल सन्देश अपने वंश और अपनी परम्पराके लिए गौरवकी भावना जगाना है। कदाचित् इसलिए कल्हणकी तरह बाणने गुण-अवगुण दोनोंकी परीक्षाका बीड़ा नहीं उठाया। कारण स्पष्ट था, कल्हण इतिहासकार था, बाण कवि। बाणको आदर्शकी स्थापना करनी थी, अवगुणोंकी उपेक्षा इसीलिए उन्होंने की। हर्षके अधूरे चरितको लेनेका रहस्य ही यह है कि हर्षके वंशमें जहाँ तक गौरव था, वहीं तक बाण उसके प्रशंसक थे। बाणके लिए हर्ष इकाई नहीं थे, बल्कि सामूहिक आकांक्षाके प्रतीक थे। इसीलिए हर्षका सम्बन्ध बाणने केवल राजाओं, सामान्तों, राजदूतों एवं राजकीय अनुचरों तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हे और वंशके अन्य लोगोंको, भिक्षुओं, साधकों, कलाकारों, अरण्यनिवासियों एवं इस प्रकारके अन्य समान्य लोगोंके साथ भी जोड़ा, जिससे वे सही मानेमें चक्रवर्ती पदके गौरवके अनुरूप बन सकें। हर्षचरित इसी मानेमें इतिहास है कि वह हर्षके युगका अनुबिम्बन बहुत सचाई और बहुत शक्तिके साथ करता है। हर्षचरितकी प्रमुख विशेषता वस्तुतः न तो उसकी आलंकारिक रचनामें है, न शोक, हर्ष, प्रणय, विरह और आवेगके चित्रणमें है, बल्कि वह है सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक स्थितिके विशद एवं सूक्ष्म अंकनमें। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने अपने "हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन" में इस दृष्टिसे इस ग्रन्थका बहुत ही अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने तत्कालीन इतिहासके समग्र संदर्भमें इस ग्रन्थको रखकर देखनेकी चेष्टा की है। उन्होंने बहुत युक्तियुक्त ढंगसे यह प्रतिपादित कर दिया है कि बाणभट्टकी दी हुई सामग्री राजनीतिक इतिहासकी दृष्टिसे उतनी अधिक महत्त्वपूर्ण न होते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टिसे अमूल्य है। इसमें राज्यव्यवहारकी भाषा और रीतिका, लोकजीवनके विश्वास और आचारका, कलाकारों की शिल्पविधिका, अरण्य-जीवनका तथा परिव्राजक-जीवनका चित्र बहुत ही शक्तिशाली रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इन अनेक प्रकारके वर्णनोंकी विविधतामें एकान्विति भी उतनी ही प्रभावकारिणी है। बाणभट्ट हर्षचरितके माध्यमसे सामाजिक व्यवस्था प्रस्तुत करना चाहते हैं—उसका ऐसा रूप, जो समाजके लिए कल्याणकारी हो सके।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाणभट्टकी दूसरी रचना कादम्बरी ठीक इसके विपरीत बाणभट्टके व्यक्तित्वकी अभिव्यंजना है। यह बात कहनेमें कुछ उल्टी-सी लगती है कि यद्यपि हर्षचरितमें बाणभट्टने अपने मुँहसे कहानी कही है और अपने कुलका परिचय भी दिया है, पर बाणभट्ट संयत एवं मर्यादाशील कलाकारके नाते अपने व्यक्तित्वको वहाँ बहुत दबाकर ही चलते रहे हैं; कादम्बरीमें ही उनका पूर्ण व्यक्तित्व विकसित हो सका है। एक तरहसे हर्षकी व्यंग्योक्ति—'का मे भुजंगता'का उत्तर हर्षचरित-में नहीं, कादम्बरीमें है। कादम्बरीमें मैत्री और प्रेमका अन्तर स्पष्ट किया गया है तथा प्रेमकी आन्तरिक गम्भीरताका आदर्श प्रस्तुत किया गया है। ऐसा जन्म-जन्मान्तर, लोक-लोकोत्तरव्यापी प्रेम रूपके आकर्षणसे नहीं, चित्तके एकीकरणसे ही सम्भव है। कालिदास, बाणभट्ट और भवभूति ये तीनों संस्कृतके मूर्धन्य-कवि प्रेमके इस सर्वव्यापी आदर्शके पुजारी हैं। ये तीनों ही प्रेमकी आन्तरिक गहराईके एकनिष्ठ उपासक होते हुए भी बाहरी रूपसे असावधान नहीं हैं। बाहरी रूपको अन्तरकी ही शुचिताका प्रतिविम्ब मानते हैं। इसीलिए सौन्दर्यकी परिकल्पना इनके लिए विलोभनकारिणी न होकर जीवनदायिनी है। इस कवित्रयीमें बाणभट्ट-का अपना एक अलग वैशिष्ट्य है। जहाँ कालिदास यौवनके गीतिकार हैं और भवभूति प्रौढ़ प्रेमके मर्मज्ञ हैं, वहाँ बाणभट्ट गूढ़, पर अत्यधिक आवेगमय प्रेमके चित्रकार हैं। कालिदासकी नायिकाका रूप जितना ही निसर्ग-सुन्दर है, उतनी ही उसकी प्रणय-याचनामें मुग्धाकी विह्वलता भी है। भवभूतिकी सफल नायिका सीता प्रेमकी मुग्धता, निगूढ़ता और परिपक्वताकी प्रतिमा है। बाणभट्टकी नायिका इन सबसे विलक्षण है। उसमें प्रेमकी साधना भी है, तपका, संयमका, विवेकका उदय भी है। इसीलिए उनमें दो-दो जन्मोंतक प्रतीक्षा करनेका धैर्य भी है। ऐसा लगता है कि बाणभट्टने अपने अनुभवका रस कादम्बरीको ही दिया है। इसीलिए कादम्बरी संस्कृत-साहित्यकी 'अतिद्वयी' कथा बन सकी है।

कादम्बरीका कथानक बृहत्कथासे लिया गया है। बृहत्कथा प्रेमकहानियों और सामान्य जीवनकी कहानियोंका अक्षय भांडार होनेके कारण संस्कृतके नाटक-कारों, कथाकारों, कवियोंके लिए प्रमुख स्रोत बनी रही। इसी आधारपर कुछ लोग कादम्बरीको स्वच्छन्द (रोमांस) प्रेम-काव्य भी मानते हैं। तात्त्विक दृष्टिसे देखनेपर महाकाव्यके शिल्पविधान और कादम्बरीके शिल्पविधानमें अन्तर केवल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतना ही है कि जहाँ महाकाव्यमें प्रख्यात नायक-नायिकाके ही इतिवृत्तको आधार बनाना आवश्यक है, वहाँ कथाके लिए उत्पाद्य वस्तु ही आधार बनती है, पर अन्य सभी बातोंमें महाकाव्य और नाटकोंकी-सी योजना कादम्बरीमें है—कादम्बरीमें भी दो कहानियाँ हैं और उन दोनोंके इसीलिए पृथक् नायक-नायिका—एक मुख्य कहानी, दूसरी सहायक कहानी। इन दोनोंके अलावा एक छोटी प्रकरीके रूपमें कहानी पत्रलेखाकी भी है, इसमें मुख, प्रमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण—ये पाँच सन्धियाँ हैं। हाँ, कादम्बरीमें कोई प्रतिनायक या आजकी भाषामें खलनायक नहीं है। कादम्बरीमें प्रियके मिलनेमें बाधा बाहरी व्यक्तिसे न होकर प्रेमीकी निजकी दुर्बलतासे पड़ती है। इसमें मुख्य रस शृङ्गार है और मुख्य नायक भी धीरोदात्त है तथा अन्त प्रेमकी सफलतामें ही होता है। यह स्वच्छन्द प्रेमकाव्य उस मानेमें नहीं हैं, जिस मानेमें गाथा सप्तशतीकी स्वच्छन्द प्रेमकी गाथाएँ हैं, क्योंकि इसमें प्रेम उच्छृङ्खल नहीं है, परकीय नहीं है और न दशकुमारचरितकी भाँति धूर्तताके छल-प्रपंचोंसे युक्त है। इसमें शकुन्तला-सा उन्मादी प्रथम प्रणय भी नहीं है। बाणभट्टका आदर्श पूर्वप्रणयको कायिक सम्पर्कसे दूर रखनेवाला है। बाणभट्टके संस्कार इस विषयमें बहुत ही स्पष्ट रूपसे गार्हस्थ्य-जीवनके संस्कार हैं। बाणभट्टने देव, गन्धर्व, मनुष्य योनियोंमें प्रणय सम्बन्ध स्थापित करानेमें अनौचित्य नहीं देखा, पर उनका विवाह के पूर्व शारीरिक सम्बन्ध गवारा नहीं है। इसीलिए उनकी नायिकाएँ देवियाँ हैं, यहाँतक कि रोहिणीका अवतार पत्रलेखामें भी मुख्य रूप देवीका है। चन्द्रापीडके प्रति उसका मूक प्रणय इस तरह अनभिव्यक्त, अपूर्णकाम रह गया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को इस दुःखने मर्माहत कर दिया और उन्होंने बाणभट्टको उलाहना दिया, इसलिए कि पत्रलेखाकी इस प्रकार उपेक्षा उन्होंने की है। वस्तुतः यह पत्रलेखा की उपेक्षा नहीं है, बल्कि इस प्रकार लोकबाह्य प्रेमकी निगूढ़ता और अपूर्णकामताको ही बाणभट्टने मंगलकी उपलब्धि करायी है। इसलिए पत्रलेखाके साथ आन्तरिक सहानुभूति होते हुए भी उनमें उसके प्रति उपेक्षाका भाव है। बाणभट्टके लिए प्रेम परम पवित्र निधि है और इस निधिकी रक्षाके लिए ही उन्होंने तपके साधन और दिव्य व्यापार की सहायताका आश्रय लिया।

कादम्बरीकी कथाके चार पटल हैं, जो हजारा बेलेके पटलोंकी भाँति एकके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीतर दूसरे खुलते हैं। पहले पटलमें विदिशाके राजा शूद्रककी कथा है, जो श्री, शोभा और यौवनसे सम्पन्न होते हुए भी स्त्री-सुखकी ओरसे उदासीन हैं। उस शूद्रकके यहाँ एक अद्‌भुत शुकको लेकर चाण्डालकन्या आती है और राजा यह देखकर कि यह शुक प्रतिभासम्पन्न है और न केवल मनुष्यों की भाषा बोलता है; वल्कि समग्र शास्त्र इसके कंठपर स्थित हैं. उस शुकसे उसका वृत्तान्त पूछता है। कथाका दूसरा पटल शुककी कथासे प्रारम्भ होता है और विन्ध्याटवीके वर्णनसे प्रारम्भ होकर शिकारीके धावे और सुग्गेके पलायन तथा जावालिके आश्रममें त्राण पाने तक चलता है। यहींपर उसके वाद आश्रमके लोगोंने जब महर्षि जावालिसे पूछा कि यह किन कर्मोंका फल भोग रहा है तो महर्षि जावालिने कथाका तीसरा पटल खोला। इस तीसरे पटलमें आकर मूक कथा प्रारम्भ होती है। उज्जयिनीके राजा तारापीडके सर्वगुणसम्पन्न चन्द्रापीड नामक पुत्र हुए। लगभग उसी समय उनके मन्त्री शुकनासके वैशम्पायन नामके पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों एक साथ पढ़े और खेले-कूदे। यौवराज्यके अभिषेकके अनन्तर कुमार चन्द्रापीड दिग्विजयके लिए निकले। तीन वर्ष तक वे दिग्विजय करते रहे, अन्तमें उत्तर दिशामें आखेटके लिए आये और एक सुन्दर किन्नरदम्पतिके पीछे-पीछे कुतूहलसे आकृष्ट होकर वहुत दूर जंगलमें निकल गये। उस जंगलके बीच उन्हें अच्छोद सरोवर मिला। उस अच्छोद सरोवरके पास उन्हें गीतध्वनि सुननेको मिली। उस ध्वनिकी तलाशमें वे शिवालयमें पहुँचे, जहाँ उन्हें एक अनिन्द्य तापसी सुन्दरी मिली। यह सुन्दरी महाश्वेता थी। महाश्वेताने इस अकाल तपका कारण पूछे जानेपर कथाका चौथा पटल खोला और इसमें उसने चौदह गंधर्व कुलोंके उद्‌भवकी कथा वतलायी और यह बतलाया कि श्वेतकेतुके पुत्र पुण्डरीक एकवार इस सरोवर पर स्नानके लिए आये। यह पुण्डरीक लक्ष्मीके मन्मथ-विकारसे जन्य पुत्र थे। इनके कानमें वनदेवीने दिव्यमंजरी खोंस रखी थी। उस मंजरीकी गन्धसे आकृष्ट होकर महाश्वेता उनके पीछे चली और पहले ही दर्शनमें यह मर्यादा भूलकर उनके लिए आकुल हो गयी। पुण्डरीक भी इसके प्रेममें आकुल होकर मुनि-कुमारकी मर्यादा भूल गये। विरहकी व्याकुलतामें पुण्डरीककी मृत्यु हुई। महाश्वेता भी सहमरणके लिए उद्यत हुई पर चन्द्रमाने यह आश्वासन देकर कि तुम्हें इसी शरीरसे प्रिय मिलेंगे, मरनेसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोक दिया। तबसे वह इसी मन्दिरके पास तप करने लगी है। उसकी सखी कादम्बरीने सखीकी समवेदनामें यह निश्चय किया है कि महाश्वेताके प्रिय जबतक नहीं मिलेंगे तबतक वह भी विवाह नहीं करेगी।

महाश्वेतासे यह वृत्तान्त सुनकर चन्द्रापीड कादम्बरीके महल गया, वहाँ प्रथम दर्शन में ही चन्द्रापीड और कादम्बरीका प्रणय प्रारम्भ हो गया, पर दोनों अपने प्रेममें लोक-मर्यादासे नियन्त्रित थे, कादम्बरी अपनी प्रतिज्ञासे, चन्द्रापीड अपने पिताकी आज्ञासे। पिताका आदेश पाकर वैशम्पायनको वहीं छोड़कर त्वरित वेगसे चन्द्रापीड वापस आये। पिताने उसे डाँटा, क्यों वैशम्पायनको छोड़कर आये हो? शुकनासने शाप दिया कि वैशम्पायन क्यों इस प्रकार वनमें विलमा हुआ है, वह शुक हो जाय। वहाँ वैशम्पायन महाश्वेताके आश्रममें पहुँचकर उसके रूपसे आकृष्ट होकर कामवश हो गया। महाश्वेताने शाप दिया कि जाओ तुम शुककी तरह चपलता कर रहे हो, शुक हो जाओ। उसी क्षण वैशम्पायनकी मृत्यु हुई। बादमें महाश्वेताको जानकारी हुई कि यह चन्द्रापीडका मित्र है तो वह अधिक पीड़ित हुई, लेकिन यह सूचना उसे वैशम्पायनकी तलाशमें आये चन्द्रापीडसे ही मिली, जिसने स्वयं मित्रके निधनसे शोकार्त्त होकर प्राण त्याग दिया। कादम्बरी पत्रलेखाके साथ आयी और चन्द्रापीडके अश्व इन्द्रायुधको लेकर सरोवरमें प्रविष्ट हो गयी। उस सरोवरसे कपिंजल, जो पुण्डरीकका मित्र था, उठा और महाश्वेताके पास आकर उसने यह सूचना दी कि पुण्डरीकने चन्द्रमाको शाप दिया था कि तुम जो उसे विरहमें सता रहे हो, स्वयं विरहव्यथा भोगनेके लिए ही पृथ्वीमें जन्म लोगे। वही चन्द्र चन्द्रापीड हुए और कपिंजल इन्द्रायुध नामका अश्व हुआ। इसी बीचमें कादम्बरी जब अग्नि-प्रवेश करने चली तो आकाशमें स्थित होकर चन्द्रमाने यह आश्वासन दिया कि चन्द्रापीडके शरीरकी रक्षा चन्द्रकान्त मणिके पलंगपर रखकर करो, यह कुछ समय बाद जी उठेगा और तुम्हारा पति होगा। इसके बाद शुकनास और तारापीड भी वहाँ आये। यहींपर यह सूचना मिलती है कि पुण्डरीक ही वैशम्पायन हुआ था। जाबालिकी कथा यहीं समाप्त होती है और वैशम्पायन शुक अपने पूर्वजन्मके स्मरणसे पुनः विरहविह्वल हो उठा। कपिंजलने आकर उसे आश्वासन भी दिया पर वह स्वयं महाश्वेता के आश्रमकी ओर चल पड़ा। इसके बाद एक चाण्डालने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसे जाल में फँसाया और चाण्डाल-कन्याने सोनेके पिंजरेमें उसे डाल दिया। यहींपर शुककी कथा समाप्त होती है। चाण्डाल-कन्यासे शूद्रकने शेष वृत्तान्त जाना कि मैं ही चन्द्रमा हूँ और चन्द्रापीड के रूप में कादम्बरीका आराध्य हूँ। चाण्डाल-कन्या साक्षात् लक्ष्मीके रूपमें पुण्डरीककी माता है। पुण्डरीकके उद्धारके लिए ही उसने यह वेष धारण किया है। यह सुनते ही राजा और शुक दोनोंने अपने शरीर त्याग दिये और चन्द्रापीड कादम्बरीके पर्यंकपर जी उठा। पुण्डरीक चन्द्रमंडल से निकलकर महाश्वेताके पास आ गया। इन दोनोंके विवाहसे कथाका अन्त होता है।

बाणभट्टने कथा उसी अंश तक लिखी है, जिस अंश तक चन्द्रापीडने कादम्बरीके प्रेमाकर्षणमें पड़नेके बाद पिताके आदेशसे उज्जयिनीके लिए प्रस्थान किया है। वस्तुतः कथाकी योजना वहीं तक है। इसके बाद उसकी पूर्तिमात्र है। इसीलिए उनके पुत्र इस अंशको लगभग उसी सफलतासे कर सके। पश्चिमी आलोचकोंकी दृष्टिमें यह कहानी बहुत ही अस्वाभाविक और उलझी हुई है। जो भारतीय जीवनदर्शनकी पीठिकामें स्थापित करके इस कथाको नहीं रखेंगे, उनके लिए यह निश्चय रूपसे अस्वाभाविक है, पर प्राचीन साहित्यमात्र में सर्वत्र अतिमानवीय व्यापारोंकी सहायता ली गयी है। बाणने यह सहायता इसलिए नहीं ली है कि वे मनुष्यको साधनहीन मानते हैं; बल्कि इसलिए कि वे मनुष्यकी देहको ही साधनधाम मानते हैं। सुख या दुःखका असली भोग इसी देहसे सम्भव है। इसीलिए उनकी दिव्य नायिकाएँ भी मानवीय प्रेम-पात्रकी आराधना करती हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ महाश्वेता और पुण्डरीकका प्रणय बहुत आवेगमय होनेके कारण उच्छल हैं, वहाँ चन्द्रापीड और कादम्बरीका प्रणय बहुत मर्यादित और गम्भीर है। बाणके सामने प्रेमके दोनों रूप थे और इन दोनोंमें उन्हें सबसे अधिक काम्यरूप दूसरा ही है। इसलिए ये स्वच्छन्द प्रेमको अमंगल नहीं मानते हुए भी मर्यादित प्रेमको ही अधिक मंगलमय मानते थे। बाणभट्टकी दृष्टिमें कामुकता प्रेमकी अभिव्यंजना बहुत दुर्बल अभिव्यंजना है। रूपका जादू स्वीकारते हुए भी वे आन्तरिक एकीकरण और प्रेमके परिशोधन में अधिक आस्था रखते हैं।

जो लोग कादम्बरीकी कहानी (और आधुनिक अर्थमें कहानी) के रूपमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखना चाहते हैं, उन्हें उसकी चित्रमयता तथा वर्णनबहुलतासे बहुत खी होती है। जर्मन विद्वान् बेवरने बाणके गद्यकी उपमा इसीलिए एक गहन जंगल दी है, जिसमें उलझानेवाले समस्त पदों से युक्त वाक्योंके कारण तथा अज्ञा शब्दोंके रूप में हिंस्र पशुओंके कारण प्रवेश दुर्गम है। ऐसे आलोचकोंको य ध्यान नहीं रहता कि कादम्बरी मूलतः काव्य है। कथा वह केवल नाम औ तन्त्रकी दृष्टिसे है। उसमें रस ही मुख्य है, कौतुक उतना मुख्य नहीं है। बाण इसीलिए कथाके प्रवाहकी उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी रसके परिपाककी रस-परिपाकके लिए ही उन्होंने चित्रमयता और कल्पनाशीलतासे काम लिया है उन्होंने इसीलिए प्रकृतिके विभिन्न व्यापारोंसे मनुष्यके जीवनका सम्बन्ध जोड़ने प्रबन्ध किया है। यह सही है कि प्रचलित और मान्य गद्य-परम्पराके निर्वाह लिए श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास जैसे अलंकारोंका उपयोग भी उन्होंने कि है, पर ऐसे अंश एक तो विरल हैं, दूसरे दुर्बल भी। गद्यकी चार प्रचलि शैलियोंका उपयोग बाणने बहुत ही कौशलके साथ उचित स्थलपर किया है वे चार समस्त पदावलीका उपयोग रूप-वर्णन, नगरी-वर्णन, प्रदेश-वर्णन, सरोवर वर्णन, मन्दिर-वर्णन, वन-वर्णन जैसे स्थलोंमें किया गया है। एक वाक्यमें पू चित्र देनेकी कोशिश इसलिए की गयी है कि उस वस्तुमें पाठकका ध्य केन्द्रित हो जाय।

यह सही है कि 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' की मान्यता अनुसार गद्यकी प्रौढ़ताका परिचय देनेके लिए बाणको समस्त पदोंकी वि योजना करने में विवशता थी, पर वस्तुतः उनकी गद्य-शक्तिका परिचय उ छोटे टुकड़ोंमें मिलता है, जिनमें अनेक पर्यायोंके द्वारा त्वरित गतिसे बद हुई मनोवृत्तिका ऐसा क्रमबद्ध चित्र प्रस्तुत किया गया है कि लगता है कि वे शब्दके ही शिल्पी नहीं थे, वे मनुष्यके अन्तरमनकी हरएक सिलवटके जान थे। बाणकी बहुज्ञता ऐसे स्थलपर सबसे अधिक स्पष्ट रूपसे प्रकट होती है वहाँ लगता है, भाषा एकदम तरल हो जाती है।

बाणभट्टका मूल्यांकन अभीतक या तो संस्कृत-साहित्य-शास्त्रकी रूढ़ि शृंखलाके अनुसार हुआ है और 'बाणोच्छिष्टमिदं जगत्' कहकर उन्हें शब्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धनी सिद्ध किया गया है या 'प्रगल्भता प्राप्त करनेके लिए ही वाणीने बाण नामधारी पुरुष-शरीर धारण किया', कहकर उनकी उक्तिकुशलताकी आशंसा की गयी है या फिर गद्यके क्षेत्रमें उन्हें अनुपम मानकर गद्यका सम्राट् कहा गया है। प्रायः यह आलोचना बहिरंगके निरीक्षणपर आधृत है। दूसरी ओर पश्चिमी आलोचकोंने आधुनिक गद्य, विशेषतः कथा-साहित्यके प्रतिमानोंकी कसौटी पर बाणको कसने की चेष्टा की है। उन्होंने बाणकी रचना-शक्तिका लोहा मानते हुए भी बाणको प्रथम श्रेणीका कृती नहीं माना है। उन्हें बाणमें अनावश्यक विस्तार, अस्वाभाविकता और दुर्बोधता ही अधिक देखनेको मिलती है। दोनों प्रकारके आलोचकोंने बाणकी अभिव्यक्ति और बाणके अन्तर्मर्मके बीच सामंजस्य कितना है, इसे देखनेकी चेष्टा नहीं की है। बाण वर्णनके धनी हैं, यह उनके लिए बहुत बड़ी प्रशंसा की बात नहीं है। प्रशंसाकी बात तो यह है कि मनुष्यके मनको उन्होंने समझा है और न केवल समझा है, बल्कि मनुष्य को अपार जीवनदायिनी शक्तिके रूपमें निरखा है। मनुष्यका प्रेम महान् और कितना पवित्र हो सकता है, इसका परिचय समूचे संस्कृत-साहित्यमें जितना कादम्बरी में मिलता है, उतना किसी अन्य ग्रन्थमें नहीं। इस प्रेमकी महत्ताकी सही पहिचानके ही कारण बाणने जगत्के समस्त पदार्थोंको अनुपम आभासे आवेष्टित पाया है और उनके संस्पर्शमात्र से वन, पर्वत, गाँव, नगर, पशु-पक्षी और स्त्री-पुरुष ऐसी कान्तिसे निरख उठे हैं कि उनके जोड़के पदार्थ सृष्टिमें देखनेसे नहीं मिलते। जिसको उत्प्रेक्षा कहकर प्रायः लोग टाल देते हैं, वह वस्तुतः बाणभट्टकी योजनात्मक शक्तिका प्रस्फुटन है। जिसे हम रंगोंकी पहिचान कहकर ही सन्तोष कर लेते हैं, वह वस्तुतः बाणभट्टके स्वयं रंगमें पगे होनेका प्रमाण है। बाणके लिए रूप चाहे मनुष्यका हो, चाहे प्रकृतिका हो, चाहे पशु-पक्षीका हो, जादू नहीं है, बन्धन नहीं है; वह विश्वके जीवनका केन्द्र है। इसलिए एक रूप गढ़नेमें बाणभट्टको समस्त विश्वके समकक्षी रूप याद आ जाते हैं। कादम्बरी और महाश्वेताके प्रथम दर्शनके वर्णन इसके बड़े शक्तिशाली प्रमाण हैं। महाश्वेता प्रेमकी दहकती हुई दीपशिखा है तो कादम्बरी अन्तर्दाह। शब्द नये देनेकी चेष्टा बाणने नहीं की है। वस्तुतः उपयुक्त अर्थके लिए उपयुक्त शब्द उनके पीछे दौड़ते रहते हैं। वे वासवदत्ताके रचयिता सुबन्धुकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह प्रत्यक्षरश्लेषके आदर्शके पीछे नहीं भटकते फिरते और साथ ही भवभूतिकी तरह शब्दसंगीतके पीछे भी नहीं। शब्द और अर्थकी मैत्रीका ध्यान वे अवश्य रखते थे। संस्कृत-मुहावरेका बाँकपन जितना बाणभट्टकी भाषामें है, उतना कालिदास, जयन्तभट्ट, शंकराचार्य और पतंजलिकी भाषामें ही मिल सकता है। बाणभट्ट पंडित हैं सही पर, उनका पांडित्य उनकी सहृदयताके ऊपर हावी नहीं है। यह उनके रूपवर्णनकी सूक्ष्मतासे ही प्रमाणित है।

बाणभट्टका स्थान इन दृष्टियोंसे संस्कृतमें अद्वितीय है।

विद्यानिवास मिश्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कादम्बरी

[महाश्वेतावृत्तान्तः]

१—तस्य च दक्षिणां मूर्तिमाश्रित्याभिमुखीमासीनाम्, उपरचितब्रह्मासनाम्, अतिविस्तारिणा सर्वदिङ्मुखप्लावकेन प्रलयविप्लुतक्षीरपयोधिपयःपूरपाण्डुरेणातिदीर्घकालसंचितेन तपोराशिनेव विसर्पता पादपान्तरैस्त्रिस्रोतोजलनिभेन पिण्डीभूय वहतेव देहप्रभावितानेन सागरिकाननं दन्तमयमिव तं प्रदेशं कुर्वतीम्, अन्यथैव धवलयन्तीं कैलासगिरिम्, अन्तर्द्रष्टुरपि लोचनपथप्रविष्टेन श्वेतिमानमिव मनो नयन्तीम्, अतिधवलप्रभापरिगतदेहतया स्फटिकगृहगतामिव दुग्धसलिलमग्नामिव विमलचीनांशुकान्तरितामिवादर्शतलसंक्रान्तामिव शरदभ्रपटलतिरस्कृतामिवापरिस्फुटविभाव्यमानावयवाम्, पञ्चमहाभूतभयमपहाय द्रव्यात्मकमङ्गनिष्पादनोपकरणकलापं धवलगुणेनेव केवलेनोत्पादिताम्, दक्षाध्वरक्रियामिवोद्धतगणकचग्रहभयोपसेवितत्र्यम्बकाम्, रतिमिव मदनदेहनिमित्तं हरप्रसादनार्थमागृहीतहराराधनाम्, क्षीरोदधिदेवतामिव सहवासपरिचितहरचन्द्रलेखोत्कण्ठाकृष्टाम्, इन्दुमूर्तिमिव स्वर्भानुभयकृतत्रिनयनशरणगमनाम्, ऐरावतदेहच्छविमिव गजाजिनावगुण्ठनोत्कण्ठितशितिकण्ठचिन्तितोपनताम्, पशुपतिदक्षिणमुखहासच्छविमिव बहिर्निर्गत्य कृतावस्थानाम्, शरीरिणीमिव रुद्रोद्धूलनभूतिम्, आविर्भूतां ज्योत्स्नामिव हरकण्ठान्धकारविघट्टनोद्यमप्राप्ताम्, गौरीमनःशुद्धिमिव कृतदेहपरिग्रहाम्, कार्तिकेयकौमारव्रतक्रियामिव मूर्तिमतीम्, गिरीशवृषभदेहद्युतिमिव पृथगवस्थिताम्, आयतनतरुकुसुमसमृद्धिमिव शङ्कराभ्यर्चनाय स्वयमुद्यताम्, पितामहतपःसिद्धिमिव महीतलमवतीर्णाम्, आदियुगप्रजापतिकीर्तिमिव सप्तलोकभ्रमणखेद-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्रान्ताम्, त्रयीमिव कलियुगध्वस्तधर्मशोकगृहीतवनवासाम्, आगामिकृतयुगबीजकलामिव प्रमदारूपेणावस्थिताम्, देहवतीमिव मुनिजनध्यानसम्पदम्, अमरगजवीथीमिवाभ्रगङ्गाभ्यासगमवेगपतिताम्, कैलासश्रियमिव दशमुखोन्मूलनक्षोभनिपतिताम्, श्वेतद्वीपलक्ष्मीमिवान्यद्वीपावलोकनकुतूहलागताम्, काशकुसुमविकासकान्तिमिव शरत्समयमुदीक्षमाणाम्, शेषशरीरच्छायामिव रसातलमपहाय निर्गताम्, मुसलायुधदेहप्रभामिव मधुमदविघूर्णनायासविगलिताम्, शुक्लपक्षपरम्परामिव पुञ्जीकृताम्, सर्वहंसैरिव धवलतया कृतसंविभागाम्, धर्महृदयादिव निर्गताम्, शङ्खादिवोत्कीर्णाम्, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्, मृणालैरिव विरचितावयवाम्, दन्तदलैरिव घटिताम्, इन्दुकरकूर्चकैरिव प्रक्षालिताम्, वर्णसुधाच्छटाभिरिवाच्छुरिताम्, अमृतफेनपिण्डैरिव पाण्डुरीकृताम्, पारदरसधाराभिरिव धौताम्, रजतद्रवेणेव निर्मृष्टाम्, चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णाम्, कुटजकुन्दसिन्धुवारकुसुमच्छविभिरिवोल्लासिताम् इयत्तामिव धवलिम्नः, स्कन्धावलम्बिनीभिरुदयतटगतादर्कविम्बादुद्धृत्य बालरश्मिप्रभाभिरिव निर्मिताभिरुन्मिषत्तडित्तरलतेजस्ताम्राभिरचिरस्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणामलग्नपशुपतिचरणभस्मचूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम्, जटापाशग्रथितमुत्तमाङ्गेन मणिमयं नामाङ्कमीश्वरचरणद्वयमुद्वहन्तीम्, रविरथतुरगखुरक्षुण्णनक्षत्रक्षोदविशदेन भस्मनालंकृतललाटपट्टिकाम् शिखरशिलाश्लिष्टशशाङ्ककलामिव शैलराजमेखलाम्, अतुलभक्तिप्रसाधितया लक्ष्यीकृतलिङ्गया व्रीलीययेव पुण्डरीकमालया दृष्ट्या सम्भावयन्तीं भूतनाथम्, अनवरतगीतपरिस्फुरिताधरपुटवशादतिशुचिभिः शुद्धहृदयमयूखैरिव गीतगुणैरिव स्वरैरिव स्तुतिवर्णैरिव मूर्तिमद्भिर्मुखान्निष्पतद्भिर्दशनांशुभिः पुनरिव स्नपयन्तीं गौरीपतिम्, अतिविमलैश्च वेदार्थैरिव साक्षात्पितामहमुखादाकृष्टैर्गायत्रीवर्णैरिव ग्रथनतामुपगतैर्नारायणनाभिपुण्डरीकबीजैरिवोद्धृतैः सप्तर्षिभिरिव करस्पर्शपूतमात्मनामिच्छद्भिस्तारकारूपेणागतैरामलकीफलस्थूलैर्मुक्ताफलैरुपरचितेनाक्षवलयेनाधिष्ठितकण्ठभागाम्, परिवेषपरिगतचन्द्रमण्डलामिव पौर्णमासीनिशाम्, अधोमुखहरशिरःकपाल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मण्डलाकारेण मोक्षद्वारकलशकान्तिना स्तनयुगलेनैकहंसमिथुनसनाथामिव श्वेतगङ्गाम्, गौरीसिंहसटामयेनेव चामररुचिराकृतिना स्तनयुगलमध्यनिवद्धग्रन्थिना कल्पतरुलतावल्कलेन कृतोत्तरीयकृत्याम्, अयुग्मलोचनसकाशात्प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूखजालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम्, आप्रपदीनेन च स्वभावसितेनापि ब्रह्मासनबन्धोत्तानचरणतलप्रभापरिष्वङ्गाल्लोहितायमानेन दुकूलपटेन प्रावृतनितम्बाम्, यौवनेनापि स्वकालोपसर्पिनिर्विकारविनीतेन शिष्येणेवोपास्यमानाम्, लावण्येनापि कृतपुण्येनेव स्वच्छात्मना परिगृहीताम्, रूपेणापि रुचिरलोचनेन विगतचापलेनायतनमृगेणेव निषेविताम्, उत्सङ्गगतां च स्वसुतामिव सूक्ष्मशङ्खखण्डिकाङ्गुलीयकपूरिताङ्गुलिना त्रिपुण्ड्राकावशेषभस्मपाण्डुरेण प्रकोष्ठबद्धशङ्खखण्डकेन नखमयूखदन्तुरतया गृहीतदन्तकोणेनेव दन्तमयीं दक्षिणकरेण वीणामास्फालयन्तीम्, प्रत्याक्षामिव गन्धर्वविद्याम्, मणिमण्डपिकास्तम्भलग्नाभिरात्मानुरूपाभिः सहचरीभिरिव सवीणाभिः प्रतिमाभिरुपेताम्, स्नपनार्द्रलिङ्गसंक्रान्तप्रतिबिम्बतयातिप्रबलभक्त्याराधितस्य हृदयमिव प्रविष्टां हरस्य, हारलेखयेव प्राप्तकण्ठयोगया ग्रहपङ्क्त्येव ध्रुवप्रतिबद्धया क्रुद्धयेव रक्तमुखवर्णया मत्तयेव घूर्णितमन्द्रतारयोन्मत्तयेवानेककृततालया मीमांसयेवानेकभावनानुविद्धया गीत्या देवं विरूपाक्षमुपवीणयन्तीम्, अतिमधुरगीतावकृष्टैर्ध्यानमिवाभ्यस्यद्भिर्निश्चलकर्णपुटैर्मृगवराहवानरवारणशरभसिंहप्रभृतिभिर्वनचरैराबद्धमण्डलैराकर्ण्यमानगीतानुविद्धविपञ्चीघोषाम्, अमरापगामिव नभसोऽवतीर्णाम्, दीक्षितवाचमिवाप्राकृताम्, त्रिपुरारिशरशलाकामिव तेजोमयीम्, पीतामृतामिव विगततृष्णाम्, ईशानशिरःशशिकलामिवानुपजातरागाम्, अमथितोदधिजलसम्पदमिवान्तःप्रसन्नाम्, असमस्तपदवृत्तिमिवाद्वन्द्वाम्, बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बनाम्, वैदेहीमिव प्राप्तज्योतिःप्रवेशाम्, द्यूतकलाकुशलामिव वशीकृताक्षहृदयाम्, महीमिव जलभृतदेहाम्, हिमसमयदिनमुखलक्ष्मीमिव परिपीतभास्करातपाम्, आर्यामिव समुपात्तयतिगणोचितमात्राम्, आलिखितामिवाचलनिश्चस्थानाम्, अंशुमयीमिव तनुच्छायानुलिप्तभूतलाम्, निर्ममां निरहंकारां निर्मत्सराम्, अमानुषाकृतिं दिव्यत्वादपरिज्ञायमानवयः-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमाणामप्यष्टादशवर्षदेशीयामिवोपलक्ष्यमाणां प्रतिपन्नपाशुपतव्रतां कन्यक ददर्श।

उसकी (शिवकी) दक्षिण मूर्तिके सामने ब्रह्मासन बाँधकर बैठी हुई; प्रलयं समय क्षीरसागरके बढ़े हुए जलप्रवाह-सी शुभ्र, बहुत दिनों की संचित फैलत हुई तपस्याकी राशि-सी, वृक्षोंमें रुकनेके कारण एकत्र होकर बहते हुए गंगाजलकी नाईं, अत्यन्त विस्तृत एवं सारी दिशाओंको ढँक लेनेवाली शारीरि छविके विस्तारसे वन-पर्वतके साथ उस प्रदेशको गजदंतोंसे भरती हुई-सी एक दूसरे ही प्रकारसे कैलासको शुभ्र बनाती हुई, आँखोंके रास्तेसे घुसक दर्शकके भी अंतस्को धवलतामें पहुँचाती हुई-सी, अत्यन्त निर्मल शारीरि द्युतिके कारण स्फटिक-निर्मित घरमें पहुँचती हुई-सी, क्षीर-नीरमें डूबी जैसी श्वेत चीनी रेशमसे ढँकी-सी, दर्पणमें प्रतिबिम्बित होती हुई-सी, शरद् ऋतु बादलोंमें छिपायी गयी-सी, स्पष्ट रूपसे प्रतीत न होनेवाले अंगोंसे युक्त-सी अंगोंके निर्माणमें द्रव्यमय पाँच प्राथमिक तत्त्वों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु औ आकाश) के साधनसमूहको छोड़कर केवल धवलगुणसे बनायी गयी-सी, (उद्दण्ड शिवगणोंके द्वारा केश खींचे जानेके डरसे शिवकी सेवा करनेवाली) दक्षकी यज्ञ-क्रियाकी नाईं उच्छृङ्खल, काम, क्रोध आदिके द्वारा होनेवा दुराचारके डरसे शंकरकी पूजा करनेवाली, (कामदेहको प्राप्त करनेके लि शंकरको प्रसन्न करनेके हेतु उनकी पूजामें लग जानेवाली) रति-सी काम-पीड़ि देहकी शांतिके लिए शंभुको प्रसन्न करनेके हेतु उनकी पूजामें तत्पर हो जा वाली, (शिवके मस्तकपर स्थित, साथ निवास करनेके कारण परिचि चन्द्रलेखाको देखनेकी उत्सुकतासे आकृष्ट-सी) क्षीरसागरकी अधिष्ठात्री देव (लक्ष्मी)-सी सहवास होनेसे परिचित शिवकी शशिकलाको देखनेकी अभिलाषा आकृष्ट-सी, (राहुके डरसे त्रिलोचनकी शरणमें पहुँची हुई-सी) चन्द्रमूर्ति-सी दोपहरके सूर्यके (तापके) भयसे शंभुके मंदिरमें गयी हुई, (हाथीके चमड़े ओढ़नेकी इच्छा रखनेवाले शिवकी इच्छामात्रसे आयी हुई) ऐरावतकी शारीरि शोभाकी नाईं हाथीके चमड़ेको ओढ़नेकी इच्छा रखनेवाले शंकरकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाली, बाहर निकलकर बैठी हुई, पशुपतिके दाहिने मुखकी हँसी-सी रुद्रके शरीरमें मली जानेवाली राख-सी मूर्तिमती, शिवके गलेके अन्धकारको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेके लिए किये गये प्रयत्नसे आयी हुई प्रकट चाँदनी-सी; शरीर धारण करनेवाली गौरीकी मानसिक शुद्धि-सी; कार्त्तिकेयके लड़कपनकी मूर्तिमती व्रतचर्या-सी; अलग निकलकर बैठी हुई शंभुके बैलकी शोभा-सी; शिवपूजनके लिए स्वयं समुद्यत मंदिरके वृक्षोंकी कुसुम-समृद्धि-सी; पृथ्वीपर उतरी हुई ब्रह्माकी तपस्याकी सिद्धि-सी; सातो लोकोंमें घूमनेके कारण परिश्रमसे थककर आराम करती हुई आदि युगके प्रजापतिकी कीर्त्ति-सी; कलियुगके द्वारा नष्ट किये गये धर्मके शोकमें वनवास अंगीकार कर लेनेवाली त्रयी (ऋक्, यजुष्, साम) की नाईं; रमणीके रूपमें स्थित भावी सतयुगकी बीजकला-सी; मुनियोंकी शरीरधारिणी ध्यान-संपत्ति-सी; आकाशगंगाके आगमनके वेगसे गिरी हुई सुरगजोंकी पाँत-सी; रावणके द्वारा हिलाये जानेके कारण क्षुब्ध होनेसे फिसली हुई कैलासकी श्रीकी नाईं; अन्य द्वीपोंको देखनेके कौतूहलसे आयी हुई श्वेत द्वीपकी लक्ष्मी-सी; शरद् ऋतुकी प्रतीक्षा करती हुई काशके सुमनोंके विकासकी शोभा-सी; रसातल छोड़कर बाहर आयी हुई शेषकी शारीरिक कान्ति-सी; मदिराके नशेसे घुमरी छूटनेके कारण उत्पन्न हुई थकानसे खिसकी हुई बलराम-देह-दीप्ति-सी; शुक्लपक्षकी एकत्र राशि-सी; गोराईमें मानों सारे हंसोंके द्वारा दिये गये हिस्सेको पानेवाली; धर्मके हृदयसे निकली हुई-सी; शंखसे उकेरी गयी-सी; कमल-तंतुओंसे बनाये गये जैसे अंगोंवाली; गजदंतोंके टुकड़ोंसे निर्मित की गयी-सी; चन्द्रकिरण-कूचियोंसे धोयी-गयी-सी; चूनेकी सफेदीसे पोता गयी-सी; पीयूषके फेनसे धवल बनायी गयी-सी; पारेके रसकी धाराओंसे धोयी गयी-सी; चाँदीके रससे पोंछी गयी-सी; चन्द्रमण्डलसे उकेरी गयी-सी; कुरैया, कुन्द और म्योंडी (सिभालु) के फूलोंकी छविसे बढ़ायी गयी शोभासे समन्वित-सी; गोराईकी सीमा-सी; उदय-शैलके शिखरपर पहुँचे हुए सूर्यमण्डलसे निकाली गई बाल किरणोंसे बनायी गयी-सी; चमकती हुई बिजलीकी चंचल चमककी नाईं ताँबेके रंगकी; तुरंत नहानेसे शिवके चरणोंमें नमन करते समय लगी हुई राख-सी; जलकी कुछ बूँदोंसे युक्त एवं कंधेतक लटकनेवाली जटाओं से शोभित शीशवाली; केशपाशमें गुहे हुए शंकरके मणिमय एवं नामांकित दोनों चरणोंको माथेपर धारण करनेवाली; सूर्यके रथके घोड़ोंसे रौंदे गये तारोंके चूर्णकी भाँति शुभ्र राखसे ललाटपट्टिका (तिलक विशेष) से सुशोभित होनेसे शिखरसे लिपटी हुई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रकलासे युक्त हिमालय की मेखलाकी नाईं; अनुपमेय भक्तिसे सँवारी गयी; शिवलिंगको देखनेवाली एवं कमलोंकी दूसरी मालाकी नाईं दृष्टिसे भूतनाथकी पूजा करती हुई-सी; निरन्तर गानेसे फड़कते हुए ओठोंके कारण मुखसे निकलती हुई, अत्यन्त पवित्र हृदयकी किरणोंकी नाईं, गीतोंकी गुणों-सी, स्वरों-सी, स्तुतिके अक्षरों जैसी और मूर्त्तिमती दंतप्रभासे गौरीपतिको पुनः नहलाती हुई-सी; ब्रह्माके मुखसे प्रत्यक्ष निकाले गये वेदोंके अर्थकी नाईं, गायत्री मंत्रके अक्षरोंकी नाईं गुहाईकी विशेषतासे बड़े दिखते हुए, नारायण के नाभि-कमलके बीजोंसे निकाले गयेसे, हाथके स्पर्शसे अपनेको पवित्र बनाने की इच्छा रखनेवाले तारोंके रूपमें आये हुए सप्तर्षियोंकी नाईं; आँवलेके फलके सदृश बड़े-बड़े मोतियोंके दानेसे बनायी गयी सुमिरिनीको गलेमें पहननेसे मण्डलमें बैठे हुये चन्द्रमासे युक्त पूर्णिमा-रात्रि-सी; औंधे मुँह रखे हुए शिवके खप्परकी भाँति गोल, मुक्तिके दरवाजेपर रखे कलशके सदृश शोभासे युक्त दोनों स्तनोंसे हंसके जोड़ेसे सुशोभित श्वेत गंगाकी भाँति; पार्वतीके सिंहके केसरसे बने हुए-से; चँवरके समान सुन्दर आकारवाले, दोनों स्तनोंके बीच बँधी हुई गाँठसे युक्त, कल्पलताके वल्कलसे दुपट्टेका काम लेनेवाली; त्रिलोचनसे प्रसाद रूपमें प्राप्त, चन्द्र-चूड़ामणिके किरण-समूहकी नाईं मण्डलाकार यज्ञोपवीतसे शरीरको पवित्र बना लेनेवाली; पैरकी अँगुलियोंको छू लेनेवाले, स्वभावसे धवल होनेपर भी ब्रह्मासन बाँधनेमें उतान तलवोंकी आभाके सम्पर्कसे गुलावी बने हुए रेशम वस्त्रसे नितम्बोंको ढँकनेवाली; अपने समयपर पहुँचनेवाले निर्विकार एवं विनम्र शिष्यकी नाईं जवानीसे उपासित, निर्मलचित्त पुण्य किये हुए जैसे सौन्दर्यसे भी अंगीकृत, सुन्दरनयन और चांचल्यविहीन गृह-मृगकी नाईं मनोरम और दर्शनीय रूपसे सेवित; गददंतके छोटे टुकड़ोंसे बनी हुई मुँदरियोंसे भरी अंगुलियोंसे युक्त त्रिपुण्ड लगानेसे बची हुई राखसे धवल, मणिबन्धमें बँधे हुए शंखके टुकड़ेसे समन्वित, नखोंकी प्रभासे उन्नत प्रतीत होनेसे मानों हाथी-दाँतकी नक्काशीसे युक्त दाहिने हाथसे गोदमें बैठी हुई अपनी पुत्रीकी भाँति दन्तमयी वीणाको बजाती हुई; मणिसे बने हुए मण्डपके खम्भोंमें दिखलायी पड़नेवाली, अपने अनुरूप सहेलियों की भाँति वीणा सहित ललनाओंकी परछाइयोंसे युक्त साक्षात् गन्धर्व विद्याकी नाईं, नहलानेसे भीगे हुए शिवलिंगमें पड़ती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुई परछाईंके कारण अति उत्कट भक्तिके द्वारा मानो पूजित शिवके हृदयमें मानो घुसी हुई; गलेमें पड़ी हुई हारकी लड़ीकी नाईं, ध्रुवसे सम्बद्ध ग्रहोंकी पाँत-सी, लालिमासे अनुरंजित मुखवाली क्रुद्ध (स्त्री) सी, चंचल एवं अलस पुतलियोंवाली मतवाली (नारी) सी, विविध रीतिसे ताली पीटनेवाली उन्मत्त (रमणी) की नाईं और अनेक भावनाओं से युक्त मीमांसा-सी, कण्ठके सम्बन्धको प्राप्त करनेवाली, ध्रुवसे बँधी हुई, रोगोंसे युक्त प्रथमाक्षर-वाली, मन्द्र तथा तार सप्तकसे समन्वित, विविध तालोंमें भरी हुई तथा अनेक भावनाओंसे भावित गीतिसे देव त्रिलोचनकी स्तुति करती हुई; ध्यानका अभ्यास करते हुए-से, कान खड़े हुए, अत्यन्त मधुर गीतोंसे खिंचे हुए और गोल बनाकर बैठे हुए मृग, सूकर, वानर, हाथी, सिंह तथा शरभ आदि वनैले पशुओंसे सुनी जाती हुई गीतभरी वीणाको वजाती हुई; आकाशसे अवतरित देवनदी-सी, प्राकृत भाषा रहित दीक्षित पुरुषकी वाणीकी नाईं असाधारण; त्रिपुरशत्रुके वाणकी लड़कीकी नाईं तेजोमयी; मानों अमृतको पी लेनेसे तृष्णासे विहीन वनी, (लालिमा विहीन) शम्भुके शिरपर स्थित चन्द्रकला-सी विरक्त, (अन्तस्में निर्मल) मन्थनरहित समुद्रकी जल-सम्पत्ति-सी निष्कलुष; समासविहीन पदवृत्ति सी द्वन्द्वरहित, (अर्थशून्य) बौद्ध-बुद्धिसी आश्रय विहीन; (अग्निमें प्रवेश करनेवाली) विदेहनन्दिनी (सीता)-सी परम ज्योतिमें प्रवेश प्राप्त करने-वाली, (पाशोंके हृदयको वशंवद वना लेनेवाली) द्यूतमें चतुर स्त्री-सी इन्द्रियों और हृदयको वशमें रखनेवाली, (जलसे भरी देहवाली) पृथ्वी-सी जल मात्रसे शरीर धारण करनेवाली; (सूर्यकी उष्णताका हरण करनेवाली) हैमन्त प्रभातकी लक्ष्मी-सी सूर्य-प्रकाशको पी लेनेवाली; (यति और गणों के उपयुक्त मात्राओंसे युक्त) आर्या छन्द-सी मुनिजनोंके योग्य सम्पत्तिको ग्रहण करनेवाली; निश्चल बैठनेके कारण उरेही-सी; देह-कान्तिसे पृथ्वीको अनुरञ्जित करनेसे किरणमयी-सी; ममत्वविहिन, निरभिमान, मत्सर रहित, मनुष्यसे भिन्न आकारवाली; दिव्य होनेसे अप्रतीत वयवाली होती हुई भी अठारह वर्षकी-सी प्रतीत होती हुई-सी पाशुपत व्रतविधिको स्वीकार करनेवाली कन्याको देखा।

२—ततोऽवतीर्य तरुशाखायां बद्ध्वा तुरंगमुपसृत्य भगवते भक्त्या प्रणम्य त्रिलोचनाय तामेव दिव्ययोषितमनिमेषपक्ष्मणा निश्चलनिबद्ध-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्येण चक्षुषा पुनर्निरूपयामास। उदपादि चास्य तस्या रूपसम्पदा कान्त्या प्रशान्त्या चाविर्भूतविस्मयस्य मनसि; "अहो जगति जन्तूनामसमर्थितोपनतान्यापतन्ति वृत्तान्तान्तराणि। तथा हि। मया मृगयायां यदृच्छया निरर्थकमनुबध्नता तुरङ्गमुखमिथुनमयमतिमनोहरो मानवानामगम्यो दिव्यजनसंचरणोचितः प्रदेशो वीक्षितः। अत्र च सलिलमन्वेषमाणेन हृदयहारि सिद्धजनोपसृष्टजलं सरो दृष्टम्। तत्तीरलेखाविश्रान्तेन चामानुषं गीतमाकर्णितम्। तच्चानुसरता मानुषदुर्लभदर्शना दिव्यकन्यकेयमालोकिता। न हि मे संशीतिरस्या दिव्यतां प्रति। आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषताम्। कुतश्च मर्त्यलोके संभूतिरेवंविधानाम् गन्धर्वध्वनिविशेषाणाम्। तद्यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलासशिखरम्, नोत्पतति वा गगनतलम्, ततः 'का त्वम् किमभिधाना वा, किमर्थं वा प्रथमे वयसि प्रतिपन्ना व्रतम्', इति सर्वमेतदेनामुपसृत्य पृच्छामि। अतिमहानयमवकाश आश्चर्याणाम्" इत्यवधार्य तस्यामेव स्फटिकमण्डपिकायामन्यतमं स्तम्भमाश्रित्य समुपविष्टो गीतसमाप्त्यवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ।

तदनन्तर घोड़ेसे उतर कर, उसे वृक्षकी शाखा में बाँधकर, समीप जाकर, भगवान् शंकरको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उसी दिव्य ललनाको टकटकी बाँधकर अपलक नेत्रोंसे पुनः ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया। उसकी रूप-समृद्धि, कान्ति और उत्कृष्ट शान्तिसे विस्मयाभिभूत इसके मनमें विचार आया, "अरे! संसारमें जीवधारियोंके सामने बहुत-सी दूसरी बातें बिना सोचे हुए अकस्मात् आ जाती हैं। देखिए, शिकारके समय स्वेच्छासे अश्वमुखी जोड़ेका व्यर्थ अनुसरण करते हुए मैंने मनुष्योंके लिए अगम और दिव्य जनोंके भ्रमणके योग्य अति सुन्दर प्रदेशको देख लिया। और यहाँ जल ढूँढते हुए हृदयाकर्षक तथा सिद्धजनोंसे सेवित जलवाला तालाब दिखलायी पड़ा। उसके किनारे आराम करते हुए दिव्य गीत सुना। उसका अनुसरण करते हुए मैंने मनुष्योंके लिए अलभ्य दर्शनवाली इस दिव्य कन्याका अवलोकन किया। इसकी दिव्यताके प्रति मुझे किसी प्रकारका सन्देह नहीं है, क्योंकि आकार ही अमानुषताका अनुमान करा रहा है। इस प्रकारकी विशिष्ट गन्धर्व-ध्वनियोंका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्भव मर्त्यलोकमें कहाँ ? यदि यह मेरे दृष्टि-पथसे सहसा ओझल नहीं हो जाती, अथवा कैलासकी चोटीपर नहीं चढ़ जाती, या आकाशमें नहीं उड़ जाती, तो 'तुम कौन हो ? या तुम्हारा नाम क्या है ? अथवा किसलिए जवानीमें व्रत कर रही हो ?' यह सब इसके पास जाकर पूछूँगा। आश्चर्योंके लिए यहाँ बहुत बड़ा स्थान है।" ऐसा निश्चयकर उसी स्फटिक मंडपके एक खंभेका सहारा लेकर आराम करता हुआ और गीत-समाप्तिके अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा रहा।

३—अथ गीतावसाने मूकीभूतवीणा प्रशान्तमधुकरमधुररुतेव कुमुदिनी सा कन्यका समुत्थाय प्रदक्षिणीकृत्य कृतहरप्रणामा परिवृत्य स्वभावधवलया तपःप्रभावप्रगल्भया दृष्ट्या समाश्वासयन्तीव, पुण्यैरिव स्पृशन्ती, तीर्थजलैरिव प्रक्षालयन्ती, तपोभिरिव पावयन्ती, शुद्धिमिव कुर्वाणा, वरप्रदानमिवोपपादयन्ती, पवित्रतामिव नयन्ती, चन्द्रापीड-माबभाषे, 'स्वागतमतिथये, कथमिमां भूमिमनुप्राप्तो महाभाग-स्तदुत्तिष्ठागम्यतामनुभूयतामतिथिसत्कारः' इति। एवमुक्तस्तु तया सम्भाषणमात्रेणैवानुगृहीतमात्मानं मन्यमान उत्थाय भक्त्या कृतप्रणामः, 'भगवति यथाज्ञापयसि' इत्यभिधाय दर्शितविनयः शिष्य इव तां व्रजन्तीमनुवव्राज। व्रजंश्च समर्थयामास, 'हन्त तावन्नेयं मां दृष्ट्वा तिरोभूता। कृतं हि मे कुतूहलेन प्रश्नाशया हृदि पदम्। यथा चेयमस्यास्तपस्विजनदुर्लभदिव्यरूपाया अपि दाक्षिण्यातिशया प्रति-पत्तिरभिजाता विभाव्यते तथा सम्भावयामि नियतमियमखिलमात्मोदन्त-मभ्यर्थमाना मया कथयिष्यति' इति। एवं च कृतमतिः पदशतमात्रमिव गत्वा निरन्तरैर्दिवापि रजनीसमयमिव दर्शयद्भिस्तमालतरुभिरन्धकारित-पुरोभागाम्, उत्फुल्लकुसुमेषु लतानिकुञ्जेषु कूजतां मन्द्रं मदमत्तमधुलिहां विरुतिभिर्मुखरीकृतपर्यन्ताम्, अतिदूरपातिनीनां च धवलशिलातल-प्रतिघातोत्पतनफेनिलानामपां प्रस्रवणैरुत्कोटिग्रावविटङ्कविपाट्यमानै-रुच्चरद्ध्वनिभिरवशीर्यमाणतुषारशिशिरसीकरासारैराबध्यमाननीहाराम्, हिमहारहस्रहासधवलैश्चोभयतः क्षीरद्भिर्निर्झरैर्द्वारावलम्बिचलच्चामरकला-पामिवोपलक्ष्यमाणाम्, अन्तःस्थापितमणिकमण्डलुमण्डलाम्, एकान्ताव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लम्बितयोगपट्टिकाम्, विशाखिकाशिखरनिबद्धनालिकेरीफलवल्कलमय-धौतोपानद्युगोपेताम्, अवशीर्णाङ्गभस्मधूसरवल्कलशयनीयसनाथैकदेशाम्, इन्दुमण्डलेनेव टङ्कोत्कीर्णेन शङ्खमयेन भिक्षाकपालेनाधिष्ठिताम्, सन्निहितभस्मालाबुकां गुहामद्राक्षीत् । तस्याश्च द्वारि शिलातले समुपविष्टो वल्कलशयनशिरोभागविन्यस्तवीणां ततः पर्णपुटेन निर्झरादागृहीत-मर्घ्यसलिलमादाय तां कन्यकां समुपस्थिताम् "अलमतियन्त्रणया, कृतमति-प्रसादेन, भगवति, प्रसीद विमुच्यतामयमत्यादरः, त्वदीयमालोकनमपि सर्वपापप्रशमनमघमर्षणमिव पवित्रीकरणायालम्, आस्यताम्" इत्यब्रवीत्। अनुबध्यमानश्च तया तां सर्वामतिथिसपर्यामतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रयं प्रतिजग्राह ।

तत्पश्चात् गीतके समाप्त हो जानेपर भौरोंके मधुर गुंजनसे विहीन कुमुदिनीके सदृश वीणाको मौन कर देनेवाली वह कन्या उठकर प्रदक्षिणा करनेके बाद शंकरको प्रणामकर और पीछे घूमकर स्वभावसे शुभ्र एवं तपस्याके प्रभावसे प्रगल्भ दृष्टिसे आश्वासन देती हुई-सी, पुण्यों से छूती हुई-सी, तीर्थजलोंसे धोती हुई-सी, तपस्यासे पवित्र करती हुई-सी, शुद्ध बनाती हुई-सी, वरदानको उद्भावित करती हुई-सी, पवित्रतामें पहुँचाती हुई-सी, चन्द्रापीडसे इस प्रकार बोली, 'अतिथि स्वागत है। महाभाग ! इस भूमिपर कैसे पहुँचे ? उठिए, आइए, अतिथि-सत्कारका अनुभव कीजिए।' उसके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर केवल संभाषणसे अपनेको कृतार्थ मानते हुए, भक्तिपूर्वक प्रणाम कर लेनेवाले चन्द्रापीडने 'भगवतीकी जैसी आज्ञा', यह कहकर विनय दिखलानेवाले शिष्यके समान जाती हुई महाश्वेताका अनुसरण किया। जाते हुए उसने मनमें निश्चय किया। 'अहा ! यह मुझे देखकर अन्तर्धान नहीं हुई। अतः कौतूहलने मेरे हृदयमें मनकी आशाके लिए स्थान बना दिया। तपस्वियोंके लिए भी दुर्लभ एवं दिव्य रूपवाली इस कन्याका मेरे प्रति उदारताकी अधिकतासे भरा हुआ जिस प्रकारका विश्वास लक्षित होता है, उससे यह संभावना करता हूँ कि मेरे अनुरोधपर निश्चय ही यह अपना समस्त वृत्तान्त कह देगी।' इस प्रकार विचार करनेवाले चन्द्रापीडने केवल सौ डग चलकर दिनमें रात्रि-समयको उपस्थित करनेवाले सघन तमाल वृक्षोंसे उत्पन्न अंधकारसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ढंके हुए अग्रभागसे युक्त; प्रफुल्ल सुमनोंसे भरे लता-कुञ्जोंपर स्वरसे गुञ्जन करनेवाले मतवाले मधुकरोंके कूजनसे मुखर परिसरसे समन्वित; अत्यन्त दूरसे गिरनेवाले एवं शुभ्र शिलाओंकी टकराहटसे उछलनेके कारण फेनमय, ऊपरकी ओर नोकीले पत्थरोंके उर्ध्वभागमें विथुरे, अत्यन्त मुखर, हिमशीतल एवं जर्जर सलिल कणोंकी धारासे युक्त झरनोंसे उत्पन्न सघन तुषारसे भरी हुई; दोनों ओरसे झरते हुए और हिम, हार तथा शिवकी हँसीके समान शुभ्र झरनोंसे द्वार-पर लटकते एवं हिलते हुए चँवरोंके समूहसे समन्वित-सी; भीतर रखे हुए मणिमय कमंडलोंसे युक्त; कोनेमें लटकी हुई योगपट्टिकासे सज्जित; सिकहरमें रखे गये नारियलकी जटासे निर्मित और धुले हुए जूतेके जोड़ेसे समन्वित; शरीरसे छूटी हुई राखसे धूँसे-से गये वल्कलके बिछौनेसे एक ओर अलंकृत; टाँकीसे उकेरे गये शखनिर्मित चन्द्रमण्डलके समान भिक्षापात्रसे युक्त; राख रखनेके लिए स्थापित तुम्बीसे सुशोभित गुहाको देखा। उसी गुहाके द्वारपर स्थित शिलापर बैठे हुए चन्द्रापीडने वल्कलके बिछौनेके सिरहाने वीणा रख देनेवाली बादमें झरनेसे पत्तेके दोनेमें अर्घ्य-जल ले आनेवाली उस कन्यासे इस प्रकार कहा—"अधिक कष्ट न कीजिए। बहुत कृपा की, भगवती प्रसन्न हों, अत्यन्त आदरका इस भावनाका परित्याग करें।" उसके अनुरोधपर उस समूची अतिथि-पूजाको अत्यन्त दूरसे सिर झुकाकर सादर ग्रहण किया।

४—कृतातिथ्यया च तया द्वितीयशिलातलोपविष्टया क्षणमिव तूष्णीं स्थित्वा क्रमेण परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनानुसरणप्रसङ्गे-नागमनमात्मनः सर्वमाचचक्षे। विदितसकलवृत्तान्ता चोत्थाय सा कन्यका भिक्षाकपालमादाय तेषामायतनतरूणां तलेषु विचचार। अचिरेण तस्याः स्वयंपतितैः फलैरपूर्यत भिक्षाभाजनम्। आगत्य च तेषां फलानामुपयोगाय नियुक्तवती चन्द्रापीडम्। आसीच्च तस्य चेतसि, "नास्ति खल्वसाध्यं नाम तपसाम्। किमतः परमाश्चर्यं यत्र व्यपगतचेतना अपि सचेतना इवास्यै भगवत्यै समतिसृजन्तः फलान्यात्मानुग्रहमुपपादयन्ति वनस्पतयः। चित्रमिदमालोकितमस्माभिरदृष्टपूर्वम्"। इत्यधिकतरोपजातविस्मयश्चोत्थाय तमेव प्रदेशमिन्द्रायुधमानीय व्यपनीतपर्याणं नातिदूरे संयम्य निर्झर-जलनिर्वर्तितस्नानविधिस्तान्यमृतरसस्वादून्युपभुज्य फलानि पीत्वा च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुषारशिशिरं प्रस्रवणजलमुपस्पृश्यैकान्ते तावदवतस्थे यावत्तयापि कन्यकया कृतो जलफलमूलमयेष्वाहारेषु प्रणयः ।

अतिथि-सत्कार करके दूसरी शिलापर बैठनेवाली एवं क्षण भर चुप रह कर क्रमशः पूछनेवाली उस कन्यासे दिग्विजयसे लेकर किन्नर-मिथुनके अनुसरणके प्रसंग और यहाँ अपने आनेतकका सारा वृतान्त कह सुनाया। सारी बात जान लेनेवाली वह कन्या उठी और भिक्षा-पात्र लेकर मन्दिरके उन वृक्षोंके नीचे घूमी। उसका भिक्षापात्र अपने आप गिरे हुए फलोंसे शीघ्र ही भर गया। उसने आकर चन्द्रापीडको उन फलोंका उपयोग करनेके लिए नियुक्त कर दिया। उसने मनमें सोचा—"तपस्याके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। जहाँ अचेतन वृक्ष भी सचेतन जैसे इन भगवतीको फल देते हुए अपनी कृपाको प्रकट करते हैं। इससे अधिक आश्चर्यकी कौन-सी बात होगी? मैंने यह अदृष्टपूर्व आश्चर्य देखा।" इस प्रकार और अधिक विस्मयान्वित हो चन्द्रापीड उसी स्थानपर इन्द्रायुधको लाकर, चारजामा उतार कर, समीपमें ही बाँधनेके बाद स्वादिष्ट फलोंको खाकर एवं हिमशीतल निर्झर नीर पीकर आचमन करने बाद तबतक बैठा रहा, जबतक उस कन्याने जल, फल और फूलवाले भोजनसे प्रीति नहीं कर ली।

५—इति परिसमापिताहारां निर्वर्तितसन्ध्योचिताचारां शिलातले विश्रब्धमुपविष्टां निभृतमुपसृत्य नातिदूरे समुपविश्य मुहूर्तमिव स्थित्वा चन्द्रापीडः सविनयमवादीत्, "भगवति, त्वत्प्रसादप्राप्तिप्रोत्साहितेन कुतूहलेनाकुलीक्रियमाणो मानुषतासुलभो लघिमा बलादनिच्छन्तमपि मां प्रश्नकर्मणि नियोजयति। जनयति हि प्रभुप्रसादलवोऽपि प्रागल्भ्यमधीरप्रकृतेः। स्वल्पाप्येकदेशावस्थाने कालकलापरिचयमुत्पादयति। अणुरप्युपचारपरिग्रहः प्रणयमारोपयति। तद्यदि नातिखेदकरमिव ततः कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि। अतिमहत्खलु भवद्दर्शनात्प्रभृति मे कौतुकमस्मिन्विषये। कतमन्मरुतामृषीणां गन्धर्वाणां गुह्यकानामप्सरसां वा कुलमनुगृहीतं भगवत्या जन्मना। किमर्थं वास्मिन्कुसुमसुकुमारे नवे वयसि व्रतग्रहणम्। क्वेदं वयः। क्वेयमाकृतिः। क्व चायं लावण्यातिशयः। क्वेयमिन्द्रियाणामुपशान्तिः तदद्भुतमिव मे प्रतिभाति। किंनिमित्तं वानेकसिद्ध-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साध्यसंबाधानि सुरलोकसुलभान्यपहाय दिव्याश्रमपदान्येकाकिनी वनमिदममानुषमधिवससि। कश्चायं प्रकारो यत्तैरेव पञ्चभिर्महाभूतैरारब्धमीदृशीं धवलतां धत्ते शरीरम्। नेदमस्माभिरन्यत्र दृष्टश्रुतपूर्वम्। अपनयतु नः कौतुकम्। आवेदयतु भवती सर्वम्।" इत्येवमभिहिता सा किमप्यन्तर्ध्यायन्ती तूष्णीं मुहूर्तमिव स्थित्वा निःश्वस्य स्थूलस्थूलैरन्तर्गतहृदयशुद्धिमिवादाय निर्गच्छद्भिः, इन्द्रियप्रसादमिव वर्षद्भिः, तपोरसनिस्यन्दमिव स्रवद्भिः लोचनविषयं धवलिमानमिव द्रवीकृत्य पातयद्भिः, अच्छाच्छैः, अमलकपोलस्थलस्खलितैः, अवशीर्णहारमुक्ताफलतरलपातैः, अनुबद्धबिन्दुभिः, वल्कलावृतकुचशिखरजर्जरितसीकरैः, अश्रुभिरामीलितलोचना निःशब्दं रोदितुमारेभे।

इस प्रकार भोजन समाप्त कर लेनेके बाद सायंकालीन विधियोंको संपन्न कर लेनेवाली एवं शिलापर बैठी हुई उस कन्याके पास निःशब्द पहुँचकर तथा पासमें बैठकर मुहूर्त भर चुप रहनेके पश्चात् चन्द्रापीडने सविनय कहा, 'भगवती, तुम्हारी कृपाकी प्राप्तिसे उत्साहित कौतूहलसे आकुल बनायी गयी मानवसुलभ लघुता, न चाहते हुए भी, मुझे प्रश्नकार्यमें बलपूर्वक नियुक्त कर रही है। प्रभुकी प्रसन्नताका अणुमात्र भी अधीर स्वभाववाले मनुष्यमें प्रागल्भ्यका सृजन करता है। समयका लघु अंश भी एक स्थानमें रहनेसे परिचयका उद्भव करता है। उपचारकी थोड़ी-सी भी स्वीकृति प्रीतिका आरोप करती है। यदि अधिक क्लेशकर न हो तो आपकी कथासे मैं अपनेको अनुगृहीत बनानेकी इच्छा करता हूँ। आपके दर्शनसे लेकर इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल है। मरुतों, ऋषियों, गंधर्वों, गुह्यकों अथवा अप्सराओंके किस कुलको भगवतीने अपने जन्मसे अलंकृत किया है? कुसुमके समान सुकुमार इस नयी उम्रमें किस प्रयोजनसे आपने व्रत-चर्या स्वीकार की? कहाँ यह उम्र, कहाँ यह आकार? कहाँ यह अतिशायी सौंदर्य, कहाँ यह इन्द्रियोंकी प्रशान्ति? यह सब मुझे अद्भुत-सा लगता है। अनेक सिद्धों और साध्योंसे भरे हुए देव-सुलभ दिव्य आश्रमोंको छोड़कर अकेली इस निर्जन वनमें किस हेतु निवास कर रही हो? वह कौन-सा ढंग है कि उन्हीं पाँच महाभूतोंसे निर्मित आपके शरीरने इसी प्रकारकी गोराई धारण कर रखी है? मैंने यह पहले न अन्यत्र सुना है, न देखा है। हमारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कौतूहल दूर कीजिए। आप सब कुछ बतायें, ऐसा कहनेपर मनमें कुछ सोचती हुई हृदयकी आन्तरिक शुद्धि लेकर निकलते हुए-से, इन्द्रियोंकी प्रसन्नताकी वर्षा करते हुए-से, तपोरसके निर्झरको बहाते हुए-से, नेत्र सम्बन्धी धवलिमाको रस बना कर गिराते हुए-से, अति स्वच्छ, निर्मल कपोलोंपर होकर गिरते हुए, जर्जर हारसे अलग हुए मोतियोंकी भाँति काँप कर गिरते हुए, वल्कलसे ढंके हुए स्तनके अग्रभागपर कण-कण होकर सीकर रूपमें परिणत बड़े-बड़े आँसुओंसे भरे नयनोंसे युक्त उस महाश्वेताने क्षण भर चुप रहकर और लम्बी साँसें लेकर निःशब्द रोना शुरू कर दिया।

६—तां च प्ररुदितां दृष्ट्वा चन्द्रापीडस्तत्क्षणमचिन्तयत्, "अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानां यदीदृशीमप्याकृतिमनभिभवनीयामात्मीयां कुर्वन्ति। सर्वथा न न कंचन स्पृशन्ति शरीरधर्माणमुपतापः। बलवती हि द्वन्द्वानां प्रवृत्तिः इदमपरमधिकतरमुपजनितमतिमहन्मनसि मे कौतुकमस्या बाष्पसलिलपातेन। न ह्यल्पीयसा शोककारणेन क्षेत्रीक्रियन्त एवंविधा मूर्तयः। न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधा"। इति संवर्धितकुतूहलश्च शोकस्मरणहेतुतामुपगतमपराधिनमिवात्मानमवगच्छन्नुत्थाय प्रस्रवणादञ्जलिना मुखप्रक्षालनोदकमुपनिन्ये। सा तु तदनुरोधादविच्छिन्नबाष्पजलधारासन्तानापि किञ्चित्कषायितोदरे प्रक्षाल्य लोचने वल्कलोपान्तेन वदनमपमृज्य दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शनैः प्रत्यवादीत्, "राजपुत्र, किमनेनातिनिघृणहृदयाया मम मन्दभाग्यायाः पापाया जन्मनः प्रभृति वैराग्यवृत्तान्तेनाश्रवणियेन श्रुतेन। तथापि यदि महत्कुतूहलम् तत्कथयामि। श्रूयताम्।

उसे रोती हुई देखकर चंद्रापीडने उस समय चिंतना की, "अहो! विपत्तियोंका आक्रमण दुर्दमनीय होता है, जो इस प्रकारकी भी अपराजेय आकृतिको वशवद बना लेता है। दुःख किस शरीरधर्मका सर्वथा स्पर्श नहीं करते? द्वन्द्वात्मिक प्रवृत्ति बड़ी बलवती होती है। इसके अश्रुपातने मेरे मनमें अधिक महत्तर दूसरे कौतुककी सर्जना कर दी है। इस प्रकारके लोग छोटे-मोटे शोककारणोंके क्षेत्र नहीं बनते। पृथ्वी क्षुद्र आघातों से ताडित होकर नहीं काँपती।" ऐसे बढ़े हुए कुतूहलसे युक्त चन्द्रापीड शोकको स्मरण करानेका हेतु बननेसे अपनेको अपराधी समझकर उठा और झरनेसे मुख धोने के लिए अंजुरीमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जल ले आया। उसके अनुरोधसे निरन्तर बहती हुई आँसुओंकी धारासे समन्वित होती हुई भी उसने कुछ लाल हुए नेत्रोंको धोकर, वल्कलके किनारेसे मुँह पोंछा तथा लम्बी-लम्बी एवं गरम साँसें भरकर धीरे-धीरे उत्तर दिया, "राजकुमार ! निर्ममना एवं मंदभाग्यवाली मुझ जैसी पापिनोके जन्मसे वैराग्यपर्यंत, सुननेके अयोग्य, वृत्तान्त को सुनकर आप क्या करेंगे ? फिर भी यदि बहुत बड़ा कुतूहल है तो कह रही हूँ। सुनिए।

७—एतत्प्रायेण कल्याणाभिनिवेशिनः श्रुतिविषयमापतितमेव यथा विबुधसद्मन्यप्सरसो नाम कन्यकाः सन्ति। तासां चतुर्दश कुलानि। एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसः समुत्पन्नम् अन्यद्वेदेभ्यः सम्भूतम्। अन्यदग्नेरुद्भूतम्। अन्यत्पवनात्प्रसूतम्। अन्यदमृतान्मथ्यमानादुत्थितम्। अन्यज्जलाज्जातम्। अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम्। अन्यत्सोमरश्मिभ्यो निष्पतितम्। अन्यद्भूमेरुद्भूतम्। अन्यत्सौदामनीभ्यः प्रवृत्तम्। अन्यन्मृत्युना निर्मितम्। अपरं मकरकेतुना समुत्पादितम्। अन्यत्तु दक्षस्य प्रजापतेरतिप्रभूतानां कन्यकानां मध्ये द्वे सुते मुनिररिष्टाच बभूवतुस्ताभ्यां गन्धर्वैः सह कुलद्वयं जातम्। एवमेतान्येकत्र चतुर्दश कुलानि। गन्धर्वाणां तु दक्षात्मजाद्वितयसम्भवं तदेव कुलद्वयं जातम्। अत्र मुनेस्तनयश्चित्रसेनादीनां पञ्चदशानां भ्रातॄणामधिको गुणैः षोडशश्चित्ररथो नाम समुत्पन्नः। स किल सकलत्रिभुवनप्रख्यातपराक्रमो भगवता समस्तसुरमौलिमालालालितचरणनलिनेनाखण्डलेन सुदृच्छब्देनोपबृंहितप्रभावः सर्वेषां गन्धर्वाणामाधिपत्यमसिलतामरीचिनिचयमेचकितेन बाहुना समुपार्जितं शैशव एवाप्तवान्। इतश्च नातिदूरे तस्यास्माद्भारतवर्षादुत्तरेणानन्तरे किंपुरुषनाम्नि वर्षे वर्षपर्वतो हेमकूटो नाम निवासः। तत्र च तद्भुजयुगपरिपालितान्यनेकानि गन्धर्वशतसहस्राणि प्रतिवसन्ति। तेनैव चेदं चैत्ररथं नामातिमनोहरं काननं निर्मितम्। इदं चाच्छोदाभिधानमतिमहत्सरः खानितम्। अयं च भवानीपतिरुपरचितो भगवान्। अरिष्टायास्तु पुत्रस्तुम्बुरुप्रभृतीनां सोदर्याणां षण्णां ज्येष्ठो हंसो नाम जगद्विदितो गन्धर्वस्तस्मिन्द्वितीये गन्धर्वकुले गन्धर्वराजेन चित्ररथेनैवाभिषिक्तो बाल एव राज्यपदमासादितवान्। अपरिमितगन्धर्वबल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिवारस्य तस्यापि स एव गिरिरधिवासः। यत्तु तत्सोममयूख
सम्भूतानामप्सरसां कुलं तस्मात्किरणजलानुसारगलितेन सकलेन
रजनिकरकलाकलापलावण्येन निर्मिता त्रिभुवननयनाभिरामा भगवती
द्वितीयेव गौरी गौरीति नाम्ना हिमकरकिरणावदातवर्णा कन्यका प्रसूता।
तां च द्वितीयगन्धर्वकुलाधिपतिर्हंसो मन्दाकिनीमिव क्षीरसागरः प्रणयिनी
मकरोत्। सा तु भगवता मकरकेतनेनेव रतिः, शरत्समयेनेव कमलिनी
हंसेन संयोजिता सदृशसमागमोपजनितामतिमहतीं मुदमुपगतवती
निखिलान्तःपुरस्वामिनी च तस्याभवत्।

कल्याणमें आग्रह रखनेवाले आपने प्रायः सुना ही होगा कि देवलोक
अप्सरा नामकी कन्याएँ हैं। उनके चौदह कुल हैं—एक भगवान् ब्रह्मा
मुखसे उत्पन्न हुआ। दूसरेका उद्भव वेदोंसे हुआ। अन्य कुलकी उत्पत्ति
अग्निसे हुई। इतर कुल पवनसे संभूत हुआ। एक कुलकी उत्पत्ति मथे जा
हुए अमृत से हुई। अन्य कुलका जन्म जलसे हुआ। दूसरे कुलकी सृष्टि
सूर्यकी किरणोंसे हुई। अन्य कुल चन्द्र-किरणोंसे निकला। दूसरे कुलका उद्भव
भूमिसे हुआ। अन्य कुल विद्युतसे प्रवर्त्तित हुआ। दूसरे कुल का निर्माण
मृत्युके द्वारा हुआ। अपर कुलका सम्पादन कामदेव ने किया। प्रजापति दक्ष
बहुत-सी कन्याओंमें मुनि और अरिष्टा नामकी दो पुत्रियाँ हुईं। उनका गंधर्वों
साथ दो कुल हुआ। इस प्रकार सब मिलाकर चौदह कुल हुए। गंधर्व
और यक्षकी दोनों पुत्रियोंसे तो वही दो कुल हुए। इसमें मुनिको, चित्र
आदि पन्द्रह भाइयोंमें सर्वाधिक गुणी सोलहवाँ चित्ररथ नामक पुत्र हुआ।
त्रिलोकमें प्रसिद्ध पराक्रम वाले, सारे देवोंकी मस्तक-मालासे पूजित पादपद्म
भगवान् इन्द्रके द्वारा मित्र-सम्बोधनसे बढ़ाये गये प्रभाववाले उसने शैशवमें
खड्गलताकी किरणोंके समूहसे साँवली बनायी गयी भुजाओंसे अर्जित सम
गन्धर्वोंके आधिपत्यको प्राप्त कर लिया। इस भारतवर्षके उत्तरमें, यहाँ से थो
ही दूरपर, किंपुरुष नामक देशमें हेमकूट नामक वर्षपर्वत उसका निवास-स्थ
है। वहाँ उसकी दोनों भुजाओंसे भली-भाँति रक्षित अगणित हजार गन्धर्व
निवास करते हैं। उसीने अत्यन्त चित्ताकर्षक चैत्ररथ नामक इस उपवन
निर्माण करवाया है। उसीने अति महान् अच्छोद नामक यह सरोवर खुद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है और इन भगवान् भवानी-पतिकी प्रतिष्ठा करायी है। उन द्वितीय गन्धर्व कुलमें अरिष्टाके छह पुत्रोंमें बड़े संसार-प्रसिद्ध हंस नामक गन्धर्वने गन्धर्वराज चित्ररथके द्वारा अभिषिक्त होकर लड़कपनमें ही राज्य प्राप्त कर लिया था। अनन्त गन्धर्व सेना और परिवारवाले अरिष्टाके पुत्रका भी वही पर्वत निवास-स्थल है। चन्द्रकिरणोंसे उत्पन्न अप्सराओंका जो कुल था, उसमें मानो अमृतसे गलकर निकले हुए चन्द्रमाकी कलाओंके समूहके समग्र लावण्यसे बनायी गयी, त्रिलोकके लोचनोंको सुन्दर लगनेवाली दूसरी भगवती गौरीके समान और चन्द्ररश्मियों-सी गोरी गौरी नामक कुमारी उत्पन्न हुई। दूसरे कुलके स्वामी हंसने क्षीरसागरके समान मंदाकिनी-सी उस कन्याको प्रणयिनी बनाया। जैसे कामदेवसे मिलकर रति एवं शरद् कालसे संयुक्त होकर कमलिनी शोभित होती है, उसी प्रकार हंससे मिलकर अनुरूप समागमसे उत्पन्न आनन्दको प्राप्त करती हुई वह उसके समस्त अन्तःपुरकी स्वामिनी बन गयी।

८—तयोश्च तादृशयोर्महात्मनोरहमीदृशी विगतलक्षणा शोकाय केवलमनेकदुःखसहस्रभाजनमेकैवात्मजा समुत्पन्ना। तातस्त्वनपत्यतया सुतजन्मातिरिक्तेन महोत्सवेन मज्जन्माभिनन्दितवान्। अवाप्ते च दशमेऽहनि कृतयथोचितसमाचारो महाश्वेतेति यथार्थमेव नाम कृतवान्। साहं पितृभवने बालतया कलमधुरप्रलापिनी वीणेव गन्धर्वाणमाङ्कादङ्कं सञ्चरन्त्यविदितस्नेहशोकायासमनोहरं शैशवमतिनीतवती। क्रमेण च कृतं मे वपुषि, वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम्।

उस प्रकारके दोनों महात्माओंके यहाँ शुभ लक्षणोंसे विहीन अनेक दुःखोंकी पात्र, केवल शोकके लिए बनी हुई इस प्रकारकी अकेली पुत्री मैं उत्पन्न हुई। निःसन्तान होनेके कारण पिताने पुत्र-जन्मसे अधिक मेरे जन्मका अभिनन्दन किया। दसवें दिन यथोचित आचारोंका सम्पादन करनेवाले मेरे पिताने अन्वर्थक महाश्वेता नाम रखा। शिशु होनेके कारण कल और मधुर बोलनेवाली वीणाकी भाँति गन्धर्वोंकी एक गोदसे दूसरीमें घूमती हुई, प्रेम और शोकके दुःखको न जानती हुई मैंने पिताके घरमें लड़कपन बिता दिया। जिस प्रकार क्रमशः वसन्तमें मधुमास, मधुमासमें नयी कोपलें, नयी कोपलोंमें सुमन, सुमनोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भौंरे और भौंरोंमें मतवालापन आता है, उसी प्रकार नयी जवानीने मेरी देह
प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

९—अथ विजृम्भमाणनवनलिनवनेषु, अकठोरचूतकलिकाकलापक्व
कामुकोत्कलिकेषु, कोमलमलयमारुतावतारतरङ्गितानंगध्वजांशुकेषु, मद
कलितकामिनीगण्डूषसीधुसेकपुलकितबकुलेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृत
कालेयककुसुमकुड्मलेषु, अशोकतरुताडनारणितरमणीमणिनूपुरझंकारसह
मुखरेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमञ्जुसिञ्जितसुभगसहकारे
अविरलकुसुमधूलिवालुकापुलिनधवलितधरातलेषु, मधुमदावडम्बितमधुक
कदम्बकसंवाह्यमानलतादोलेषु, उत्फुल्लपल्लवलवलीलोयमानमत्तकोकिल
ल्लासितमधुसीकरोद्दामदुर्दिनेषु, प्रोषितजनजायाजीवोपहारहृष्टमन्मथ
स्फालितचापरवभयस्फुटितपथिकहृदयरुधिरार्द्रमार्गेषु, अविरतपतत्कुसु
शरपतत्रिपत्रसूत्कारबधिरीकृतदिङ्मुखेषु, दिवापि प्रवृत्तान्तर्मदनरागान्ध
भिसारिकासार्थसंकुलेषु, उद्वेलरतिरससागरपूरप्लावितेषु, सकलजीवलोक
हृदयानन्ददायकेषु, मधुमासदिवसेष्वेकदाहमम्बया सह मधुमा
विस्तारितशोभं प्रोत्फुलनवनलिनकुमुदकुवलयकह्लारमिदमच्छोदं स
स्नातुमभ्यागमम् । अत्र च स्नानार्थमागतया भगवत्या पार्वत्या तटशिला
लेषु, विलिखितानि सभृङ्गिरिटीनि पांशुनिमग्नकुशपदमण्डलानुमितमुनिजन
प्रणामप्रदक्षिणानि त्र्यम्बकप्रतिबिम्बकानि वन्दमाना, भ्रमरभरभुग्न
केसरजर्जरकुसुमोपहाररम्योऽयं लतामण्डपः परभृतनखकोटिपाटितकुड्म
नालविवरविगलितमधुनिकरधारः सुपुष्पितोऽयं सहकारतरुः, उन्मदम
कुलकलकलभीतभुजङ्गमुक्तलता शिशिरेयं चन्दनवीथिका, विकचकु
पुञ्जपातसूचितवनदेवताप्रेङ्खोलनशोभनेयं लतादोला, बहलकुसुम
पटलमग्नकलहंसपदलेखमतिरमणीयमिदं तीरतरुतलमिति स्निग्धमन
तरोद्देशदर्शनलोभाक्षिप्तहृदया सह सखीजनेन व्यचरम् ।

तत्पश्चात् खिले हुए नये कमलोंके वनोंसे सजे, कोमल बौरोंके गु
उत्कण्ठित कामियोंसे भरे, सुकुमार मलय पवनके चलने से फहरती हुई
पताकाओंसे युक्त, मतवाली ललनाओंकी मुख-मदिरासे सींचे जानेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुलक-भरे वकुल-तरुओंसे सुशोभित; भ्रमर-कुल-कलंकोंसे काली बनायी गयी कालेयककी कलियोंसे लदे, अशोक वृक्षपर पदाघात करनेसे बजते हुए मनोहर बिछुओंकी हजारों झंकारोंसे मुखर, खिलते हुए बौरोंकी गन्धसे इकट्ठे भ्रमर-पुंजके मंजु गुंजनसे सुन्दर सहकार तरुओंसे अलंकृत, सघन कुसुमोंके पराग-सैकत-पुलिनसे धवलित, धरातलसे उल्लसित, पुष्परस पीनेसे विह्वल भौरोंके द्वारा हिलाये जाते हुए लताझूलोंसे समन्वित, खिली हुई लवली लतामें घुसते हुए मतवाले कोकिलोंके द्वारा बिखेरी गयी मधुकी बूँदोंसे बने हुए प्रचण्ड दुर्दिनसे युक्त, परदेश गये लोगोंकी पत्नियोंके जीवके उपहारसे अति प्रसन्न कामके द्वारा टंकारित धनुषके शब्दके भयसे पथिकोंके विदीर्ण हृदयके रक्तसे गीले बनाये गये पर्योवाले, फूलोंपर निरन्तर बैठते हुए विहंगोंके पंखकी फड़फड़ाहटसे बधिर बनायी गयी दिशाओंवाले, दिनमें भी बढ़ी हुई कामासक्तिसे अन्धी बनी हुई अभिसारिकाओंके झुण्डसे व्याप्त, बढ़े हुए शृंगार-सागरके प्रवाहसे ढँके और समस्त जीवलोकको आनन्द देनेवाले मधुमासके दिनोंमें एक दिन मैं माताजीके साथ मधुमाससे बढ़ायी गयी छविवाले खिले हुए नये कमल, कुमुद, इन्दीवर और कल्हारसे समन्वित इस अच्छोदसरमें स्नान करनेके लिए आयी। धूलमें पड़े हुए पतले पदचिह्नोंके समूहसे अनुमित होनेवाले मुनियोंके प्रणामों एवं प्रदक्षिणाओंवाले, स्नानार्थ आयी हुई भगवती पार्वतीके द्वारा तीरवर्त्तिनी शिलाओंपर उकेरे गये भृंगिरिटिके साथ त्रिलोचनके चित्रोंकी वन्दना करती हुई, भौरोंसे जर्जर किये गये गर्भ-केसरवाले विशीर्ण सुमनोंके उपहारसे रमणीय इस लतामण्डपमें, कोकिलके नखोंसे विदीर्ण डण्ठलोंसे चुई हुई पुष्परसकी धारासे समन्वित एवं भली-भाँति बौरे इस सहकार वृक्षके नीचे, मतवाले भौरोंके कोलाहलसे डरे हुए सर्पोंसे परित्यक्त इस शीतल चंदनवीथीमें, गिरे हुए विकसित फूलोंसे संकेतित वनदेवताके झूलनेसे सुन्दर इस लता-झूलेमें सुमनोंके अत्यधिक परागमें कलहंसोंकी पड़ी हुई पद-पंक्तिसे अत्यन्त सुन्दर इस तटवर्ती वृक्षके नीचे इस प्रकार अन्य रमणीय एवं मनोरम प्रदेशोंको देखनेके लोभसे आकृष्ट हृदयवाली मैंने सहेलियोंके साथ भ्रमण किया।

१०—एकस्मिश्च प्रदेशे झटिति वनानिलेनोपनीतम्, निर्भरविकसितेऽपि काननेऽभिभूतान्यकुसुमपरिमलम्, विसर्पन्तम्, अतिसुरभितयात्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिम्पन्तमिव तर्पयन्तमिव पूरयन्तमिव घ्राणेन्द्रियम्, अहमहमिक मधुकरकुलैरनुबध्यमानम्, अनाघ्रातपूर्वम्, अमानुषलोकोचितं कुसु गन्धमभ्यजिघ्रम्। कुतोऽयमित्युपारूढकुतूहला चाहं मुकुलितलोचना कुसुमगन्धेन मधुकरीवाकृष्यमाणा कौतुकतरलाभ्यधिकतरोपजातमणिनू झङ्काराकृष्टसरःकलहंसानि कतिचित्पदानि गत्वा हरहुताशनेन्धनीकृतमद शोकविधुरं वसन्तमिव तपस्यन्तम्, अखिलमण्डलप्राप्त्यर्थमीशानशि शशाङ्कमिव धृतव्रतम्, अयुग्मलोचनं वशीकर्तुंकामं काममिव सनियम अतितेजस्वितया प्रचलतडिल्लतापञ्जरमध्यगतमिव ग्रीष्मदिवसदिवस मण्डलोदरप्रविष्टमिव ज्वलनज्वालाकलापमध्यस्थितमिव विभाव्यमान उन्मिषन्त्या बहुलबहुलया दीपिकालकपिङ्गलया देहप्रभया कपिलीकृतका कमकमयमिव तं प्रदेशं कुर्वाणम्, रोचनारसलुलितप्रतिसरसमानसुकुम पिङ्गलजटम्, पुण्यपताकायमानया सरस्वतीसमागमोत्कण्ठाकृतचन्द्र लेखयेव भस्मललाटिकया बालपुलिनलेखयेव गङ्गाप्रवाहमुद्भासमान अनेकशापभृकुटिभवनतोरणेन भ्रूलताद्वयेन विराजितम्, अत्यायत लोचनमयीं मालामिव ग्रथितामुद्वहन्तम्, सर्वंहरिणैरिव दत्तलोचनशो संविभागम्, आयतोत्तुङ्गघ्राणवंशम्, अप्राप्तहृदयप्रवेशेन नवयौवनराग सर्वात्मना पाटलीकृताधररुचकम्, अनुद्भिन्नश्मश्रुत्वादनासादितमधुक वलीवलयपरिक्षेपविलासमिव बालकमलमाननं दधानम्, अनङ्गका गुणेनेव कुण्डलीकृतेन तपस्तडागकमलिनीमृणालेनेव यज्ञोपवीतेनालंकृ एकेन सनालवकुलफलाकारं कमण्डलुमपरेण मकरकेतुविनाश रुदिताया रतेरिव वाष्पजलबिन्दुभिरारचितां स्फुटिकाक्षमालिकां कलयन्तम् अनेकविद्यापगासङ्गमावर्तनिभया नाभिमुद्रयोपशोभमा अन्तर्ज्ञाननिराकृतस्य मोहान्धकारस्यापयानपदवीमिवाञ्जनरजोलेखाश्या रोमराजिमुदरेण तनीयसीं बिभ्राणम्, आत्मतेजसा विजित्य सविता गृहीतेन परिवेषमण्डलेनेव मौञ्जमेखलागुणेन परिक्षिप्तजघनभागम्, अभ्र स्रोतोजलप्रक्षालितेन जरच्चकोरलोचनपुटपाटलकान्तिना मन्दारवल्कले पादिताम्बरप्रयोजनम्, अलङ्कारमिव ब्रह्मचर्यस्य, यौवनमिव ध विलासमिव सरस्वत्याः; स्वयंवरपतिमिव सर्वविद्यानाम्, सङ्केतस्थान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वश्रुतानाम्, निदाघकालमिव साषाढम्, हिमसमयकाननमिव स्फुटित-प्रियङ्गुमञ्जरीगौरम्, मधुमासमिव कुसुमधवलतिलकभूतिभूषितमुखम्, आत्मानुरूपेण सवयसापरेण देवतार्चनकुसुमान्युच्चिन्वता तापसकुमा-रेणानुगतम्, अतिमनोहरम्, स्नानार्थमागतं मुनिकुमारकमपश्यम्।

मैंने एक स्थानमें उपवनके पूरी तौरपर विकसित होनेपर भी दूसरे फूलोंकी गन्धको दबा देनेवाली, फैलती हुई, अति सुगन्धित होनेके कारण नासिकामें लेप लगाती हुई-सी, उसे तृप्त करती हुई-सी, और उसके छेदोंको भरती हुई-सी, होड़ाहोड़ी करते हुए भौरोंसे अनुरुद्ध, पहले कभी न सूँघी गयी, वन-वातके द्वारा शीघ्रतासे लायी गयी कुसुम-गन्धको सूँघा। 'यह गन्ध कहांसे आयी' इस प्रकार के कुतूहलसे युक्त, अधमुँदी आँखोंवाली, और उस कुसुमगन्धसे भ्रमरीकी भाँति आकृष्ट होती हुई मैंने कूतूहलसे उत्पन्न चंचलताके कारण शीघ्र चलनेसे मणि-निर्मित विछुओंसे उत्पन्न झंकारसे कलहंसोंको आकृष्ट करनेवाले कुछ डग भरकर, रुद्राग्निमें इंधन बने हुए कामके शोकसे दुःखी होकर तपस्या करते हुए वसंतकी नाईं, समूचे मण्डल (मुनिकुमारके पक्षमें लोक, एवं चन्द्रपक्षमें षोडश-कलासे युक्त मण्डल) की उपलब्धिके लिए, व्रत करते हुए शंकरके भालपर रहनेवाले चन्द्रकी भाँति, त्रिलोचनको वशंवद बनानेकी इच्छासे नियमसे रहने-वाले कामकी नाईं, अति तेजस्विताके कारण चंचल विद्युत्-लताके पिंजरेमें पड़े हुए जैसे, ग्रीष्म ऋतुके सूर्यमण्डलके मध्यमें मानो घुसे हुए, अग्निकी ज्वालाओंके बीचमें बैठे हुए-से प्रतीत होनेवाले, चमकते हुए अत्यधिक दीपिका-प्रकाशके समान पीली शरीर-कान्तिसे पीले बनाये गये वनसे युक्त उस प्रदेशको सुनहला-सा बनाते हुए, गोरोचनके रससे रँगे हुए हस्तसूत्र के समान सुकुमार एवं पीली जटावाले, पुण्य-ध्वज बननेवाली, सरस्वती से मिलनेकी उत्सुकतासे लगायी गयी चन्दनरेखा-सी भस्मकी ललाटिका (तिलक) लगानेके कारण पतली पुलिन-पाँतसे शोभित गंगा-प्रवाहकी भाँति उद्भासित, विविध शापोंको देनेमें तत्पर भौहोंके घरके तोरणकी भांति दोनों भ्रूलताओंसे सुशोभित, बहुत बड़ी होनेके कारण मानो आँखोंकी गुही हुई मालाको पहने हुए, मानो सारे मृगोंके द्वारा नेत्रोंकी शोभामें दिये गये हिस्से को लेनेवाले, लम्बी एवं ऊंची नासिकासे युक्त, हृदयमें प्रवेश न प्राप्त करनेवाले नयी जवानीके रागसे मानो पूरी तौरसे रँगे हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधर-बीजपूरसे सज्जित, मसें न भींगनेके कारण कंगनके समान आकारवा
भ्रमरावलीसे घिरनेके कारण, उत्पन्न शोभाको न प्राप्त करनेवाले बाल-कमल
सदृश मुखको धारण करनेवाले, कामके धनुषकी मण्डलाकार डोरीके समा
और तपस्या-तड़ागकी कमलिनीके तन्तुकी नाईं यज्ञोपवीतसे अलंकृत, ए
हाथमें डंठल सहित केसरके फलके समान आकारवाले कमण्डलुको और दूसरे
कामके विनाशसे उत्पन्न शोकसे रोनेवाली रतिके आँसुओंकी बूँदोंसे बन
गयी-सी जपमालाको लिये हुए, विविध विद्याओंकी नदियोंके संगमके भँवरों
सदृश्य नाभिसे सुशोभित, आंतरिक ज्ञानसे दूर किये गये मोहान्धकारके निकालने
रास्तेकी नाइं काजल की पाँतकी तरह काली रोओंकी पतली पाँतको उदर
धारण करनेवाले, अपने तेजसे सूर्यको जीतकर अधिकारमें लायी गयी मण्डल
गोलाईकी नाईं मूँजकी बनी हुई करधनीकी डोरसे जघन-प्रदेशको ढँकनेवा
आकाशगंगाके जलप्रवाहमें धोये गये बूढ़े चकोरकी आँखोंकी भाँति गुल
कांतिवाले, मंदार तरुके वल्कलसे बने हुए वस्त्रका प्रयोग करनेवाले, ब्रह्मचर्य
आभूषण जैसे, धर्मके यौवनकी नाईं, सरस्वतीके विलासकी नाईं, समस्त विद्या
के स्वयंवर पति जैसे, समस्त श्रुतियोंके संकेत-स्थल जैसे, (आषाढ़ मासके सा
ग्रीष्म समय की भाँति पालाश दण्ड लिये हुए, (फूली हुई प्रियङ्गु मंजर
धवलित) हेमन्तकालीन उपवनकेसमान उत्फुल्ल प्रियंगु मंजरीकी तरह गो
(फूलोंसे धवल तिलक-वृक्षोंको समृद्धिसे भूषित मुखवाले) मधुमासकी भ
कुसुम-धवल तिलक भस्मसे अलंकृत मुखवाले, अपने अनुरूप एव समान
वाले, देवपूजाके लिए फूलोंको चुनते हुए दूसरे तपस्वी-कुमारके सहित नहा
लिए आये हुए मुनिकुमारको देखा।

११—तेन च कर्णावतंसीकृतां वसन्दर्शनानन्दितायाः स्मितप्रभा
वनश्रियः, मलयमारुतागमनार्थलाजाञ्जलिमिव मधुमासस्य, यौवनलीला
कुसुमलक्ष्म्याः, सुरतपरिश्रमस्वेदजलकणजालकावलीमिव रतेः, ध्वजवि
चामरपिच्छिकामिव मनोभवगजस्य, मधुकरकामुकाभिसारिकाम्, कृत्ति
तारास्तबकानुकारिणीम्, अमृतबिन्दुनिस्यन्दिनीम्, अदृष्टपूर्वां कु
मञ्जरीमद्राक्षम्। 'अस्याः परिभूतान्यकुसुमामोदो नन्वय परिमलः'
मनसा निश्चित्य तं तपोधनयुवानमीक्षमाणा ... 'अहो रूपा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शयनिष्पादनोपकरणकोषस्याक्षोणता विधातुः, यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसंभारं भगवन्तं कुसुमायुधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपराशिरयमपरो मुनिमायामयो मकरकेतुरुत्पादितः। मन्ये च सकलजन्नयनानन्दकरं शशिबिम्बं विरचयता लक्ष्मीलीलावासभवनानि कमलानि सृजता प्रजापतिना प्रथममेतदाननाकारकरणकौशलाभ्यास एव कृतः। अन्यथा किमिव हि सदृशवस्तुविरचनायां कारणम्। अलीकं चेदं यथा किल सकलाः कलाः कलावतो बहुलपक्षे क्षीयमाणस्य सुषुम्नानाम्ना रश्मिना रविरापिबतीति। ताः खल्वस्य गभस्तयः समस्ता वपुरिदमाविशन्तीति। कुतोऽन्यथा रूपापहारिणि क्लेशबहुले तपसि वर्तमानस्येदं लावण्यम्'। इति विचिन्तयन्तीमेव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभः कुसुमायुधः कुसुमसमयमद इव मधुकरीं परवशामकरोत्।

उसके द्वारा कर्णभूषण बनायी गयी, वसंत-दर्शनसे प्रसन्न वनलक्ष्मीकी मुस्कानकी दीप्ति-सी, मलय पवनके अभिनन्दनके लिए मधुमास द्वारा दी गयी धानकी खीलोंकी अंजुली-सी, सुमनश्रीकी जवानीकी लीला-सी, सुरतकालके परिश्रमसे उत्पन्न रतिके पसीनेकी बूँदोंकी पाँत-सी, मनोजात कामगजकी पताकामें लांछन रूपमें स्थित चँवरकी चूड़ा-सी कामी भौंरेकी अभिसारिका-सी, कृत्तिका नामक तारक-समूहका अनुकरण करनेवाली, अमृत बूँदोंको बहानेवाली अदृष्टपूर्व सुमन-मंजरीको मैंने देखा। 'दूसरे सुमन-गंधोंको पराजित कर देनेवाली गंध इसीकी है', इस प्रकार मनमें निश्चय कर उस तपस्वी युवाको देखती हुई मैंने सोचा—'ब्रह्माके असाधारण सौन्दर्य-निर्माणके साधन-भांडारमें कभी-कभी नहीं होती, क्योंकि त्रिभुवनमें उत्कृष्ट सौन्दर्य-सामग्रीवाले भगवान् कामदेवको उत्पन्न कर उनसे अधिक रूपराशि समन्वित मायामय मुनिके रूपमें यह दूसरा कामदेव उत्पन्न किया गया। सोचती हूँ कि निखिल संसारके नयनोंको आनन्द देनेवाले चन्द्रमण्डल और लक्ष्मीके क्रीड़ानिवास कमलोंकी रचना करते हुए प्रजापतिने इसके मुखका निर्माण करनेके लिए कौशल पानेको प्राथमिक अभ्यास ही किया है। अन्यथा समान वस्तुकी रचनामें और कौन-सा हेतु हो सकता है? यह मिथ्या है कि सूर्य सुषुम्ना नामक रश्मिसे कृष्णपक्षमें क्षीण होते हुए चन्द्रकी समस्त कलाओंको पी लेता है, क्योंकि वे समस्त किरणें इसके इस शरीरमें घुसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुई हैं। अन्यथा क्लेशसे भरी हुई और सौंदर्यका हरण करनेवाली तपस्यामें स्थित इसकी लुनाई कहाँ से आती ?' इस प्रकार विचार करते हुए गुण-दोषकी विशिष्टताका विचार न करनेवाले, सौंदर्यमात्रके पक्षपाती, और नयी जवानीमें सुलभ कामदेवने पुष्परसकी मादकताकी भाँति मधुकरीकी नाईं मुझे परवश बना दिया।

१२—उच्छ्वसितैः सह विस्मृतनिमेषेण किञ्चिदामुकुलितपक्ष्मणा जिह्मिततरलतरतारसारोदरेण दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहमापिबन्तीव, किमपि याचमानेव, 'त्वदायत्तास्मि' इति वदन्तीव, अभिमुखं हृदयमर्पयन्तीव, सर्वात्मनानुप्रविशन्तीव, तन्मयतामिव गन्तुमीहमाना, 'मनोभवाभिभूतां त्रायस्व' इति शरणमिवोपयान्ती, 'देहि हृदयेऽवकाशम्' इत्यर्थितामिव दर्शयन्ती, 'हा हा किमिदमसांप्रतमतिह्रेपणमकुलकुमारीजनोचितमिदं मया प्रस्तुतम्' इति जानानाप्यप्रभवन्ती करणानाम्, स्तम्भितेव लिखितेव उत्कीर्णेव संयतेव मूर्छितेव केनापि विधृतेव निष्पन्दसकलावयवा तत्कालनिर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेनानाख्येयेन स्वसंवेद्येन केवलं न विभाव्यते किं तद्रूपसंपदा किं मनसा किं मनसिजेन किमभिनवयौवनेन किमनुरागेणेवोपदिश्यमाना किमन्येनैव केनापि प्रकारेणाहमपि न जानामि कथंकथमिति तमतिचिरं व्यलोकयम्। उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः पुरस्तादाकृष्यमाणेव हृदयेनपृष्ठतः प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमप्यात्मानमधारयम्। अनन्तरं च मेऽन्तर्मदनावकाशमिव दातुमाहितसन्ताना निरीयुः श्वासमरुतः। साभिलाषं हृदयमाख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत्कुचयुगलम्। स्वेदसलिललवलेखाक्षालितेवागलल्लज्जा। मकरध्वजनिशितशरनिकरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टिः। तद्रूपातिशयं द्रष्टुमिव कुतूहलादालिङ्गनलालसेभ्योऽङ्गेभ्यो निरगाद्रोमाञ्चजालकम्। अशेषतः स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्रागः।

उच्छ्वासोंके साथ ही अपलक होनेवाले, कुछ झुकी हुई बरौनियोंवाले तथा कुछ चंचल और विचित्र दाहिनी आँखसे सस्पृह भावसे पीती हुई-सी, कुछ माँगती हुई-सी, 'तुम्हारे अधीन हूँ' यह कहती हुई-सी, सामने होकर, आत्मसमर्पण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करती हुई-सी, पूरी तौरसे प्रवेश करती हुई-सी, तन्मयताको प्राप्त करनेकी अभिलाषा करती हुई-सी, 'मुझ काम-पराजितकी रक्षा कीजिए' इस भावसे शरणागत होती हुई-सी, 'मुझे हृदयमें स्थान दीजिए' इस प्रकार अपनेको भिखारिणी जैसी दिखलाती हुई-सी, 'हाय! अनुचित एवं अत्यन्त लज्जाकर कुलविहीन कुमारियोंके योग्य मैं यह करनेको प्रस्तुत हूँ' यह जानती हुई भी इन्द्रियोंको वशमें रखनेमें असमर्थ होती हुई, स्तम्भित-सी, उरेहो-सी, उकेरी-सी, बँधी-सी, मूर्छित-सी, किसीके द्वारा पकड़ी गयी-सी, बिना उपदेशके सिखाये गये, अकथ्य और स्वयंवेद्य उस समय उत्पन्न हुए मोहसे निश्चल बने हुए समस्त अंगोवाली मैं, पता नहीं, उसकी सौन्दर्य-सम्पत्तिसे, या मनसे, अथवा कामदेवसे, या नयी जवानीसे, अथवा अनुरागकी सीखसे, अथवा किसी दूसरी रीतिसे, मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कैसे-कैसे उसे बहुत देरतक देखती रही। इन्द्रियोंके द्वारा उठाकर उसके पास पहुँचायी जाती हुई-सी, हृदयके द्वारा आगेकी ओर खींची जाती हुई-सी, कामदेवके द्वारा पीछेसे प्रेरित की जाती हुई-सी मैंने उसके समीप जानेके प्रयत्नसे अपनेको मुक्त कर पकड़ रखा। तदनन्तर कामके द्वारा विस्तारित उच्छ्वास-पवन मानो मेरे हृदयमें उसे स्थान देनेके लिए निकल पड़े। मानो हृदयकी अभिलाषाको बतानेके लिए स्तनोंके अग्रभाग फड़कने लगे। पसीनेकी बूँदोंकी पाँत धोयी गयी-सी लज्जा गल गयी। कामकी तीखी बाण-राशिके गिरनेसे डरी हुई-सी देह-यष्टि काँप उठी। मानो उसके अतिशायी सौंदर्यको देखनेके लिए कौतूहलपूर्वक आलिंगनकी लालसा रखनेवाले अंग रोमांच-युक्त हो गये। पसीनेकी बूँदोंसे धुला हुआ राग दोनों चरणोंसे निकलकर मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गया।

१३—आसीच्च मम मनसि—'शान्तात्मनि दूरीकृतसुरतव्यतिकरेऽस्मिञ्जने मां निक्षिपता किमिदमनार्येणासदृशमारब्धं मनसिजेन। एवं च नामातिमूढं हृदयमङ्गनाजनस्य, यदनुरागविषयोग्यतामपि विचारयितुं नालम्। क्वेदमतिभास्वरं धाम तेजसां तपसां च; क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरिस्पन्दितानि। नियतमयं मामेवं मकरलाञ्छनेन विडम्ब्यमानामुपहसति मनसा। चित्रं चेदं यदहमेवमवगच्छन्त्यपि न शक्नोम्यात्मनो विकारमुपसंहर्तुम्। अन्या अपि कन्यकास्त्रपामपहाय स्वय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुपयाताः पतीन्। अन्या अप्यनेन दुर्विनीतेन मन्मथेनोन्मत्ततां नीता नार्यः। न पुनरहमेका यथा। कथमनेन क्षणेनाकारमात्रालोकनाकुलीभूतमेवमस्वतन्त्रतामुपैत्यन्तःकरणम्। कालो हि गुणाश्च दुर्निवारतामारापयन्ति मदनस्य सर्वथा। यावदेव सचेतनास्मि, यावदेव च न परिस्फुटमनेन विभाव्यते मे मदनदुश्चेष्टितलाघवमेतत्, तावदेवास्मात्प्रदेशादपसर्पणं श्रेयः। कदाचिदनभिमतस्मरविकारदर्शनकुपितोऽयं शापाभिज्ञांकरोति माम्। अदूरकोपा हि मुनिजनप्रकृतिः।' इत्यवधार्यापसर्पणाभिलाषिण्यहमभवम्। अशेषजनपूजनीया चेयं जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृष्टदृष्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृष्टभूतलम्, ईषदुल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालकलतालसत्कुसुमावतंसम्, असंदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।

मेरे मनमें आया—'सुरत-व्यापारसे दूर रहनेवाले, शान्त-आत्मावाले इस मनुष्यके प्रेममें डालनेवाले अनार्य कामने किस अनौचित्यका आरम्भ कर दिया? वनिताओंका हृदय यों भी अत्यन्त मूढ़ होता है, जो प्रेम-विषयक सामर्थ्यका विचार करने में भी क्षम नहीं हो पाता। कहाँ तेज और तपका प्रोद्भासित स्थान और कहाँ साधारण मनुष्योंसे अभिनन्दित काम-व्यापार! निश्चय ही यह अपने मनमें, इस प्रकार मुझे कामसे प्रतारित होती हुई देखकर हँस रहा है। आश्चर्य है। इस प्रकार जानती हुई भी मैं अपनी विकृतिको रोक नहीं पा रही हूँ। केवल अकेली मैं ही नहीं, अन्य नारियाँ भी लज्जाका परित्याग कर पतियोंके पास गयी हैं और दुर्विनीत कामने दूसरी ललनाओंको भी मतवाली वनाया है। कैसे इसी समयसे, केवल आकारके दर्शनसे व्याकुल बना हुआ यह अन्तःकरण परवश वनता जा रहा है? समय कामके गुणोंमें सर्वथा दुर्दमनीयता का आरोप कर देता है। जबतक मैं अपनी चेतमें हूँ, और जबतक कामके द्वारा उत्पन्न मेरी हीनताको यह नहीं समझ लेता, तबतक इस प्रदेशसे हट जाना श्रेयस्कर है। अनीप्सित कामविकारको देखकर कहीं यह क्रुद्ध होकर मुझे शाप न दे दे; क्योंकि 'मुनियोंकी भौंहपर ही क्रोध रहता है।' इस प्रकार विचार कर मैंने दूर चले जानेकी अभिलाषा की। यह जाति सारे मनुष्योंके द्वारा पूजनीय है, यह सोचकर उसके मुखपरसे दृष्टि बिना हटाये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरौनियोंको निश्चल किये हुए, पृथ्वीको न देखते हुए, कुछ हिलती हुई कर्ण-कोंपलोंसे कपोलोंको मुक्त किये हुए, चंचल केशपाशको फूलोंके गहनोंसे सजाये हुए, कंधेपर मणिसे बने कुण्डलोंको हिलाते हुए मैंने इसे प्रणाम किया।

१४—अथ कृतप्रणामायां मयि दुर्लंघ्यशासनतया भगवतो मनोभुवः, मदजननतया च मधुमासस्य, अतिरमणीयता च तस्य प्रदेशस्य, अविनय-बहुलतया चाभिनवयौवनस्य, चञ्चलप्रकृतितया चेन्द्रियाणाम्, दुर्निवारतया च विषयाभिलाषाणाम्, चपलतया च मनोवृत्तेः, तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुनः, किं बहुना, मम मन्दभाग्यदौरात्म्यादस्य चेदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्तमपि मद्विकारदर्शनापहृतधैर्यं प्रदीपमिव पवनस्तर-लतामनयदनङ्गः। तदा तस्याप्यभिनवागतं मदनं प्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदि-शद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता व्रतभङ्गभीतेवाकम्पत करतल-गताक्षमाला। द्वितीयेव कर्णविसक्तकुसुममञ्जरी कपोलतलासङ्गिनी सम-दृश्यत स्वेदसलिलसीकरजालिका। मद्दर्शनप्रीतिविस्तारितस्य चोत्तानतार-कस्य पुण्डरीकमयमिव तमुद्देशमुपदर्शयता लोचनयुगलस्य विसर्पिभिरंशु-सन्तानैर्यदृच्छयाच्छोदसलिलमपहाय विकचकुवलयवनैरिव गगनतल-समुत्पतितैररुध्यन्त दश दिशः। तया तु तस्यातिप्रकटया विकृत्या द्विगुणी-कृतमदनावेशा तत्क्षणमहमवर्णनयोग्यां कामप्यवस्थामन्दभवम्। इदं च मनस्यकरवम्—'अनेकसुरतसमागमलास्यलीलोपदेशोपाध्यायो मकरकेतुरेव विलासानुपदिशति, अन्यथा विविधरसासङ्गललितेष्वीदृशेषु व्यतिकरेष्व-प्रविष्टबुद्धेरस्य जनस्य कुत इयमनभ्यस्ताकृती रतिरसनिस्यन्दमिव क्षरन्त्य-मृतमिव वर्षन्ती मदमुकुलितेव खेदालसेव निद्राजडेवानन्दभरमन्थर-तरत्तारसञ्चारिण्यनिभृतभ्रूलतोल्लासिनी दृष्टिः। कुतश्चेदमतिनैपुण्यं यच्चक्षु-षैवानक्षरमेवमन्तर्गतो हृदयाभिलाषः कथ्यते'।

तदनन्तर मेरे प्रणाम कर लेनेपर भगवान् कामके अनुल्लंघनीय शासनके कारण, मतवाला बना देनेवाले मधुमासके कारण, उस स्थानके परम सौंदर्यसे, नयी जवानीमें अविनयकी अधिकतासे, इन्द्रियोंके चंचल स्वभावसे, दुर्दमनीय अभिलाषाओंसे, मनोव्यापारोंकी चंचलतासे, उन-उन भावी वस्तुओंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवितव्यतासे; अधिक क्या कहूँ, मेरे मन्दभाग्यकी बुराईसे और इस प्रकारके क्लेश-विधान होनेसे, मेरे विकारके द्रष्टा उस मुनिकुमारको कामने उसी प्रकार चंचल कर दिया जैसे पवन प्रदीपको चपल बनाता है। उस समय अभिनव कामकी अगवानी करता हुआ-सा रोमांच उसमें उत्पन्न हो गया। मेरी ओर आते हुए मनको मानो मार्ग बताती हुई साँसें आगे-आगे चल पड़ीं। काँपनेवाले हाथमें पड़ी हुई जपमाला व्रत टूटनेके भयसे भीत-सी काँप उठी। कपोलपर छलकी पसीनेकी बूँदोंकी पाँत कानमें लटकी हुई दूसरी सुमनमंजरी-सी दिखलायी पड़ी। मुझे देखनेसे फैले हुए, गदरायी पुतलियोंवाले, उस प्रदेशको कमलसे भरता हुआ-सा दिखलाते हुए और अच्छोद सरके जलको स्वेच्छासे छोड़कर आकाशमें उछले हुए विकसित इन्दीवरके वनोंकी नाई दोनों आँखोंकी रश्मियोंसे दसों दिशाएँ ढँक गयीं। उसके अति स्पष्ट उस विकारसे दुगुनी कामभावनासे भरी हुई मैंने उस समय अकथ्य दशाका अनुभव किया। मेरे मनमें यह आया—'संभोगसम्मिलनकी विविध लास्य-लीलाओंकी शिक्षाका आचार्य कामदेव ही विलासोंका उपदेश करता है; नहीं तो विविध रसोंके संसर्गसे सुन्दर इस प्रकारके प्रसंगोंमें जिसकी बुद्धि प्रवृष्ट नहीं हुई है, उस मनुष्यकी अनभ्यस्त दृष्टि रतिरस-प्रवाहको बहाती हुई-सी, अमृतकी वर्षा करती हुई-सी, मदसे मुँदी हुई-सी, परिश्रमसे अलसित-सी, निद्रासे जड़-सी, पूर्ण आनन्दसे मन्द-मन्द फैलती एवं घूमती हुई पुतलियोंवाली, स्पष्टतया भौंह-लताओंको नचा देनेवाली कैसे बन गयी? कहाँ से यह बड़ी चतुरता आ गयी, जो आन्तरिक हार्दिक अभिलाषाको आँखोंसे निःशब्द व्यक्त कर रही है?'

१५—प्राप्तप्रसरा चोपसृत्य तं द्वितीयमस्य सहचरं मुनिबालकं प्रणामपूर्वकमपृच्छम्—'भगवन्किमभिधानः कस्य चायं तपोधनयुवा? किंनाम्नस्तरोरियमनेनावतंसीकृता कुसुममञ्जरी? जनयति हि मे मनसि महत्कौतुकमस्याः समुत्सर्पन्नसाधारणसौरभोऽयमनाघ्रातपूर्वो गन्धः' इति। स तु मामीषद्विहस्याब्रवीत्—"बाले किमनेन पृष्टेन प्रयोजनम्? अथ कौतुकमावेदयामि। श्रूयताम्।

अवसर प्राप्त कर मैंने उसके सहचर दूसरे मुनिकुमारसे प्रणामपूर्वक इस प्रकार पूछा—'भगवन्! इसका नाम क्या है? यह किस तपस्वीका नवयुवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र है ? किस वृक्षकी सुमन-मंजरीको इसने कानका गहना बना रखा है ? असामान्य सुगन्धसे समन्वित, पहले न सूँघी गयी इसकी फैलती हुई गन्ध मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न कर रही है।' थोड़ा हँसकर उसने मुझसे कहा—"बालिके ! इस प्रकार पूछनेसे क्या प्रयोजन ?" तथापि यदि कौतूहल उत्पन्न हो गया है, तो सुनो।

१६—अस्ति खलु सकल त्रिभुवनप्रख्यातकीर्तिरत्युदारतया सुरासुरसिद्धवृन्दवन्दितचरणयुगलो महामुनिर्दिव्यलोकनिवासी श्वेतकेतुर्नाम। तस्य भगवतः सुरासुरलोकसुन्दरीहृदयानन्दकरम्, अशेषत्रिभुवनसुन्दरम्, अतिशयितनलकूबरं रूपमासीत्। स कदाचिद्देवतार्चनकमलान्युद्धर्तुमैरावतमदजलबिन्दुबद्धचन्द्रकशतखचितजलां हरहसितसितस्रोतसं मन्दाकिनीमवततार। अवतरन्तं च तदा कमलवनेषु संततसंनिहिता विकचसहस्रपत्रपुण्डरीकोपविष्टा देवी लक्ष्मीर्ददर्श। तस्यास्तु तमवलोकयन्त्याः प्रेममदमुकुलितेनान्दबाष्पभरतरङ्गतरलतारेण लोचनयुगलेन रूपमास्वादयन्त्या जृम्भिकारम्भमन्थरमुखविन्यस्तहस्तपल्लवाया मन्मथविकृतं मन असीत्। आलोकनमात्रेण च समासादितसुरतसमागमसुखायास्तस्मिन्नेवासनीकृते पुण्डरीके कृतार्थतासीत्। तस्माच्च कुमारः समुदपादि। ततस्तमुत्सङ्गेनादाय सा 'भगवन्गृहाण तवायमात्मजः' इत्युक्त्वा तस्मै श्वेतकेतवे ददौ। असावपि बालजनोचिताः सर्वा क्रियाः कृत्वा तस्य पुण्डरीकसंभवतया तदेव पुण्डरीक इति नाम चक्रे। प्रतिपादितव्रतं च तमागृहीतसकलविद्याकलापमकार्षीत्। सोऽयम्।

सम्पूर्ण त्रिलोकमें विख्यात यशवाले, अत्यन्त उदार होनेसे सुर, असुर और सिद्धजनोंसे पूजित चरणवाले, और दिव्य लोकमें निवास करनेवाले उत्कृष्ट तपस्वी श्वेतकेतु नामक महामुनि हैं। उन भगवान्‌का सौंदर्य देवलोककी ललनाओंको आनन्द देनेवाला, अखिल त्रिलोकसे सुन्दर और नलकूबरके रूपसे बढ़कर था। किसी समय वे देवार्चनके लिए कमल लेने ऐरावतके मदजलकी बूँदोंसे बनाये गये सैकड़ों चन्द्रकोंसे युक्त जलवाली एवं शम्भुके हासके समान प्रवाहवाली मंदाकिनी नदीपर गये। उस समय कमल-वनमें सदैव रहनेवाली एवं हजारों पंखुड़ियोंवाले खिले हुए पुण्डरीकपर बैठी हुई लक्ष्मी देवीने उन्हें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखा । उन्हें देखते ही प्रेम-मद-छके एवं आनन्दाश्रुसे चंचल पुतलियोंवाले नयनोंसे सौन्दर्यका आस्वादन करनेके कारण आयी हुई जँभाईसे माँदे मुखपर कर-कोपलोंको रखनेवाली उस लक्ष्मीका मन काम-भावनासे भर गया । दर्शन-मात्रसे संभोग-समागमके सुखको पा जानेवाली वह आसन रूपमें प्रयुक्त उसी पुण्डरीकपर पूर्णकाम बन गयी । उससे कुमारकी उत्पत्ति हुई । तदनन्तर उसे गोदमें लेकर 'भगवन् ! लीजिए यह आपका पुत्र है', ऐसा कहकर उन श्वेत-केतुको दे दिया । इन्होंने भी बालकोंके योग्य सभी कर्मोंको कर, पुण्डरीकसे उत्पत्ति होनेके कारण वहीं पुण्डरीक नाम रख दिया । तदनन्तर उसे उपनयन और समस्त विद्याओंके समूह से युक्त बना दिया । यह वही है ।

१७—इयं च सुरासुरैर्मथ्यमानात्क्षीरसागरादुद्गतः पारिजातनामा-पादपस्तस्य मञ्जरी । यथा चैषां व्रतविरुद्धमस्य श्रवणसंसर्गमासादितवती तदपि कथयामि । अद्य चतुर्दशीति भगवन्तमम्बिकापतिं कैलासगत-मुपासितुममरलोकान्मया सह नन्दनवनसमीपेनायमनुसरन्निर्गत्य-साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालिकामेखलया-कुसुमपल्लवग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभिः कण्ठमालिकाभिर्निरन्तराच्छादित-विग्रहया नवचूताङ्कुरकर्णपूरया पुष्पासवपानमत्तया नन्दनवनदेवतया पारिजातकुसुमञ्जरीमिमामादाय प्रणम्याभिहितः—'भगवन्सकलत्रिभुवन-दर्शनाभिरामायास्तवाकृतेरस्याः सदृशोऽयमलङ्कारः प्रसादीक्रियताम् । इयमवतंसविलासदुर्ललिता समारोप्यतां श्रवणशिखरम् । व्रजतु सफलतां-जन्म पारिजातस्त" । इत्येवमभिदधानां चायमात्मरूपस्तुतिवादत्रपावन-मितविलोचनस्तामनागृत्यैव गन्तुं प्रवृत्तः । मया तु तामनुयान्तीमालोक्य 'को दोषः सखे क्रियतामस्याः प्रणयपरिग्रहः' इत्यभिधाय बलादिय-मनिच्छतोऽप्यस्य कर्णपूरीकृता । तदेतत्कात्स्न्येन योऽयं या चेयं यथा चास्य श्रवणशिखरं समारूढा तत्सर्वमावेदितम् ।

यह मंजरी सुरों और असुरों द्वारा मथे गये समुद्रसे निकले पारिजात नामक वृक्षकी है । जिस प्रकार इस मंजरीने व्रतके विरुद्ध इसके कानोंके संसर्गको प्राप्त किया, वह भी बताता हूँ । आज चतुर्दशी है, इसलिए कैलासपर स्थित भगवान् अंबिकापति (शिव) की उपासना करनेके लिए देवलोकसे मेरे साथ नंदनवनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समीप आते हुए इससे, वसंत मासकी लक्ष्मीके ललित करोंका सहारा लेनेवाली, केसरमालाकी करधन पहननेवाली, फूलों और कोंपलोंसे गूँथी गयी घुटनों तक लटकनेवाली कंठमालाओं से शरीरको बराबर ढँकनेवाली, आमके नये बौरका कर्णभूषण पहननेवाली और पुष्परसको पी मतवाली बनी हुई वनदेवीने निकलकर हाथमें पारिजातकी इस सुमन-मंजरीको लिये हुए प्रणामकर कहा—'भगवन्! निखिल त्रिभुवनके देखने में सुन्दर अपनी इस आकृतिके अनुरूप इसे अलंकरण बनाइए। आभूषण-शोभाके लिए दुर्लभ इस मंजरीको कर्णशिखरके ऊपर आरोपित कीजिए। पारिजातका जन्म सफलताकी ओर गमन करे। अपनी स्तुतिसे लज्जा नेत्रोंको नीचे कर यह, इस प्रकार कहनेवाली वनदेवीका अनादर करता हुआ ही चल पड़ा। उसे अनुसरण करती हुई देखकर मैंने कहा—'मित्र! क्या दोष है? इसके प्रेमोपहारको स्वीकार करो'; इस प्रकार कहकर इसके न चाहनेपर भी मैंने बलपूर्वक इस मंजरीको इसके कानका आभूषण बना दिया। यह जो है, यह मंजरी जैसी है और जैसे यह इसके कानका आभरण बनी, यह सब मैंने पूर्णतया निवेदन कर दिया।

१८—इत्युक्तवति तस्मिन्स तपोधनयुवा किञ्चिदुपदर्शितस्मितो मामवादीत्—'अयि कुतूहलिनि, किमनेन प्रश्नायासेन। यदि रुचितसुरभिपरिमला गृह्यतामियम्'। इत्युक्त्वा समुपसृत्यात्मीयाच्छ्रवणादपनीय कलैरलिकुलक्वणितैः प्रारब्धरतिसमागमप्रार्थनामिव मदीये श्रवणपुटे तामकरोत्। मम तु तत्करतलस्पर्शलोभेन तत्क्षणमपरमिव पारिजातकुसुममवतंसस्थाने पुलकमासीत्। स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन-तरलीकृताङ्गुलिजालकात्करतलादक्षमालां लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत्। अथाहं तामसमाप्राप्तामेव भूतलमक्षमालां गृहीत्वा सलीलं तद्भुजपाशसंदानितकण्ठग्रहसुखमिवानुभवन्ती दर्शितापूर्वहारलतालीलां कण्ठाभरणतामनयम्।

इस प्रकार उसके कहनेपर उस तपस्वी युवकने कुछ मुस्कुराते हुए मुझसे कहा—'कौतूहलसे भरी बालिके! इस प्रश्न-परिश्रमका क्या प्रयोजन है? यदि इसकी सुगंधि तुम्हें रुच गयी है तो इसे ले लो।' यह कह, समीप आकर और अपने कानसे निकालकर भ्रमर-समूहके गुंजनके द्वारा रति-सम्मिलनकी प्रार्थना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करती हुई-सी उस मंजरीको मेरे कानमें पहना दिया। उसकी हथेलीके स्पर्श लोभसे मेरे कर्णभूषणके स्थानपर पारिजातके दूसरे पुलकी नाईं पुलकन उत्पन्न हो गयी। मेरे गलोंके स्पर्श-सुखसे वह लज्जाके साथ स्वेद-विंदु युक्त अँगुलियों वाले हाथसे गिरी जपमालको भी न जान सका। तदनन्तर उसकी भुजाओं लगायी गयी गलबाँहीके सुखके सदृश आनन्दका अनुभव करती हुई मैंने भूतल पर पहुँचनेसे पहले ही ग्रहण कर हारके असाधारण सौंदर्यका प्रदर्शन करनेवाले उस जपमालाको गलेका गहना बना लिया।

१९—इत्थंभूते च व्यतिकरे छत्रग्राहिणी मामवोचत्—'भर्तृदारिके स्नाता देवी। प्रत्यासीदति गृहगमनकालः। तत्क्रियातां मज्जनविधि':, इति अहं तु तेन तस्या वचनेन नवग्रहा करिणीव प्रथमाङ्कुशपातेनानिच्छया कथंकथमपि समाकृष्यमाणा तन्मुखाल्लावण्यामृतपङ्कमग्नामिव कपोल पुलककण्टकजालकलग्नामिव मदनशरशलाकाकीलितामिव सौभाग्य गुणस्यूतामिवातिकृच्छ्रेण दृष्टिमाकृष्य स्नातुमुदचलम्। उच्चलिताया च मयि द्वितीयो निदारकस्तथाविधं तस्य धैर्यस्खलितमालोक्य किंचित्प्रकटितप्रणयकोप इवावादीत्।

इस प्रकारकी वात हो जानेपर छत्रधारिणीने मुझसे कहा—'राजकुमारी! देवी स्नानकर चुकीं। घर जानेका समय वीत रहा है। अतः स्नान-क्रिया कीजिए।' अंकुशके प्रथम प्रहारके समान उसके उस कथनसे, तुरन्त पकड़ी गयी हस्तिनीके सदृश इच्छा न होते हुए भी खींची जाती हुई मैं किसी प्रकार उसके मुखसे सौन्दर्य-सुधाके कीचड़में फँसी हुई-सी, कपोलोंके पुलकन-काँटोंके समूह उलझी हुई-सी, काम-वाणकी सलाइयों-सो कीलित की गयी-सी और सौभाग्यके गुणों (डोरी,से मिली हुई-सी नजरको हटाकर नहानेके लिए चल पड़ी। मेरे चल देनेपर, उसे इस प्रकार धैर्यसे विचलित देख दूसरा मुनिकुमार प्रेममिश्रित क्रोधसे कुछ प्रकट करता हुआ-सा वोला।

२०—सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चित्प्राकृत इव विक्लवीभन्तमात्मानं न रुणत्सि। कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लवो येनास्येवं कृतः। क्व ते तद्धैर्यम्। क्वासाविन्द्रियजयः। क्व तद्वशित्वं चेतसः। क्व सा प्रशान्तिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्व तत्कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम् । क्व सा सर्वविषयनिरुत्सुकता । क्व ते गुरूपदेशाः । क्व तानि श्रुतानि । क्व ता वैराग्यबुद्धयः । क्व तदुपभोग-विद्वेषित्वम् । क्व सा सुखपराङ्मुखता । क्वासौ तपस्यभिनिवेशः । क्व सा भोगानामुपर्यरुचिः । क्व तद्यौवनानुशासनम् । सर्वथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासः, निरर्थकः संस्कारः, निरुपकारको गुरूपदेश-विवेकः, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, निष्कारणं ज्ञानम्, यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषीक्रियन्ते प्रमादैश्चाभिभूयन्ते । कथं करतलाद्गलितामपहृतामक्षमालामपि न लक्षयसि । अहो विगतचेतनत्वम् । अपहृता नामेयम् । इदमपि तावदपह्रियमाणमनया नार्यया निवार्यतां हृदयम् ।

मित्र पुण्डरीक ! यह आपके अनुरूप नहीं है । आचरणका यह मार्ग तुच्छ जनोंका है । सज्जन धीरजके धनी होते हैं । ऐरे-गैरे साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल होती हुई अपनी आत्माको क्यों रोक नहीं रहे हो ? आज कहाँ से तुममें इन्द्रियोंका यह प्राथमिक उपद्रव उपस्थित हो गया, जिसके द्वारा ऐसे बना दिये गये ? तुम्हारी वह धीरता कहाँ गयी ? वह इन्द्रिय-जय कहाँ गया ? चित्त-को वशमें रखनेकी वह शक्ति कहाँ गयी ? उस प्रशान्तिका क्या हुआ ? वंश-परम्परासे आया हुआ वह ब्रह्मचर्य कहाँ गया ? समस्त विषयोंके प्रति रहनेवाली निरुत्सुकता कहाँ गयी ? गुरुके उपदेश कहाँ चले गये ? वह वैराग्य-बुद्धि कहाँ गयी ? उपभोगोंके प्रति रहनेवाला तुम्हारा विद्वेष क्या हुआ ? सुखसे पराङ्मुख रहनेकी तुम्हारी भावना कहाँ गयी ? तपस्यामें रहनेवाले तुम्हारे आग्रहको क्या हुआ ? भोगोंके ऊपर रहनेवाली अरुचि कहाँ गयी ? यौवनपर रहनेवाले तुम्हारे अनुशासनका क्या हुआ ? बुद्धि सर्वथा निष्फल हो गयी । धर्मशास्त्रोंका अभ्यास गुणहीन सिद्ध हुआ । संस्कार व्यर्थ हो गये । गुरुके उपदेशोंसे प्राप्त विवेक निरुपकारक हो गया । जागरूकता निष्प्रयोजन हो गयी । ज्ञान निमित्त-रहित हो गया; क्योंकि इस प्रसंगमें तुम्हारे समान भी मनुष्य विषयासक्तिसे मलिन और प्रमादोंसे पराजित हो जाते हैं । हाथसे गिरी और ले ली गयी जपमालाको भी कैसे नहीं जान पा रहे हो ? वाहरी निश्चेतनता ! जपमाला तो अपहृत हो गयी, अब इस दुष्टाके द्वारा हरे जाते हुए अपने हृदयको तो रोको ।

२१—इत्येवमभिधीयमानश्च तेन किंचिदुपजातलज्ज इव प्रत्यवादीत्—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सखे कपिञ्जल किं मामन्यथा संभावयसि । नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यका मर्षयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम्' । इत्यभिधायालीककोपकान्तेन प्रयत्न विरचितभीषणभ्रुकुटिभूषणेन चुम्बनाभिलाषस्फुरिताधरेण मुखेन्दु मामवदत्—'चञ्चले, प्रदेशादस्मादिमामक्षमालामदत्त्वा पदात्पदमपि गन्तव्यम्' इति । तच्च श्रुत्वाहमात्मकण्ठादुन्मुच्य मकरध्वजलास्यारम्भ लापुष्पाञ्जलिमेकावलीं 'भगवन्गृह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखासक्तदृष्टेः शू हृदयस्यास्य प्रसारिते पाणौ निधाय स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुम तरम् । उत्थाय च कथमपि प्रयत्नेन निम्नगेव प्रतीपं नीयमाना सखीज बलादम्बया सह तमेव चिन्तयन्ती स्वभवनमयासिषम् । गत्वा च प्रवि कन्यान्तःपुरं ततः प्रभृति तद्विरहविधुरा किमागतास्मि, किं त स्थितास्मि, किमेकाकिन्यस्मि, किं परिवृत्तास्मि, किं तूष्णीमस्मि, प्रस्तुतालापास्मि, किं जागर्मि, किं सुप्तास्मि, किं रोदिमि, किं न रोदि किं दुःखमिदम्, किं सुखमिदम्, किमुत्कण्ठेयम्, किं व्याधिरयम्, व्यसनमिदम्, किमुत्सवोऽयम्, किं दिवस एषः, किं निशेयम्, का रम्याणि, कान्यरम्याणीति सर्वं नावागच्छम् । अविज्ञातमदनवृत्तान्ता च गच्छामि किं करोमि किं शृणोमि किं पश्यामि किमालपामि कस्य कथया कोऽस्य प्रतीकार इति सर्वं च नाज्ञासिषम् । केवलमारुह्य कुमारीपुरप्रास विसर्ज्य च सखीजनं द्वारि निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा, सर्वव्यापारानु ज्यैकाकिनी मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी, तामेव दिशं तत्सनाथ प्रसाधितामिव कुसुमितामिव महारत्ननिधानाधिष्ठितामिवामृतरससागर प्लावितामिव पूर्णचन्द्रोदयालंकृतामिव दर्शनसुभगामीक्षमाणा, तस्माद्दिग रादागच्छन्तमनिलमपि वनकुसुमपरिमलमपि शकुनिध्वनिमपि तद्व प्रष्टुमीहमाना, तद्वल्लभतया तपःक्लेशायापि स्पृहयन्ती, तत्प्रीत्येव गृह मौनव्रता, स्मरजनितपक्षपाता च तत्परिग्रहान्मुनिवेषस्याग्राम्यतां त स्पदतया यौवनस्य चारुतां तच्छ्रवणसम्पर्कात्पारिजातकुसुमस्य मनोह तन्निवासात्सुरलोकस्य रम्यतां तद्रूपसंपदा कुसुमायुधस्य दुर्जयता रोपवन्ती, दूरस्थस्यापि कमलिनीव सवितुः सागरवेलेव चन्द्रमसो मयू जलधरस्य तस्यैवाभिमुखी, तथैव तां तद्विरहातरजीवितोद्गमरक्षाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिवाक्षावलीं कण्ठेनोद्वहन्ती, तथैव च तया प्रस्तुततद्रहस्यालापयेव कर्ण-लग्नया पारिजातमञ्जर्या तथैव च तेन तत्करतलस्पर्शसुखजन्मना कदम्ब-मुकुलकर्णपूरायमाणेन रोमाञ्चजालेन कण्टकितैककपोलफलका निस्पद-मतिष्ठम् ।

इस प्रकार उसके द्वारा कहे जानेपर, कुछ लज्जित होता हुआ-सा वह बोला—'मित्र कपिंजल ! मेरे विषयमें तुम अन्यथा संभावना क्यों कर रहे हो ? इस दुर्विनीत कन्याके जपमाला ले लेनेके इस अपराधको मैं नहीं क्षमा करूँगा।' ऐसा कह उसने, झूठे क्रोधसे सुन्दर, प्रयत्न द्वारा भयंकर बनायी गयी भौहोंसे अलंकृत और चुम्बन करनेकी इच्छा रखनेसे फड़कते हुए अधरोंवाले मुखचन्द्रसे कहा—'चंचले ! मेरी इस जपमालाको विना वापस किये एक कदम भी यहाँसे मत चलना।' यह सुन कामके नृत्यके प्रारम्भकी लीलामें प्रयुक्त कुसुमांजलि-सी एकावलीको अपने गलेसे उतार, 'भगवन् ! जपमाला लीजिए', ऐसा कहकर मेरे मुखपर दृष्टि गड़ानेवाले और शून्य हृदयवाले इसके फैलाये हुये हाथोंपर रखकर स्वेद-जलसे नहायी हुई भी मैं फिरसे नहानेके लिए उतर पड़ी। उठकर किसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक उल्टी दिशाकी ओर ले जायी जाती हुई नदीके समान सखियोंके द्वारा बलपूर्वक ले जायी जाती हुई मैं उसीकी अनुचिन्तना करती हुई माताजीके साथ अपने घर पहुँची। पहुँचकर कन्याओंके अन्तःपुरमें प्रवेशकर तबसे लेकर उसके विरहसे विकल मैं आ गयी हूँ या वहीं खड़ी हूँ, अकेली हूँ अथवा सो गयी हूँ, रो रही हूँ या नहीं रो रही हूँ, यह दुःख है कि सुख है, यह उत्कण्ठा है अथवा यह व्याधि है, यह विपत्ति है कि उत्सव है, रात है कि दिन है; क्या सुन्दर है, क्या असुन्दर है, यह सब कुछ न समझ सकी। कामदशासे अनभिज्ञ होनेके कारण कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, क्या सुनूँ, क्या देखूँ, किससे कहूँ, इसका प्रतीकार क्या है, यह सब न समझ सकी। केवल कुमारियोंके अन्तःपुरके प्रासादपर चढ़कर, सखियोंको हटाकर, दरवाजेपर ही सारे परिकरोंको रुक जानेका निर्देश दे, सारे कामोंको छोड़कर मणिसे बनी हुई खिड़कीमें मुँह रखे मैं, उसके रहनेके कारण सजायी गई-सी, रत्नोंके बहुत बड़े कोशसे युक्त-सी अमृतरससे भरे सागरके प्रवाहमें डूबी हुई-सी, पूर्ण चन्द्रके उदयसे शोभित-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सी, देखनेमें सुन्दर उसी दिशाको देखती हुई; उस दिशासे आते हुए पवन, व... सुमनगन्ध और विहग-कूजनसे भी उसका हाल-चाल पूछनेकी इच्छा करती हु... उसको अच्छा लगनेके कारण तपस्याके दुःखके लिए भी स्पृहा करती हुई, का... के द्वारा उत्पन्न किये गये पक्षपातके कारण उसके प्रेमसे ही मौन ग्रहण कर... हुई, उसके स्वीकारके कारण मुनियोंकी वेष-भूषामें अग्राम्यता; उसमें प्रति... होनेके कारण यौवनमें सुन्दरता, उसके कानके संसर्गमें रहनेके कारण मंदारसुमन... मनोरमता, उसका निवास-स्थान होनेके कारण देवलोकमें रमणीयता और उस... रूप-सम्पत्तिसे सुमनका बाण रखनेवाले कामदेवमें अजेयताका आरोप करती हु... उसी प्रकार उसके विरहसे विकल निकलनेवाले प्राणोंकी रक्षा करनेवाली-सी... सुमिरिनीको गलेमें पहने हुए और भेदभरी बातचीतको प्रस्तुत करनेवाली मंदा... मंजरी एवं उसके करस्पर्शके सुखसे उत्पन्न होनेवाले रोमांचोंसे पुलकित होती... एक गालपर हाथ रखे निश्चल बैठी रही।

२२—अथ ताम्बूलकरङ्कवाहिनी मदीया तरलिका नाम मयैव स... गता स्नातुमासीत्। सा च पश्चाच्चिरादिवागत्य तथावस्थितां शनैर्माभ... दीत्—"भर्तृदारिके, यौ तौ तापसकुमारकौ दिव्याकारावस्माभिरच्छो... दसरस्तीरे दृष्टौ, तयोरेको येन भर्तृदुहितुरियमवतंसीकृता सुरतरुकुसु... मञ्जरी स तस्माद्द्वितीयादात्मनो रक्षन्दर्शनमतिनिभृतपदः कुसुमितल... सन्तानगहनान्तरेणोपसृत्य मामागच्छन्तीं पृष्ठतो भर्तृदारिकामुद्दिश्य... प्राक्षीत्—'बालिके केयं कन्यका कस्य वापत्यं किमभिधाना क्व गच्छ... इति। मयोक्तम्—'एषा खलु भगवतः श्वेतभानोरंशुसंभूतायामप्सर... गौर्यां समुत्पन्ना देवस्य सकलगन्धर्वमुकुटमणिशलाकाशिखरोल्लेखमसृण... चरणनखचक्रस्य प्रणयप्रसुप्तगन्धर्वकामिनीकपोलपत्रलतालाञ्छितभुज... शिखरस्य पादपीठीकृतलक्ष्मीकरकमलस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता-म... श्वेता नाम गन्धर्वाधिवासं हेमकूटाचलमभिप्रस्थिता'। इति कथिते मया किमपि चिन्तयन्मुहूर्तमिव तूष्णीं स्थित्वा विगतनिमेषेण चक्षु... चिरमभिवीक्षमाणो मां सानुनयमर्थितामिव दर्शयन्पुनराह—'बालि... कल्याणिनी तवाविसंवादिन्यचपला बालभावेऽप्याकृतिरियम्। तत्कर... मे वचनमेकमभ्यर्थ्यमाना' इति। ततो मया सविनयमुपरचिताञ्जलिपुट...

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्शितादरमभिहितः—'भगवन्कस्मादेवमभिधत्से ? काहम् ? महात्मानः सकलत्रिभुवनपूजनीयास्त्वादृशाः पुण्यैर्विना निखिलकल्मषापहारिणी-मस्मद्विधेषु दृष्टिमपि न पातयन्ति किं पुनराज्ञाम्। तद्विश्रब्धमादिश्यतां कर्तव्यम्। अनुगृह्यतामयं जनः'। इत्येवमुक्तश्च मया सस्नेहया सखीमिवो-पकारिणीमिव प्राणप्रदामिव दृष्ट्या मामभिनन्द्य निकटवर्तिनस्तमाल-पादपात्पल्लवमादाय निष्पीड्य शिलातले तेन गन्धगजमदसुरभिपरिमलेन रसेनोत्तरीयवल्कलैकदेशाद्विपाट्य पट्टिकां स्वहस्तकमलकनिष्ठिकानख-शिखरेणाभिलिख्य 'इयं पत्रिका त्वया तस्यै कन्यकायै प्रच्छन्नमेकाकिन्यै देया' इत्यभिधायार्पितवान्।" इत्युक्त्वा च सा ताम्बूलभाजनादाकृष्य तामदर्शयत्। अहं तु तेन तत्संबन्धिनालापेन शब्दमयेनापि स्पर्शसुख-मिवान्तर्जनयता श्रोत्रविषयेणापि रोमोद्गमानुमितसर्वाङ्गानुप्रवेशेन मदना-वेशमन्त्रेणेवावेश्यमाना तस्याः करतलादादाय तां वल्कलपट्टिकां तस्यामि-मामभिलिखितामार्यामपश्यम्—

दूरं मुक्तालतया बिससितया विप्रलोभ्यमानो मे।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः॥

पनडव्वा ढोनेवाली तरलिका नामक मेरी दासी मेरे साथ ही स्नान करनेके लिए गई थी। पीछे वह कुछ देरसे आकर इस प्रकार बैठी हुई मुझसे धीरे-धीरे बोली—'राजकुमारी ! दिव्य रूपवाले जिन दोनों तपस्वी-कुमारोंको हमने अच्छोदसरके तटपर देखा था, उसमेंसे एकने, जिसने मंदार-मंजरीको राजकुमारी-के कानोंका आभूषण बना दिया, उस दूसरेकी दृष्टिसे अपनेको छिपाता हुआ गुपचुप पैरोंसे फूली सघन लताओंके बीचसे आती हुई मेरे पीछे आकर राजकुमारी को लक्ष्य बनाकर पूछा—बाले ! यह कन्या कौन है ? किसकी संतान है ? और कहाँ जा रही है ?' मैंने उत्तर दिया—'भगवान् चन्द्रकी किरणोंसे उद्भूत गौरी नामक अप्सरासे उत्पन्न, सारे गन्धर्वोंके मुकुटोंमें लगी मणियोंकी सलाइयोंके नोकीले अग्रभागको खरोचोंसे चिकने बनाये गये नाखूनोंसे युक्त, प्रेमसे सोयी हुई गन्धर्व-ललनाओंके गालोंकी पत्ररचनासे चिह्नित बाहु-वृक्षकी चोटीसे समन्वित और लक्ष्मीके कर-कमलोंको अपने पैरोंकी चौकी बना लेनेवाले गन्धर्वपतिदेव हंसकी यह महाश्वेता नामक पुत्री गन्धर्वोंके निवास-स्थान हेमकूट पर्वतकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओर जा रही हूँ।' इस प्रकार मेरे कहनेपर कुछ सोचता हुआ मुहूर्तभर चु
रहकर अपलक नेत्रोंसे देरतक देखता हुआ, याचकता दिखलाता हुआ-सा व
विनयपूर्वक बोला—'बाले ! कल्याणि ! शैशव होते हुए भी तुम्हारा यह आक
अचंचल और गुण-युक्त है। अतः अनुरोध करनेपर मेरा एक कहा करोगी?
तत्पश्चात् विनयपूर्वक हाथ जोड़कर मैंने सादर कहा—'भगवन् ! इस प्रका
क्यों कह रहे हैं ? मैं क्या हूँ ? समस्त त्रिलोकके पूजनीय आपके समान महात्
बिना पुण्यके हम जैसे लोगोंपर सारे पापोंको हर लेनेवाली दृष्टि भी नहीं डाल
आज्ञा देनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता, अतः विश्वस्त होकर आदेश दें कि क
करना है। इस जनको अनुगृहीत करें।' इस प्रकार मेरे कहनेपर, सखी-सी, उ
कारिणी-सी और प्राणदात्री-सी नेहभरी दृष्टिसे मेरा अभिनन्दन कर समीप
तमालवृक्षकी कोंपलोंको लेकर और शिलापर पीसकर गन्धहस्तीकी मदगन्ध
समान गन्धसे भरे उसके रससे वल्कलके दुपट्टेसे एक पट्टी फाड़कर अपने क
कमरुकी कनिष्ठिका अँगुलीके नाखूनके अग्रभागसे यह चिट्ठी लिखकर (उसने
'तुम गुप्त रूपसे उस कन्याको अकेलेमें देना' यह कहकर दे दी।" यह कहक
उसने पनडब्बेसे उसे निकालकर दिखाया। मैंने तो शब्दमय होते हुए
भीतर स्पर्शसुखको उत्पन्न करानेवाले, सुननेका विषय बनते हुए भी पुलक
द्वारा सारे अंगोंमें प्रवेशका विषय बननेवाले, कामके आवेशके मन्त्रकी न
उससे सम्बद्ध वार्तालापसे आवेशमें आते हुए उसके हाथसे वल्कल-पत्रिका ले
उसमें लिखी हुई इस आर्याको देखा—

मृणालतन्तुओंकी भाँति धवल एवं मोतियोंकी नाईं लताके द्वारा लुभा
गये, दिखायी गयी दिशाको ओर देखनेवाले (अथवा—आशान्वित) और मान
सरमें जन्म लेनेवाले हंसके सदृश मेरे कामको मृणालन्तुओंके समान शुभ्र एक
वलीसे लुभाकर और आशा से भरकर तुम दूर ले गयी।

२३—अनया च मे दृष्ट्या दिङ्मोहभ्रान्त्येव प्रनष्टवर्त्मनः, बहुल
निशयेवान्धस्य, जिह्वोच्छित्त्येव मूकस्य, इन्द्रजालिकपिच्छिकयेवातत्त्व
दर्शिनः, ज्वरप्रलापप्रवृत्त्येवासंबद्धभाषिणः, दुष्टनिद्रयेव विषविह्वलस्य
लोकायतिकविद्ययेवाधर्मरुचेः, मदिरयेवोन्मत्तस्य, दुष्टावेशक्रियये
पिशाचग्रहस्य, दोषविकारोपचयः सुतरामक्रियत स्मरातुरस्य मे मनसो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

येनाकुलीक्रियमाणा, सरिदिव पूरेण विह्वलतामभ्यागमम्। तां च द्वितीय-दर्शनेन कृतमहापुण्यामिवानुभूतसुरलोकवासामिव देवताधिष्ठितामिव लब्धवरामिव पीतामृतामिव समासादितत्रैलोक्यराज्याभिषेकामिव मन्यमाना, सततसंनिहितामपि दुर्लभदर्शनामिवातिपरिचितामप्यपूर्वामिव सादरमाभाषमाणा, पश्र्वावस्थितामपि सर्वलोकस्योपर्यवस्थितामिव पश्यन्ती, कपोलयोरलकलताभङ्गेषु च सोपग्रहं स्पृशन्ती, विपरीतमिव परिजनस्वामि-संबन्धमुपदर्शयन्ती, तरलिके कथय कथं स त्वया दृष्टः, किं किमभिहितासि तेन, कियन्तं कालमवस्थितासि तत्र, कियदनुसरन्नस्मानसावागतः' इति पुनः पर्यपृच्छम्। अनयैव च कथया तया सह तस्मिन्नेव प्रासादे तथैव प्रतिषिद्धाशेषपरिजनप्रवेशा दिवसमत्यवाहयम्।

इसे देखकर दिग्भ्रमवश मार्ग भूले राहीके समान, कृष्ण पक्षकी रातमें पड़े अन्धेकी नाईं, जीभ कटे गूँगेकी भाँति, ऐन्द्रजालिकके मोरछलसे छले गये झूठे दृश्यको देखनेवाले दर्शककी तरह, ज्वरसे उत्पन्न ऊट-पटांग बातमें लगे हुए असम्बद्ध वक्ताकी भाँति, खराब नींदमें पड़े हुए विषसे व्याकुल मनुष्यके समान, चार्वाक विद्यासे अधर्ममें रुचि रखनेवाले पुरुषके सदृश, मदिरासे मतवालेकी नाईं, दुष्ट आवेशकर्मसे पिशाचग्रस्त आदमीकी भाँति, मेरे कामातुर चित्तमें दोष उत्पन्न विकारोंकी बहुत वृद्धि हो गयी; जिससे, प्रवाहसे व्याकुल नदीकी भाँति विकल होकर मैं विह्वल हो उठी। मुनिकुमारका दूसरी बार दर्शन करनेके कारण महान् पुण्य करनेवाली-सी, देवलोकमें निवास करनेका अनुभव करनेवाली-सी, देवतासे समन्वित-सी, वर प्राप्त कर लेनेवाली-सी, अमृत-पान करनेवाली-सा, त्रिभुवनके राज्य-पदपर अभिषिक्त होनेवाली-सी, उसे मानती हुई; सदैव निकट रहनेपर भी अलभ्य दर्शन-सी, अतिपरिचित होनेपर भी अपूर्व-सी, उससे सादर बात करती हुई, बगलमें बैठी हुई भी उसे सारे लोगोंके ऊपर बैठी हुई सी देखती हुई, उसके गालों और केशपाशको सप्रेम छूती हुई, स्वामी और सेवकके सम्बन्धके विपरीत आचरण करती हुई-सी मैंने बारम्बार पूछा—'तरलिके! कहो कैसे तुमने उसे देखा? उसने तुमसे क्या कहा? वहाँ तू कितने समयतक रही? हम लोगोंका अनुसरण करता हुआ वह कहाँ तक आया था, यही बातचीत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते हुए उसी प्रासादमें उसी प्रकार समस्त भृत्योंका प्रवेश निषिद्ध किये हु
सारा दिन बिताया।

२४—अथ मदीयेनेव हृदयेन कृतरागसंविभागे लोहितायति गगन
तलोपान्तावलम्बिनि रविबिम्बे सरागदिवसकरदर्शनानुरक्तायां कृतकम
शयनायामनङ्गातुरायामिव पाण्डुतां व्रजन्त्यामातपलक्ष्म्याम्, गौरि
गिरिसलिलप्रपातपाटलेषु कमलवनेभ्यः समुत्थाय वनगजयूथेष्विव पुञ्ज
भवत्सु भास्करकिरणेषु, गगनावतारविश्रामलालसानां रविरथवाजि
हर्षहेषारवप्रतिशब्दकेन सह विशति मेरुगिरिगह्वरं वासरे, मुकुलितर
पङ्कजपुटप्रविष्टमधुकरावलीषु रविविरहमूर्च्छान्धकारितहृदयास्विव प्रारब
निमीलनासु पद्मिनीषु, ग्रासीकृतसामान्यमृणाललताविवरसंक्रामितानि
परस्परहृदयान्यादाय विघटमानेषु रथाङ्गनाम्नां युगलेषु सा छत्रग्राहि
समागत्याकथयत्—'भर्तृदारिके तयोर्मुनिकुमारयोरन्यतरो द्वारि तिष्ठ
कथयति चाक्षमालामुपयाचितुमागतोऽस्मि' इति।

तदनन्तर मेरे हृदयके रागमें हिस्सा बँटा लेनेवाले, लाल बने हुए सू
बिम्बके आकाशके किनारे लटक जानेपर; रागी सूर्यके दर्शनमें अनुरक्त, कमल
शयन करनेवाली और कामातुर-सी प्रकाश-लक्ष्मीके पीली पड़ जानेपर; कम
वनोंसे निकले हुए जंगली हाथियोंके झुण्डकी भाँति गेरुए पर्वतके झरनेमें
गुलाबी बनी हुई सूर्य-किरणोंके सिमट जानेपर; आकाशमें घूमनेके बाद विश्राम
लिए उत्कण्ठित सूर्यके रथके घोड़ोंकी हिनहिनानेकी आनन्दभरी प्रतिध्वनिके सा
साथ मेरु पर्वतकी गुफामें दिनके घुस जानेपर; मुकुलित कोकनदोंमें घुस जा
वाली भ्रमरियोंसे युक्त, सूर्यके वियोगसे उत्पन्न मूर्च्छासे आये अन्धकारसे भरे हृद
वाली नलिनियोंके आँख मूँद लेनेपर; आधी खायी गयी बिस-लताओंके छेद
रखे गये से हृदयको लेकर चक्रवाकके जोड़ोंके अलग हो जानेपर उस छ
धारिणीने आकर निवेदन किया— राजकुमारी! उन दोनों मुनिकुमारोंमेंसे
दरवाजेपर खड़ा है, और कह रहा है कि सुमिरिनी माँगनेके लिए आया हूँ

२५—अहं तु मुनिकुमारनामग्रहणादेव स्थानस्थितापि गतेव द्वारदे
समुपजाततदागमनाशङ्का समाहूयान्यतमं कञ्चुकिनम्, 'गच्छ प्र
श्यताम्' इत्यादिश्य प्राहिणवम्। अथ मुहूर्तादिव तं तस्य रूपस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यौवनम्, यौवनस्येव मकरकेतनम्, मकरकेतनस्येव वसन्तसमयम्, वसन्तसमयस्येव दक्षिणानिलम्, अनुरूपं सखायमृषिकुमारकं कपिञ्जलनामानं जराधवलस्य कञ्चुकिनोऽनुमार्गेण चन्द्रातपस्येव बालातपमागच्छन्तमपश्यम्। अन्तिकमुपगतस्य चास्य पर्याकुलमिव सविषादमिव शून्यमिवार्थिनमिवानुपरताभिप्रेतमाकारमलक्षयम्। उत्थाय च कृतप्रणामा सादरं स्वयमासनमुपाहरम्। उपविष्टस्य च बलादनिच्छितोऽपि प्रक्षाल्य चरणावुपमृज्योत्तरीयांशुकपल्लवेनाव्यवधानायां भूमावेव तस्यान्तिके समुपाविशम्। अथ मुहूर्तमिव स्थित्वा किमपि विवक्षुरिव स तस्यां मत्समीपोपविष्टायां तरलिकायां चक्षुरपातयत्। अहं तु विदिताभिप्राया दृष्ट्यैव 'भगवन्नव्यतिरिक्तेयमस्मच्छरीरादशङ्कितमभिधीयताम्' इत्यवोचम्।

केवल मुनिकुमारका नाम लेनेसे ही उस स्थानपर बैठी हुई भी द्वारपर गयी-सी, मैंने तो उसके आगमनकी आशंका से समन्वित हो विश्वस्त कंचुकीको बुलाकर 'जाओ, उसे भीतर ले आओ' ऐसी आज्ञा देकर, भेजा। तदनन्तर मैंने क्षणभरमें जैसे रूपका यौवन, यौवनका काम, कामका वसन्त और वसन्तका दक्षिण पवन उसी प्रकार उसके अनुरूप मित्र कपिंजल नामक मुनिकुमारको, चन्द्र-प्रकाशका अनुसरण करते बालसूर्यकी भाँति जराशुभ्र कंचुकीके पीछे-पीछे आते हुए देखा। समीपमें पहुँचे हुए इस मुनिकुमारका आकार अति व्याकुल-सा, विषाद भरा-सा, सूना-सा, भिखमंगे-सा और आन्तरिक अभिप्रायसे भरा-सा दिखायी पड़ा। उठकर प्रणाम करनेके पश्चात् मैं स्वयं आदरपूर्वक आसन ले आयी। उसके बैठ जानेपर, न चाहनेपर भी बलपूर्वक उसके चरणोंको धो और कोमल ओढ़नीके छोरसे पोंछ, खाली धरतीपर ही उसके पास बैठ गयी। इसके उपरान्त थोड़ी देर ठहरकर कुछ कहनेकी इच्छासे उसने पास बैठी उस तरलिकापर दृष्टि डाली। मैंने अभिप्राय समझकर "भगवन्! यह मुझसे अभिन्न है। निःशंक कहिए", दृष्टिसंकेतसे ऐसा कहा।

२६—एवमुक्तश्च मया कपिञ्जलः प्रत्यवादीत्—"राजपुत्रि, किं ब्रवीमि। वागेव मे नाभिधेयविषयमवसरति त्रपया। क्व कन्दमूलफलाशी शान्तो वनेनिरतो मुनिजनः, क्वायमनुपशान्तजनोचितो विषयोपभोगाभिलाषकलुषो मन्मथविविधविलाससंकटो रागप्रायः प्रपञ्चः। सर्वमेवानु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पपन्नमालोकय। किमारब्धं दैवेन। अयत्नेनैव खलूपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनम्। न जाने किमिदं वल्कलानां सदृशमुताहो जटानां समुचितम्, किं तपसोऽनुरूपमाहोस्विद्धर्मोपदेशाङ्गमिदम्। अपूर्वेयं विडम्बना। केवल मवश्यं कथनीयमिदम्। अपर उपायो न दृश्यते। अन्या प्रतिक्रिया नोपलभ्यते। अन्यच्छरणं नालोक्यते। अन्या गतिर्नास्ति। अकथ्यमाने च महाननर्थोपनिपातो जायते। प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदस इति कथयामि। अस्ति भवत्याः समक्षमेव स मया तथा निष्ठुरमुप दर्शितकोपेनाभिहितः। तथा चाभिधाय परित्यज्य तं तस्मात्प्रदेशादु पजातमन्युरुत्सृष्टकुसुमावचयोऽन्यं प्रदेशमगमम्। अपयातायां भवत्यां मुहूर्तमिव स्थित्वैकाकी किमयमिदानीमाचरतीति संजातवितर्कः प्रतिनिवृत्त विटपान्तरितविग्रहस्तं प्रदेशं व्यलोकयम्। यावत्तत्र तं नाद्राक्षमासीच्च मे मनस्येवम्, 'किं नु मदनपरायत्तचित्तवृत्तिस्तामेवानुसरन् गतो भवेत्, गतायां च तस्यां लब्धचेतनो लज्जमानो न शक्नोति मे दर्शनपथमुपगन्तुम्, आहोस्वित्कुपितः परित्यज्य मां गतः, उतान्वेषमाणो मामेव प्रदेशमन्यमित समाश्रितः स्यात्'। इत्येवं विकल्पयन् कञ्चित्कालमतिष्ठम्। तेन तु जन्मनः प्रभृत्यनभ्यस्तेन तस्य क्षणमप्यदर्शनेन दूयमानः पुनरचिन्तयम्, स कदाचिद्धैर्यस्खलनविलक्षः किंचिदनिष्टमपि समाचरेत्। न हि किंचिन्न क्रियते ह्रिया। तन्न युक्तमेनमेकाकिनं कर्तुम्', इत्यवधार्यान्विष्टुमादरम करवम्। अन्वेषमाणश्च यथा यथा नापश्यं तं तथा तथा सुहृत्स्नेह कातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशङ्कमानस्तरुलतागहनानि चन्दनवीथिका लतामण्डपान्सरःकूलानि च वीक्षमाणो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टिः सुचिरं व्यचरम्।

मेरे ऐसा कहनेपर कपिंजलने उत्तर दिया—"राजपुत्रि, क्या कहूँ ? लज्जाके कारण कथनीय विषयपर मेरी वाणी उतरती ही नहीं। कहाँ कन्द-मूलभक्षी, शान्त, वनलीन मुनि और कहाँ यह अशान्तमनुष्योपयुक्त विषयभोगकी इच्छासे मलिन कामके नानाविध विलासोंसे संकीर्ण रागबहुल प्रपञ्च ? देखिए, सब अनुपयुक्त है। दैवने क्या आरम्भ किया है ? ईश्वर बिना प्रयत्नके ही मनुष्यको उपहासास्पद बना देता है। न जाने यह वल्कलोंके उपयुक्त है अथवा जटाओंके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाने तपस्याके अनुरूप है, जाने धर्मोपदेशका अंग है? केवल यह अपूर्व विडम्बना है। यह कहना अवश्य है। दूसरा उपाय नहीं सूझता। दूसरा इलाज नहीं मिलता। दूसरी शरण नहीं दीखती। और गति नहीं है। न कहनेपर बड़ा अनर्थ होता है। प्राणत्याग कर भी मित्रके प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिए; सो करता हूँ। आपके सम्मुख ही तब क्रोध दिखाते हुए मैंने उससे कितने निष्ठुर वचन कहे थे और वैसा कहकर क्रोधाविष्ट हो फूल चुनना छोड़कर उसे छोड़-कर उस स्थानसे दूसरे स्थानपर चला गया था। आपके चले जानेपर मुहूर्त भर ठहरकर इस तर्कणासे कि देखें, अकेला यह अब क्या करता है, मैं लौटकर तथा वृक्षके पीछे अपने शरीरको छिपाकर उस स्थानको देखने लगा। और जब मैंने उसे वहाँ नहीं देखा तो सोचने लगा—'मदनके कारण पराधीन-चित्तवृत्ति हो उसीका पीछा करता हुआ तो कहीं नहीं चला गया? अथवा उसके (महा-श्वेताके) चले जानेपर चेतना प्राप्तकर लज्जित हो मेरी आँखोंके सम्मुख नहीं आ पा रहा? अथवा क्रुद्ध हो मुझे छोड़कर चला गया? अथवा मुझे खोजता हुआ यहाँसे दूसरे स्थानको चला गया?' इस प्रकार अनेक प्रकारसे सोचता कुछ देर बैठा रहा। जन्म-कालसे लेकर उसे न देखनेका अभ्यास न होनेके कारण क्षण भरके लिए भी उसके न दीखनेपर दुःखी होता हुआ मैं फिर सोचने लगा—'धैर्य नष्ट हो जानेसे असूझा बना वह कहीं कोई अनिष्ट न कर डाले? लज्जासे सब कुछ किया जा सकता है। सो उसे अकेला छोड़ना ठीक नहीं।' ऐसा सोचकर उसे खोजनेका उद्योग करने लगा। खोजनेपर जैसे-जैसे वह नहीं दीख पड़ने लगा, वैसे-वैसे ही मित्रके प्रेमसे कातर मनमें भाँति-भाँतिके अमंगलों-की आशंका करता मैं वृक्षों-लताओंके झुरमुटों, चन्दनवीथिकाओंके लता-मण्डपों तथा सरोवरोंके तटोंको एकतान दृष्टिसे इधर-उधर देखता बहुत देर तक घूमता फिरा।

२७—अथैकस्मिन्सरःसमीपवर्तिनि निरन्तरतया कुसुममय इव मधुकर-मय इव परभृतमय इव मयूरमय इवातिमनोहरे वसन्तजन्मभूमिभूते लतागहने कृतावस्थानम्, उत्सृष्टसकलव्यापारतया लिखितमिवोत्कीर्णमिव स्तम्भितमिवोपरतमिव, प्रसुप्तमिव, योगसमाधिस्थमिव, निश्चलमपि स्ववृत्ताच्चलितम्, एकाकिनमपि मन्मथाधिष्ठितम्, सानुरागमपि पाण्डु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तामावहन्तम्, शून्यान्तःकरणमपि हृदयनिवासिदयितम्, तूष्णीकम
कथितमदनवेदनातिशयम्, शिलातलोपविष्टमपि मरणे व्यवस्थित
शापप्रदानभयादिवादत्तदर्शनेन कुसुमायुधेन सन्ताप्यमानम्, अ
निस्पन्दतया हृदयनिवासिनीं प्रियां द्रष्टुमन्तःप्रविष्टैरिवासह्यसंतापसंत्रा
प्रलीनैरिव मनःक्षोभप्रकुपितैरिवोन्मुच्य गतैरिन्द्रियैः शून्यीकृतशरीर
निस्पन्दनिमीलितेनान्तर्ज्वलन्मदनदहनधूमाकुलिताभ्यन्तरेणेव पक्ष्मान्त
विवरवान्तानेकधारमनवरतमीक्षणयुगलेन वाष्पजलदुर्दिनमुत्सृजन्त
आलोहिनीमधरप्रभामनङ्गाग्नेः प्रदहतो हृदयमूर्ध्वसंसर्पिणीं शिखामिवाव
निष्पतद्भिरुच्छ्वासैस्तरलीकृतासन्नलताकुसुमकेसरम्, वामकपोलशयन
कृतकरतलतया समुत्सर्पद्भिरमलैर्नखांशुभिर्विमलीकृतमच्छाच्छचन्दनर
रचितललाटिकमिव ललाटमुद्वहन्तम्, अचिरापनीतपारिजातकुसुमक
पूरतया सशेषपरिमलामोदलोभोपसर्पिणा कलविरुतच्छलेन मदनसंमोह
मन्त्रमिव जपता मधुकरकुलेन सनीलोत्पलमिव सतमालपल्लवमिव श्रव
देशं दधानम्, उत्कण्ठाज्वररोमाञ्चव्याजेन प्रतिरोमकूपनिपतितानां मद
शराणां कुसुमशरशल्यकलनिकरमिवाङ्गलग्नं बिभ्राणम्, दक्षिणकरेण
स्फुरितनखकिरणनिकरां करतलस्पर्शसुखकण्टकितामिव मुक्तावलीमविन
पताकामुरसि धारयन्तम्, मदनवशीकरणचूर्णेनेव कुसुमरेणुना तरु
राहन्यमानम्, आत्मरागमिव संक्रामयद्भिरासन्नैरनिलचलितैरशो
पल्लवैः स्पृश्यमानम्, सुरताभिषेकसलिलैरिवाभिनवपुष्पस्तबकम
सीकरैर्वनश्रियाभिषिच्यामानम्, अलिनिवहनिपीयमानपरिमलैरा
पतद्भिश्चम्पककुड्मलैस्तप्तशरशल्यकैरिव सधूमैः कुसुमशरेण ताड्यमान
अतिबहलवनामोदमत्तमधुकरझङ्कारनिस्वनैर्हुंकारैरिव दक्षिणानिले
निर्भर्त्स्यमानम्, मदकलकोकिलकुलकोलाहलैर्वसन्तजयशब्दकमलैरि
मधुमासेनाकुलीक्रियमाणम्, प्रभातचन्द्रमिव पाण्डुतया परिगृहीत
निदाघगङ्गाप्रवाहमिव कृशिमानमागतम्, अन्तर्गतानलं चन्दनविटपमि
म्लायन्तम्, अन्यमिवादृष्टपूर्वमिवापरिचितमिव जन्मान्तरमिवोपग
रूपान्तरेणेव परिणतमाविष्टमिव महाभूताधिष्ठितमिव ग्रहगृहीतमिवोन्मत्त
मिव छलितमिवान्धमिव बधिरमिव मूकमिव विलासमयमिव मदनम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिव परायत्तचित्तवृत्तिं परां कोटिमधिरूढं मन्मथावेशस्यानभिज्ञेयपूर्वाकारं तमहमद्राक्षम् ।

इसके अनन्तर एक सरोवरके समीपवर्ती, निविड़ताके कारण मानो पुष्पमय, भ्रमरमय, कोकिलमय, मयूरमय प्रतीत होते, अत्यन्त मनोहर, वसन्त ऋतुकी जन्मभूमि स्वरूप एक लता-गह्वरमें स्थित, समस्त क्रिया-व्यापारोंको छोड़ देनेसे लिखे जैसे, पत्थरपर उकेरे गये जैसे, खम्भे जैसे, मृत जैसे, सोये जैसे, योग-समाधिमें लीन जैसे, निश्चल होकर भी अपने आचरणसे विचलित (भ्रष्ट), एकाकी (अकेले) होकर भी कामदेवसे अधिष्ठित, सानुराग (लाली-प्रेम) होनेपर पीलापन धारण किये, शून्य (सूना, दूसरे कार्य करनेकी इच्छासे रहित) अन्तःकरण रखते हुए भी हृदयमें प्रियाको बसाये, मौन रहते हुए भी मदन-वेदनाको कहते (प्रकट करते), शिला-तलपर बैठे हुए भी मरनेको चलते (उद्यत); शाप पानेके डरसे अदृश्य रहते कुसुमायुधसे पीड़ित; अत्यन्त निश्चलताके कारण हृदयवासिनी प्रियाके देखनेके निमित्त अन्तःप्रवृष्ट जैसी, असह्य संतापके भयसे नष्ट हुई जैसी, मनके अन्य स्थलपर चले जानेके कारण कुपित हुई जैसी, अतएव छोड़कर चली गयीं इन्द्रियोंसे शून्य शरीर धारण किये हुए; हृदयमें जलती मदनाग्निके धुएंसे अभ्यन्तर व्याकुल होनेके कारण मानो स्पन्दनहीन तथा मुँदे, पलकोंके छिद्रोंसे अनेक धाराएँ बहाते दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी वर्षा करते; हृदयको जलाती मदनाग्निकी ऊपरको लपकती लपटके समान लाल अधरकान्तिको लेकर बाहर निकलती उसाँसों द्वारा समीपवर्ती लताके पुष्प-केसरको कंपाते; बायें कपोल-पर रक्खी हथेलीके कारण ऊपर जाती हुई नखोंकी किरणोंसे श्वेत हुए, अतएव स्वच्छ चन्दन रससे रचे तिलकयुक्त जैसे प्रतीत होते ललाटको धारण करते; कुछ देर पहिले ही मन्दार-पुष्पके कर्णपूरको दूर किये जानेके कारण शेष रहे परिमलकी सुगन्धके लोभसे समीप आते, मोहक गुंजनके बहाने मानो मदनके वशीकरण मन्त्रको जपते भ्रमर-समूह के कारण नील-कमल जैसे, तमाल-पल्लव जैसे कर्णप्रदेशको धारण किये; उत्कण्ठाके कारण प्राप्त ज्वरसे उत्पन्न रोमाञ्चके व्याजसे मानो रोम-रोममें धँसे कामके कुसुम-बाणोंके आधे घुसे—आधे निकले टूटे खण्डोंको अंगमें धारण करते; दायें हाथके नखोंकी चमचमाती किरणोंके समूहसे युक्त, हथेलीके स्पर्श-सुखसे मानो कण्टकित होती, अविनयकी ध्वजाके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समान मुक्तावलीको उर-स्थलपर धारे; कामके वशीकरण चूर्णसे तुलना करनेवाले कुसुमरेणुसे वृक्षों द्वारा ताडित होते; आत्मराग (लाली और प्रेम) को प्रकट करते वायुमें हिलते निकटवर्ती अशोक-पल्लवोंसे छुए जाते; सुरतराज्यके अभिषेक जलके समान नवीन पुष्पगुच्छोंके मधुरसकणों द्वारा वन-लक्ष्मीसे अभिषिक्त होते; भ्रमर-समूह जिनके परिमलका पान कर रहा है, ऐसी चम्पक-कलियों द्वारा ताडित होनेसे जलती लोहेकी नोकवाले, धुँआ उड़ाते कुसुम-शर कामदेवके बाणों आघात प्राप्त करते जैसे; अत्यन्त निविड वन-परिमल-से उन्मत्त भ्रमर-समूहके गुन-गुन शब्द द्वारा दक्षिण-पवनसे जैसे भर्त्सना प्राप्त करते; वसन्तके जयशब्द कोलाहलसे समता करनेवाले मदमत्त कोकिल-कुलके कोलाहलसे जैसे मधुमासके व्याकुल किये जाते; प्रभातकालीन चन्द्रमाके समान पाण्डुर; गंगाके ग्रीष्मकालीन प्रवाहके तुल्य कृश; जिसके अन्तरमें आग जल रही है, ऐसे चन्दन-वृक्षके समान कुम्हलाते; कोई दूसरे जैसे; पहिले न देखे गये जैसे, अपरिचित जैसे; जन्मान्तरको प्राप्त जैसे; दूसरे रूपको प्राप्त जैसे; भूतादि रोगसे ग्रस्त जैसे, वैताल द्वारा अधिष्ठित जैसे; पिशाचादि द्वारा पकड़े गये जैसे, उन्मत्त जैसे; छले गये जैसे; अन्धे जैसे, बहिरे जैसे, गूँगे जैसे प्रतीत होते; मानो विलाससे आविष्ट; मानो काममय, पराधीन चित्तवृत्तिवाले; कामदेवकी उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त; जिसकी पूर्व आकृति ज्ञात न हो सके ऐसे, उसको मैंने देखा।

२८—अपगतनिमेषेण चक्षुषा तदवस्थं चिरमुद्वीक्ष्य समुपजातविषादो वेपमानेन हृदयेनाचिन्तयम्—'एवं नामायमतिदुर्विषहवेगो मकरकेतुः, येनानेन क्षणेनायमीदृशमवस्थान्तरमप्रतीकारमुपनीतः। कथमेवमेकपदे व्यर्थीभवेदेवंविधो ज्ञानराशिः। अहो बत महच्चित्रम्। तथा नामायमाशैशवाद्धीरप्रकृतिरस्खलितवृत्तिर्मम चान्येषां च मुनिकुमारकाणां स्पृहणीयचरित आसीत्। अद्य त्वित इव परिभूय ज्ञानमविगणय्य तपःप्रभावमुन्मूल्य गाम्भीर्यं मन्मथेन जडीकृतः। सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम्' इति। उपसृत्य च तस्मिन्नेव शिलातलैकपार्श्वे समुपविश्यांसदेशावसक्तपाणिस्तमनुन्मीलितलोचनमेव 'सखे पुण्डरीक कथय किमिदम्' इत्यपृच्छम्। अथ सुचिरसंमीलनालग्नमिव कथमपि प्रयत्नेनानवरतरोदनवशादुपजातारुणभावमश्रुजलपटलपूरप्लावितमुत्कुपितमिव सवेदनमिव स्वच्छांशुकांतरितरक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमलवनच्छायं चक्षुरुन्मील्य मन्थरया दृष्ट्या सुचिरं विलोक्य मामायततरं निःश्वस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षरं 'सखे कपिञ्जल विदितवृत्तान्तोऽपि किं मां पृच्छसि' इति कृच्छ्रेण शनैः शनैरवदत्। अहं तु तदाकर्ण्य तदवस्थयैवाप्रतीकारविकारोऽयं तथापि सुहृदा सुहृदसम्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितः सर्वात्मना निवारणीय इति मनसावधार्याब्रवम्।

अपलक दृष्टिसे उसे उस दशामें वहुत देर तक देखकर मुझे खेद हुआ और मैं कम्पित हृदयसे सोचने लगा—'इस मकरध्वज कामका वेग अत्यन्त दुःसह है, जिसके कारण यह क्षणभरमें जिसका प्रतीकार न किया जा सके, ऐसी अन्य दशाको पहुँच गया। ऐंसा ज्ञानका भांडार सहसा एक पदमें ही कैसे व्यर्थ हो गया? अरे, वड़ा आश्चर्य है, यह वाल्यावस्थासे ही स्थिर-स्वभाव तथा श्रेष्ठ आचरण रखनेके कारण मेरा तथा अन्य मुनिकुमारोंका आदर्श रहा। अब तो ज्ञानका तिरस्कार करके, तपके प्रभावकी अवगणना करने और गम्भीरताका उन्मीलन करके कामद्वारा जड़ बनाया गया यह कोई दूसरा ही लगता है। सब प्रकारसे अखण्डित यौवन दुर्लभ है।' समीप पहुँचकर और उसी शला-खंडपर एक ओर वैठकर आँखें मूँदे बैठे उसके एक कन्धे पर हाथ रखकर मैंने पूछा—'मित्र पुण्डरीक, कहो, यह क्या है?' तदनन्तर देर तक मुँदे रहनेके कारण चिपके हुए जैसे, निरन्तर रोनेसे लाल हुए, अश्रुधाराकी बाढ़में तैरते जैसे, काँपते जैसे, पीडित जैसे, निर्मल वस्त्रसें ढके लाल कमलोंकी शोभा धारण करते नेत्रोंको किसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक खोलकर, मन्द-मन्द दृष्टिसे मुझे चिरकाल तक देखकर, बड़ी लम्बी साँस ले; लज्जाके कारण टूटे-फूटे अक्षरोंमें कठिनतासे धीरे-धीरे (वह) बोला—'मित्र कपिञ्जल, वृत्तान्त जानते हुए भी क्यों मुझसे पूछते हो?' मैं तो यह सुनकर और उस अवस्थासे ही उसके विचारको प्रतीकार योग्य न समझकर भी 'एक मित्रको अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर असत् मार्गपर जाते अपने मित्रको रोकना ही चाहिए', यह मनमें विचारकर बोला—

२७—'सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम। केवलमिदमेव पृच्छामि, यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्मशास्त्रेषु पठितम्? उत धर्मार्जनोपायोऽयम् उतापरस्तपसां प्रकारः? उत स्वर्गगमनमार्गोऽयम् उत व्रतरहस्यमिदम्? उत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम् आहोस्विदन्यो नियम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकारः ? कथमेतद्युक्तं भवतो मनसापि चिन्तयितुं किं पुनराख्यातुमीक्षि
वा । किमप्रबुद्ध इवानेन मन्मथहतकेनोपहासास्पदतां नीयमानमात्मा
नावबुध्यसे । मूढो हि मदनेनायास्यते । का वा सुखाशा साधुजननिन्दि
तेष्वेवंविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवतः । सः खलु धर्मबुद्ध्या
विषलतावनं सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति कृष्णागुरु
धूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहते, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभिस्पृशति
मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानु
बन्धिषु यः सुखबुद्धिमारोपयति । अधिगतविषयतत्त्वोऽपि कस्मात्खद्यो
इव ज्योतिर्निवार्यमिदं ज्ञानमुद्वहसि, यतो न निवारयसि प्रबलरजःप्रसर
कलुषितानि स्रोतांसीवोन्मार्गप्रस्थितानीन्द्रियाणि न नियमयसि च क्षुभि
मनः । कोऽयमनङ्गो नाम । धैर्यमवलम्ब्य निर्भर्त्स्यतामयं दुराचारः' इत्येवं
वदत एव मे वचनमाक्षिप्य प्रतिपक्ष्मान्तरालप्रवृत्तबाष्पवेणिकं प्रमृज्य
चक्षुः करतलेन पाणौ मामवलम्ब्यावोचत्—'सखे किं बहुनोक्तेन । सर्वथा
स्वस्थोऽसि । आशीविषविषवेगविषमाणामेतेषां कुसुमचापसायकानां
पतितोऽसि न गोचरे । सुखमुपदिश्यते परस्य । यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति
मनो वा विद्यते यः पश्यति वा शृणोति वा श्रुतमवधारयति वा यो वा
शुभमिदं न शुभमिदमिति विवेक्तुमलं स खलूपदेशमर्हति । मम तु
सर्वमेवेदमतिदूरापेतम् । अवष्टम्भो ज्ञानं धैर्यं प्रतिसंख्यानमित्यस्तमितैव
कथा । कथमप्येवमेवायत्नविधृतास्तिष्ठन्त्यसवः । दूरातीतः खलूपदेश
कालः । समतिक्रान्तो धैर्यावसरः । गता प्रतिसंख्यानवेला । अतीतो
ज्ञानावष्टम्भसमयः केन वान्येनास्मिन्समये भवन्तमपहाययोपदेष्टव्यमुन्मार्ग
प्रवृत्तिनिवारणं वा करणीयम् । कस्यान्यस्य वा वचसि मया स्थातव्यम्
को वापरस्त्वत्समो मे जगति बन्धुः । किं करोमि । यन्न शक्नोमि निवार
यितुमात्मानम् । इयमनेनैव क्षणेन भवता दृष्टा दुष्टावस्था । तद्गत
इदानीमुपदेशकालः । यावत्प्राणिमि तावदस्य कल्पान्तोदितद्वादशदिनकर
किरणातपतीव्रस्य मदनसंतापस्य प्रतिक्रियां क्रियमाणामिच्छामि । पच्यन्त
इव मेऽङ्गानि । उत्क्वथ्यत इव हृदयम् । प्लुष्यत इव दृष्टिः । ज्वलतीव
शरीरम् । अत्र यत्प्राप्तकालं तत्करोतु भवान्'; इत्यभिधाय तूष्णीमभवत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मित्र, पुण्डरोक, यह मुझे भलीभाँति ज्ञात है। केवल यही पूछता हूँ कि तुमने जो यह आरम्भ किया है, वह क्या गुरुओंका बताया हुआ है अथवा धर्मशास्त्रोंमें पढ़ा है; यह धर्मार्जनका उपाय है अथवा तपका कोई प्रकार है; स्वर्ग जानेका मार्ग है अथवा व्रत का रहस्य है; मोक्ष पानेकी युक्ति है अथवा कोई अन्य नियमकी साधना है? आपको तो इस प्रकार सोचना भी उचित नहीं, कहना और देखना तो अलग। अज्ञानीकी भाँति इस पापी कामदेव द्वारा अपनेको उपहासका पात्र बनाये जाते देख नहीं चेतते! निश्चयतः मूर्ख ही कामद्वारा पीड़ित होता है। सज्जनों द्वारा निन्दित, इस प्रकारके निकृष्ट जनों द्वारा संमत विषयोंमें आपको किस सुखकी आशा है? मूर्ख पुण्य मानकर विष-बेलको सींचता है, कमल-नाल समझकर तलवारका आलिंगन करता है, कृष्णागुरु (काकतुंड) के धुएँकी रेख समझकर काले साँपको लिपटा लेता है, रत्न मान जलते अंगारको छू लेता है, कमलनाल समझकर दुष्ट हाथीके दाँतको उखाड़ता है—वह मूर्ख, जो दुःखोंकी परम्परासे व्याप्त विषय-भोगोंको सुखदायक समझता है। किसलिए विषयोंका स्वरूप समझते हुए भी जुगनू की भाँति ज्योति (तत्त्वज्ञान, प्रकाश) से दूर करने योग्य ज्ञानको धारण किये हो कि प्रबल रजःप्रसर (पापकर्मका विस्तार, धूल) से मलिन सोतोंसे समता करनेवाली, उलटे मार्गपर जाती इन्द्रियोंको रोकते नहीं तथा क्षुब्ध मनका नियन्त्रण नहीं करते? यह अनङ्ग कौन है? धीरज धरके इस दुराचारीकी भर्त्सना करो।' ऐसा कहते हुए मेरे वचनों की अवगणना करके, पलक झँपाते ही जिससे अश्रु-प्रवाह हो जाता था, ऐसे नेत्रको मींजकर हथेलीसे मेरा सहारा लेकर (वह) कहने लगा—'सखे, अधिक कहनेसे क्या लाभ? तुम सब प्रकार से स्वस्थ हो। सर्प-विषके वेगके समान कठिन कुसुमधन्वाके इन बाणोंका निशाना नहीं बने हो, अतः दूसरेको सरलतासे उपदेश दे रहे हो। दूसरा कोई—जिसपर इन्द्रियाँ हैं, मन है, जो देखता है, सुनता है और सुनेको समझता है; जो शुभ-अशुभकी विवेचनामें समर्थ है वह—उपदेशके योग्य होता है। मेरा तो यह सब बहुत दूर चला गया है। चित्तवृत्तिनिरोध, ज्ञान, धीरज, अध्यात्मज्ञान—यह सब बात अस्त हो गयी। किसी प्रकार बिना प्रयत्नके ही मेरे प्राण ठहरे हैं। उपदेशका समय दूर गया। धैर्यका अवसर बीत गया। अध्यात्मज्ञानका समय गया। ज्ञान द्वारा मनोवृत्ति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरोधका समय वीत गया। इस समय आपके अतिरिक्त कौन उपदेश दे अथवा उन्टे मार्गपर चलनेसे रोकेगा ? और किसके वचन मैं सुनूँगा ? संसार तुम्हारे समान मेरा वन्धु और कौन है ? क्या करूँ, अपनेको रोक नहीं पा हूँ। इस क्षण ही आपने यह दुरवस्था देख ली। सो अव उपदेशका समय गया जव तक जीता हूँ तव तक प्रलयकालमें उदित वारहों सूर्योंको किरणोंसे उत आतपके समान दुःसह इस काम-सन्तापकी चिकित्सा करना चाहता हूँ। अंग जैसे पकाये जा रहे हैं, हृदयका जैसा काढ़ा किया जा रहा है, नेत्र जल रहे हैं, शरीर जैसे भस्म हो रहा है। अव जो समयोचित हो, वह आप कहें ऐसा कहकर वह चुप हो गया।

३०—एवमुक्तोऽप्यहमेनं प्राबोधयं पुनःपुनः। यदा शास्त्रोपदेशवि सनिदर्शनैः सेतिहासैश्च वचोभिः सानुनयं सोपग्रहं चाभिधीयमानो नाकृरोत्कर्णं तदाहमचिन्तयम्—'अतिभूमिमयं गतो न शक्यते निव यितुम्। इदानीं निरर्थकाः खलूपदेशाः। तत्प्राणपरिरक्षणेऽपि तावद यत्नमाचरामि'। इति कृतमतिरुत्थाय गत्वा तस्मात्सरसः सरसा मृ लिकाः समुद्धृत्य कमलिनीपलाशानि जललवलाञ्छितान्यादाय धूलिकषायपरिमलमनोहराणि च कुमुदकुवलयकमलानि गृहीत्वा तस्मिन्नेव लतागृहशिलातले शयनमस्याकल्पयम्। तत्र च सुखनिषण्ण प्रत्यासन्नवर्तिनां चन्दनविटपादीनां मृदूनि किसलयानि निष्पीड्य स्वभावसुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम्। आचर तलादङ्गचर्चां चारचयम्। अभ्यर्णपादपस्फुटितवल्कलविवरशोर्णेन करसंचुर्णितेन कर्पूररेणुना स्वेदप्रतीकारमकरवम्। उरोनिहितचन्दनद्रवा वल्कलस्य स्वच्छसलिलसीकरनिकरस्राविणा कदलीदलेन व्यजनक्रियाम तिष्ठम्। एवं च मुहुर्मुहुरन्यदन्यन्नलिनदलशयनमुपकल्पयतो मुहुर्मुहुश्चन्द चर्चामारचयतो मुहुर्मुहुश्च स्वेदप्रतिक्रियां कुर्वतः कदलीदलेनानव वीजयतः समुदभून्मे मनसि चिन्ता—'नास्ति खल्वसाध्यं नाम भगव मनोभुवः। कायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो ज क्व च विविधविलासरसराशिर्गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता ? सर्व नहि किंचिदस्य दुर्घटं दुष्करमनायत्तमकर्तव्यं वा जगति। दुरुप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

015,3068,1

देष्वर्थेष्वयमवज्ञया विचरति। नायं केनापि प्रतिकूलयितुं शक्यते। का वा गणना सचेतनेषु, अपगतचेतनान्यपि संघटयितुमलं यद्यस्मै रोचते। तत्कुमुदिन्यपि दिनकरकरानुरागिणी भवति। कमलिन्यपि शशिकरद्वेषमुज्झति। निशापि वासरेण सह मिश्रतामेति। ज्योत्स्नाप्यन्धकारमनुवर्तते। छायापि प्रदीपाभिमुखमवतिष्ठते। तडिदपि जलदे स्थिरतां व्रजति। जरापि यौवनेन संचारिणी भवति। किं वा तस्य दुःसाध्यमपरम्। एवंविधो येनायमगाधगाम्भीर्यसागरस्तृणवल्लघुतामुपनीतः। क्व तत्तपः क्वेयमवस्था? सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता। किमिदानीं कर्तव्यम्। किं शरणम्। को वोपायः। कः सहायः। कः प्रकारः। का युक्तिः। कः समाश्रयः, येनास्यासवः संधार्यन्ते। केन वा कौशलेन कतमया वा युक्त्या कतरेण वा प्रकारेण केन वावष्टम्भेन कया वा प्रज्ञया कतमेन वा समाश्वासनेनायं जीवेत्'? इत्येते चान्ये च मे विषण्णहृदयस्य संकल्पाः प्रादुरासन्। पुनश्चाचिन्तयम्? 'किमनया ध्यातया निष्प्रयोजनया चिन्तया। प्राणास्तावदस्य येन केनचिदुपायेन शुभेनाशुभेन वा रक्षणीयाः। तेषां च तत्समागममेकमपहाय नास्त्यपरः संरक्षणोपायः। बालभावादप्रगल्भतया च तपोविरुद्धमनुचितमुपहासमिवात्मनो मदनव्यतिकरं मन्यमानो नियतमेकोच्छ्वासावशेषजीवितोऽपि नायं तस्याः स्वयमभिगमनेन पूरयति मनोरथम्। अकालान्तरक्षमश्चायमस्य मदनविकारः। सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि रक्षणीयान्मन्यन्ते सुहृदसून्साधवः। तदतिह्रेपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामपतितम्। किं चान्यत्क्रियते। का चान्या गतिः। सर्वथा प्रयामि तस्याः सकाशम्। आवेदयाम्येतामवस्थाम्'। इति चिन्तयित्वा कदाचिदनुचितव्यापारप्रवृत्तं मां विज्ञाय संजातलज्जो निवारयेदित्यनिवेद्यैव तस्मै तत्प्रदेशात्सव्याजमुत्थायागतोऽहम्। तदेयमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदागमनस्य चानुरूपमात्मनो वा समुचितं प्रभवति भवती'; इत्यभिधाय किमियं वक्ष्यतीति मन्मुखासक्तदृष्टिस्तूष्णीमासीत्।

1255

• ऐसा कहनेपर भी मैंने उसे समझाया। जब शास्त्रोपदेशसे निर्मल तथा सोदाहरण ऐतिहासिक वृत्तान्तों से युक्त वचनों द्वारा प्रेमपूर्वक अनुकूलताके साथ

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बार-बार समझाये जाने पर भी उसने कान न दिये, तब मैं सोचने लगा—'यह बहुत दूर पहुँच गया, अब लौटाया नहीं जा सकता। इस समय उपदेश निरर्थक हैं। सो इसके प्राण बचानेका यत्न करता हूँ।' ऐसा निश्चय करके मैं उठा और सरस कमलिनियाँ उखाड़कर तथा जलकणों से युक्त कमलिनीके पत्ते एवं मध्यके परागकी कसैली सुगन्धसे मनोहर श्वेतकमल तथा अन्य फूलोंके फूल लाकर मैंने उस लतामंडपकी शिला पर उसकी शय्या बना दी। वहाँ सुखपूर्वक बैठ जानेपर मैंने निकटवर्ती चन्दनादि वृक्षोंके कोमल पत्ते पीसकर उनके प्रकृति से सुगन्धित तथा हिम-सम शीतल रसको उसके मस्तक पर मला तथा चरणों तक समस्त शरीरमें लेप कर दिया। समीपस्थ वृक्षोंकी फटी-चटकी छालसे झरे कपूरको हाथसे रगड़कर उसका चूर्ण बनाया और उससे उसके पसीनेकी चिकित्सा की। चन्दनके रससे उसका उर-स्थित वल्कल गीला हो गया था—मैंने निरन्तर जलकणोंको टपकाते केलेके पत्तेसे उसका पंखा किया। इस प्रकार बारम्बार नये कमलिनी-पत्रोंकी शय्या रचते, बारम्बार चन्दनका लेप करते, बारम्बार पसीनेको दूर करनेका उपाय करते तथा निरन्तर केलेके पत्तेका पंखा डुलाते मैं सोचने लगा—'भगवान् मनोजके निकट कुछ असाध्य नहीं है। कहाँ वनवासी स्वभावसे मुग्ध हरिणके समान यह पुंडरीक और कहाँ नाना प्रकारके विलास-रसकी भांडार गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता? इस संसारमें कहीं कुछ भी तो इस कामदेवके निकट दुःसाध्य, दुष्कर, अनधीन तथा करणीय नहीं है। कष्टसाध्य अर्थोंमें भी यह बलपूर्वक प्रतिवर्तित होता है। इसे कोई रोक नहीं सकता। सचेतनोंका तो कहना ही क्या, यदि इसको रुचे तो यह अचेतनों (परस्पर विरुद्धों)का योग भी कराने में समर्थ है। कुमुदिनी भी सूर्य-किरणोंसे अनुराग करने लगती है, कमलिनी भी चन्द्रकिरणोंसे द्वेष करना छोड़ देती है, रातभी दिनसे मिल जाती हैं, चांदनी भी अंधकारका अनुगमन करने लगती है, छाया भी दीपकके सम्मुख स्थित हो जाती है, बिजली भी बादल में स्थिर हो जाती है, जरा भी यौवनकी सहचारिणी बन जाती है। उसके निकट और दुष्कर क्या है? जिसने इस प्रकारके अगाध गम्भीरताके सागरको तृणकी भाँति छोटा बना दिया? कहाँ वह तप और कहाँ यह दशा? सब प्रकारसे असाध्य यह आपत्ति आयी है। इस समय क्या करना चाहिए, कौन-सा प्रयत्न करना चाहिए, कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानपर जाना चाहिए, कहाँ त्राण है, क्या उपाय है, क्या विधि है, क्या युक्ति है, कौन सहाय है, जिससे इसके प्राण बचें ? किस चतुरतासे अथवा किस युक्तिसे, किस विधिसे अथवा किस अवलम्बनसे, किस बुद्धिसे अथवा कौनसे आश्वासनसे यह जीवित रहेगा'; मेरे दुःखी मनमें ये तथा अन्य प्रकारके संकल्प-विकल्प उठने लगे। फिर सोचने लगा—'इस निरर्थक चिन्ताके ध्यानसे क्या लाभ ? इसके प्राण जिस किसी शुभ अथवा अशुभ उपायसे बचाने चाहिए। उस (महाश्वेता)के समागमके अतिरिक्त प्राणरक्षाका कोई उपाय नहीं है। बालोचित स्वभाव तथा प्रगल्भता न होनेसे अपने कामवृत्तान्तको तपश्चर्याके विरुद्ध, अनुचित तथा उपहासास्पद मानता हुआ यह निश्चय ही जीवनकी एक साँस शेष रहनेपर भी स्वयं उसके पास जाकर अपने मनोरथको पूर्ण न करेगा। और इसका यह काम-विकार और अधिक समयकी अपेक्षा नहीं रखता। सन्तजन सदा अतिनिन्दित कार्योंसे भी मित्र के प्राणोंकी रक्षा करना ठीक मानते हैं। सो अत्यन्त लज्जाके योग्य और अकरणीय यह कार्य मेरे लिए आवश्यक कर्तव्य बन गया है। और किया भी क्या जाय ? दूसरी गति ही क्या है ? सब प्रकारसे उसके पास ही जाता हूँ और यह अवस्था बताता हूँ'; यह सोचकर तथा मुझे अनुचित व्यापारमें लगा जान लज्जित हो कहीं यह रोक न दे; इससे उसे बिना बताये ही उस स्थानसे बहानेसे उठकर मैं आ गया हूँ। सो ऐसी अवस्थामें जो समयोचित हो, ऐसे प्रेमके अनुकूल हो, हमारे आनेके अनुरूप हो तथा आपके लिए जो समुचित हो, वह आप ही कर सकती हैं'; इतना कहकर, 'यह क्या कहेगी', इसलिए मेरे मुखकी ओर टकटकी लगाये वह चुपचाप बैठ गया।

३१—अहं तु तदाकर्ण्य सुखामृतमये ह्रद इव निमग्ना, रतिरसमय-मुदधिमिवावतीर्णा, सर्वानन्दानामुपरि वर्तमाना, सर्वमनोरथानामग्रमि-वाधिरूढा, सर्वोत्सवानामतिभूमिमिवाधिशयाना, तत्कालोपजातया लज्जया किञ्चिदवनम्यमानवदनत्वादस्पृष्टकपोलोदरैः, ग्रथितैरिवोपर्युपरि-पतनानुबन्धदर्शितमालाक्रमैः अप्राप्तपक्ष्मसंश्लेषतयोपजातप्रथिमभरैरमलैरा-नन्दबाष्पजलबिन्दुभिः स्रवद्भिरावेद्यमानप्रहर्षप्रसङ्गा तत्क्षणमचिन्तयम्—'दिष्ट्या तावदयमनङ्गो मामिव तमप्यनुबध्नाति। यत्सत्यमेतेन मे संताप-यताप्यंशेन दर्शितानुकूलता। यदि च सत्यमेव तस्येदृशी दशा वर्तते ततः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किमिव नोपकृतमनेन । किं वा नोपपादितम् । को वानेनापरः समानो बं
कथं वा कपिञ्जलस्य स्वप्नोऽपि वितथा भारती प्रशान्ताकृतेरस्माद्वदना
ष्क्रामति । इत्थंभूते किं मयापि प्रतिपत्तव्यम् । तस्य वा पुरः कि
भिधातव्यम्' । इत्येवं विचारयन्त्या एव प्रविश्य ससंभ्रमा प्रतीहा
मामकथयत्—'भर्तृदारिके, त्वमस्वस्थशरीरेति परिजनादुपलभ्य महादे
प्राप्ता' इति । तच्च श्रुत्वा कपिञ्जलो महाजनसंमर्दभीरुः सत्वरमुत्
'राजपुत्रि, महानयमुपस्थितः कालातिपातः भगवांश्च भुवनत्रयचूडाम
रस्तमुपगच्छति दिवसकरः, तद्गच्छामि, सर्वथाभिमतसुहृत्प्राणर
दक्षिणार्थमयमुपरचितोऽञ्जलिः, एष मे परमो विभवः इत्यभिधाय प्र
वचनकालमप्रतीक्ष्यैव पुरोयायिनाम्बायाः प्रविशता कनकवेत्रलताक
प्रतीहारीजनेन कञ्चुकिलोकेन गृहीतताम्बूलकुसुमपटवासङ्गारागेण चा
रव्यग्रपाणिना कुब्जकिरातबधिरवामनवर्षधरकलमूकानुगतेन परिज
सर्वतः संरुद्धे द्वारदेशे कथमप्यवाप्तनिर्गमः प्रययौ । अम्बा तु मत्सम
मागत्य सुचिरं स्थित्वा स्वभवनमयासीत् । तया तु तत्रागत्य किं
किमभिहितं किमाचेष्टितमिति शून्यहृदया सर्वं नालक्षयम् ।

मैं तो यह सुनकर सुखरूपी सुधासे पूर्ण सरोवरमें डूबी जैसी, शृङ्गारर
समुद्रके मध्य प्रविष्ट जैसी, मानो सब आनन्दोंके ऊपर स्थित, मानो सब म
रथोंके अग्रभागपर चढ़ी, सब उत्सवोंकी अधित्यकामें सोई जैसी, स्वभावोत
लज्जाके कारण मुख कुछ झुक जानेसे कपोल-गर्तोंको न छूते हुए, ऊपर
गिरनेके क्रमके कारण गूँथी हुई माला जैसे लगते, पलकोंका स्पर्श न प्राप्त हो
मोटे-मोटे, झरते आनन्दके आँसुओंसे अपने हर्षका प्रसार निवेदित करती
उस क्षण सोचने लगी—'भाग्यसे यह कामदेव मेरे समान ही उसे भी पीड़ित
रहा है, सो सत्य ही मुझे पीड़ित करते हुए इसने एक प्रकारसे मुझपर अनु
प्रकट की है । यदि सत्य ही उसकी ऐसी दशा है तो इसने मेरा क्या उप
नहीं किया अथवा क्या सिद्ध नहीं किया ? इसके समान दूसरा बन्धु कौन है
अथवा शान्त आकारवाले इस कपिञ्जलके मुखसे झूठे वचन स्वप्नमें भी
निकल सकते । ऐसा हो जानेपर मुझे भी क्या अंगीकार करना चाहिए औ
उसके सम्मुख क्या कहना चाहिए ?' मैं ऐसा सोच ही रही थी कि मेरी प्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हारीने वेगसे प्रवेशकर मुझसे कहा—'स्वामिपुत्री, परिजनोंसे आपकी अस्वस्थता जानकर महादेवी पधारी हैं।' यह सुनकर बढ़ती भीड़का सामना करनेमें भीरु कपिञ्जल जल्दीसे उठकर, 'राजपुत्रि, अब बहुत विलम्ब हो गया। त्रिभुवनके चूड़ामणि भगवान् दिनकर अस्त हो चले। सो जाता हूँ। सब प्रकारसे प्रिय मित्रकी प्राण-रक्षारूपी दक्षिणा प्राप्त करनेके लिए ये हाथ जुड़े हुए हैं। यही मेरा सबसे बड़ा ऐश्वर्य है'; ऐसा कहकर उत्तरकी प्रतीक्षा बिना किये ही, माताके आगे-आगे चलनेवाले हाथमें सोनेकी छड़ी पकड़े प्रतीहारीजन; पान, फूल, पटवास तथा अंगराग लिये कंचुकिजन तथा चामर लिये होनेसे व्याकुल हाथों-वाले कुबड़े, दुर्बलशरीरी, बहिरे, बौने, जनखे तथा गूँगे-बहिरे परिजन द्वारा द्वारदेशके सर्वथा रुक जानेपर भी किसी प्रकार मार्ग पाकर चला गया। माता भी मेरे पास आकर और बहुत देर तक बैठकर अपने निवासको चली गयी। माँने यहाँ आकर क्या किया, क्या कहा, कैसा व्यवहार किया, शून्यहृदया मैं कुछ भी न लख सकी।

३२ गतायां च तस्यामस्तमुपगते भगवति हारीतहरितवाजिनि सरोजिनीजीवितेश्वरे चक्रवाकसुहृदि सवितरि, लोहितायमाने पश्चिमाशामुखे, हरितायमानेषु कमलवनेषु नीलायमाने पूर्वदिग्भागे, पाताल-पङ्ककलुषेण महाप्रलयजलधिपयःपूरेणेव तिमिरेणावष्टभ्यमाने जीवलोके, किंकर्तव्यतामूढा तामेव तरलिकापृच्छम्—'अयि तरलिके, कथं न पश्यसि दृढमाकुलं मे हृदयमप्रतिपत्तिविह्वलानि चेन्द्रियाणि। न स्वयमण्वपि कर्तव्यमलमस्मि ज्ञातुम्। उपदिशतु मे भवती यदत्र सांप्रतम्। अयमेवं त्वत्समक्षमेवाभिधाय गतः कपिञ्जलः। यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्, उत्सृज्य धैर्यम्, अवमुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम्, अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लङ्घ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम्, अङ्गीकृत्यायशः, रागान्धवृत्तिः, अननुज्ञाता पित्रा, अननुमोदिता मात्रा, स्वयमुपगम्य ग्राहयामि पाणिम्, एवं गुरुजनातिक्रमादधर्मो महान्। अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमङ्गीकरोमि, एवमपि प्रथमं तावत्स्वयमागतस्य प्रथमप्रणयिनस्तत्रभवतः कपिञ्जलस्य प्रणयप्रसरभङ्गः। पुनरपरं यदि कदाचित्तस्य जनस्य मत्कृताशाभङ्गात्प्राणविपत्तिरुपजायते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदपि मुनिजनवधजनितं महदेनो भवेत्'। इत्येवमुच्चारयन्त्यामेव मयि सन्नचन्द्रोदयजन्मना विरलविरलेनालोकेन वसन्तवनराजिरिव कुसुमरज धूसरतां वासवी दिगयासीत् ।

माँके चले जानेपर और हारिलके समान हरित अश्वोंवाले, कमलि प्राणेश्वर, चक्रवाकके मित्र भगवान् सूर्यके अस्त हो जाने, पश्चिम दिशाके पड़ने, कमल-वनोंके हरित हो जाने, पूर्वदिशाके नीले पड़ जाने तथा पाता कीचड़से मलिन महाप्रलयकालीन समुद्रके जल-प्रवाहसे समानता करने अन्धकारसे संसारके आवृत हो जानेपर किंकर्तव्यविमूढ़ मैंने उसी तरलि पूछा—'अरी तरलिके, क्या मेरे अत्यन्त व्याकुल हृदयको तू नहीं देखत अनिश्चयके कारण इन्द्रियाँ व्याकुल हैं। इस विषयमें क्या करना है, यह भी समझ नहीं पड़ता। अब तुम्हीं बताओ क्योंकि तुम्हारे सामने ही इस प्र अभी कहकर यह कपिञ्जल गया है। यदि ओछी कन्याओंके समान लज्ज धैर्य और विनयको त्याग, लोकनिन्दाकी चिन्ता न कर, सदाचारका अतिक्र कर, शीलका उल्लंघनकर, कुलकी अवगणना कर, कामान्ध बन अपयश स्वी कर, पितासे आज्ञा तथा मातासे अनुमोदन बिना लिये स्वयं जाकर उसका ह गहती हूँ तो इस प्रकार गुरुजनोंका अतिक्रमण करनेसे महान् अधर्म होता है। यदि धर्मके अनुरोधसे अन्य पक्ष ग्रहण कर मृत्यु स्वीकारती हूँ तो पहिले प्रथम स्नेही श्रीमान् कपिञ्जलके प्रेमका प्रसार टूटता है और फिर कहीं मेरे द्वा आशा-भङ्ग किये जानेके कारण उस (पुण्डरीक) के प्राणोंपर विपत्ति आ जाती तो मुनिजनकी हत्यासे उत्पन्न बड़ा पाप होता है।' मैं ऐसा कह ही रही थी चन्द्रोदयके जन्मके कारण थोड़े-थोड़े प्रकाशसे पूर्व दिशा पुष्परागसे वसन्तका वनपंक्तिके समान धूसर हो उठी।

३३—ततः शशिकेसरिकरविदार्यमाणतमःकरिकुम्भसंभवेन मुक्ताफ क्षोदेनेव धवलतामुपनीयमानम्, उदयगिरिसिद्धसुन्दरीकुचच्युतेन चन्द चूर्णराशिनेव पाण्डुरीक्रियमाणम्, चलितजलधिजलकल्लोलानिलोल्लासि वेलापुलिनसिकतोद्गमेनेव पाण्डुतामापाद्यमानं पश्चिमेतरदिन्दुधा दिगन्तरमदृश्यत। शनैः शनैश्चन्द्रदर्शनान्मन्दमन्दस्मितायाः दशनप्र ज्योत्स्ना निष्पतन्ती निशाया मुखशोभामकरोत्। तदनु रसातलादवनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वदार्योद्गच्छता शेषफणमण्डलेनेव रजनीकरबिम्बेनाराजत रजनी। क्रमेण च सकलजीवलोकानन्दकेन कामिनीजनवल्लभेन किंचिदुन्मुक्तबालभावेन मकरध्वजबन्धुभूतेन समुपारूढरागेण सुरतोत्सवोपभोगैकयोग्येनामृतमयेन यौवनेनेवारोहता शशिना रमणीयतामनीयत यामिनी।

अथ तं प्रत्यासन्नसमुद्रविद्रुमप्रभापाटलितमिव, उदयगिरिसिंहकरतलाहतहरिणशोणितशोणीकृतमिव, रतिकलहकुपितरोहिणीचरणालक्तकरसलाञ्छितमिव, अभिनवोदयरागलोहितं रजनिकरमुदितं विलोक्य, अन्तर्ज्वलितमदनानलाप्यन्धकारितहृदया, तरलिकोत्सङ्गविधृतशरीरापि मन्मथहस्तवर्तिनी, चन्द्रगतनयनापि मृत्युमालोकयन्ती तत्क्षणमचिन्तयम्-'एकत्र खलु मदनमधुमासमलयमारुतप्रभृतयः समस्ताः। एकत्र चायं पापकारी चन्द्रहतको न शक्यते सोढुम्। इदमतिदुर्विषहमदनवेदनातुरं च मे हृदयम्। अस्य चोद्गमनमिदं सदाहज्वरग्रस्तस्याङ्गारवर्षः, शीतार्तस्य तुषारपातः, विषस्फोटमूर्च्छितस्य कृष्णसर्पदंशः'। इत्येवं विचिन्तयन्तीमिव चन्द्रोदयोपनीता कमलवनम्लानिनिद्रेव मूर्च्छा मां निमीलितलोचनामकार्षीत्। अचिरेण च संभ्रान्ततरलिकोपनीताभिश्चन्दनचर्चाभिस्तालवृन्तानिलैश्चोपलब्धसंज्ञा तामेवाकुलाकुलां मूर्तेनेवाधिष्ठितां विषादेन मल्ललाटविधृतस्रवच्चन्द्रकान्तमणिशलाकामविच्छिन्नबाष्पजलधारान्धकारितमुखीं रुदतीं तरलिकामपश्यम्। उन्मीलितलोचनां च मां सा कृतपादप्रणामा चन्दन-पङ्कार्द्रेण करयुगलेन बद्धाञ्जलिरवादीत्—'भर्तृदारिके किं लज्जया गुरुजनापेक्षया वा। प्रसीद प्रेषय माम्। आनयामि ते हृदयदयितं जनम्। उत्तिष्ठ स्वयं वा तत्र गम्यताम्। अतः परमसमर्थासि सोढुमिमं प्रबलचन्द्रोदयविजृम्भमाणोत्कलिकाशतमुदधिमिव मकरचिह्नम्'। इत्येवंवादिनी तामवोचम्—'उन्मत्ते किं मन्मथेन। नन्वयं सर्वविकल्पानपहरन्, सर्वोपायदर्शनान्युत्सारयन्, सर्वानन्तरायानन्तरयन्, सर्वसंदेहानपनयन्, सर्वशङ्कास्तिरस्कुर्वन्, लज्जामुन्मूलयन्, स्वयमभिगमनलाघवदोषमावृण्वन्, कालातिपातं परिहरन्नागत एव मृत्योस्तस्यैव वा सकाशं नेता कुमुदबान्धवः। तदुत्तिष्ठ यथाकथंचिदनुगमनेन जीविता संभावयामि हृदयदयितमायासकारिणं जनम्।' इत्यभिदधाना मदनमूर्च्छाखेदविह्वलैरङ्गैः कथं-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिदवलम्ब्य तामेवोदतिष्ठम् । उच्चलितायाश्च मे दुर्निमित्तनिवेदकमस्पन्दत दक्षिणं लोचनम् । उपजातशङ्का चाचिन्तयम् 'इदमपरं किमप्युपदिष्टं दैवेन' इति ।

तदनन्तर मानो चन्द्रमारूपी सिंह द्वारा विदारित होते अन्धकाररूपी हाथीके कुम्भस्थलसे झरे मोतियोंके द्वारा, उदयाचलवासिनी गन्धर्वसुन्दरियोंके मण्डलसे झरे चन्दनचूर्ण द्वारा तथा मानो कम्पित होते समुद्र-जलकी लहरसे पवन द्वारा उछाले गये जलसे रिक्त तटपर शेष वालू द्वारा शुभ्र होती हुई-सी दिशा दीखीं । धीरे-धीरे चन्द्र-दर्शनके कारण मन्द-मन्द मुसकाती रात्रिके दाँतोंकी प्रभाके समान फैलती चाँदनीने रातके मुखको सुशोभित कर दिया । तत्पश्चात् धरतीको फाड़कर पातालसे प्रकट होते शेषनागके फनोंकी समानता करते चन्द्र-बिम्बसे रात्रि सुशोभित हो उठी । धीरे-धीरे समस्त मानव लोकको आनन्द प्रदान करनेवाले, कामिनियोंके प्रिय, वालभावका थोड़ा-सा परित्याग किये, कामदेवके बन्धुस्वरूप, राग (लाली, अनुरक्ति) को प्राप्त, सुरतोपभोगके निमित्त सर्वथा उचित, अमृतपूर्ण यौवनसे समानता करनेवाले गगनमण्डलमें उठते चन्द्रमासे रात्रि रमणीय हो गयी । तब मानो समीपवर्ती समुद्रके मूँगोंकी कान्तिसे, मतवाले उदयाचलके सिंहकी थपेड़ोंसे ताडित हरिणके रुधिरसे तथा काम-कलहमें कुपित (स्वप्रिया) रोहिणीके चरणोंमें लगे आलतेसे जैसे लाल बने उस चन्द्रमाको उदित हुआ देख अन्तरमें मदनाग्नि जलनेपर भी अन्धकारपूर्ण हृदय लिये, तरलिकाकी गोदमें शरीर रखे होनेपर भी कामके हाथमें पड़ी तथा चन्द्रमाकी ओर नेत्र लगाये भी मृत्युको देखती हुई मैं उस समय सोचने लगी—'एक ओर वसन्त, मलयानिल आदि सब, दूसरी ओर यह पापी-हत्यारा चन्द्रमा—सहा नहीं जाता। मेरा हृदय यह बड़े दुःखसे सह रहा है। और यह चन्द्रोदय ज्वर-तापसे पीड़ित जनके निमित्त अङ्गारोंकी वर्षा, शीतसे पीड़ितके लिए हिमपात, विषसे बेसुधके लिए कृष्णसर्पका दंश है', इस प्रकार सोचते-सोचते ही चन्द्रोदयके द्वारा लायी गयी कमलवनके संकोचकी निन्द्रासे समता करनेवाली मूर्च्छाने मेरे नेत्र बन्द कर दिये । कुछ देरमें ही घबरायी हुई तरलिका द्वारा किये गये चन्दनलेप तथा ताड़के पंखेकी हवासे सुधि प्राप्त कर मैंने अत्यन्त व्याकुल, मूर्तिमान् विशादसे घिरी, मस्तकपर जल रिसाती चन्द्रकान्तमणिकी शलाका रखे और निरन्तर बहते आँसुओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्यारसे जिसका मुख मलिन हो गया था, ऐसी रोती हुई तरलिकाको देखा। मेरी आँखें खुलनेपर मेरे चरणोंमें प्रणाम करके चन्दन-लेपसे गीले दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर वह बोली—'स्वामीपुत्री, लज्जा अथवा गुरुजनोंकी अपेक्षासे क्या ? प्रसन्न होइए। मुझे भेजिए। आपके प्राणप्यारेको ले आती हूँ। उठिए। अथवा वहाँ स्वयं जाइए। प्रबल चन्द्रोदयसे सौगुनी उत्कंठा-वृद्धिके कारण समुद्रसे समता करते इस मकरध्वजको आप इससे आगे सहनेमें असमर्थ हैं'। ऐसा कहती हुई उससे मैं बोली—'अरी पगली, कामदेवसे क्या ? सब सोचे-विचारेको मेटता, सब उपायोंके दर्शनोंको दूर करता, विघ्नोंका विघ्न बनता, सब सन्देहोंको हटाता, सब शङ्काओंका तिरस्कार करता, लज्जाका उन्मूलन करता, स्वयं जानेके आक्षेपनको ढकता और समयके विलम्बको छुड़ाता, मृत्यु अथवा उसके पुण्डरीक) के पास ले जानेवाला कुमुदोंका बन्धु यह चन्द्र आ ही गया। लो उठ। अनुगमन करनेसे जैसे-तैसे यदि जीवित बची तो उस दुःखदायी प्राणप्यारेको प्रसन्न करूँगी'; ऐसा कहती हुई मदन-मूर्च्छाके कारण आये पसीनेसे व्याकुल अंगों द्वारा किसी प्रकार उसका ही सहारा लेकर उठ खड़ी हुई। उठ चलते ही मेरे दुर्भाग्यकी सूचक दाहिनी आँख फड़क उठी। शङ्का उत्पन्न होनेसे सोचने लगी—'दैवने और यह क्या उपस्थित किया ?'

३४—अथ नातिदूरोद्गतेन त्रिभुवनप्रासादमहाप्रणालानुकारिणा सुधासलिलप्लवानिव वहता चन्दनरसनिर्झरनिकरानिव क्षरता श्वेतगङ्गा-प्रवाहसहस्राणीव वमतामृतसागरपूरानिवोद्गिरता चन्द्रमण्डलेन प्लाव्य-माने ज्योत्स्नया भुवनान्तराले, श्वेतद्वीपनिवासमिव सोमलोकदर्शन-सुखमिवानुभवति जने, महावराहदंष्ट्रामण्डलानभेन शशिना क्षीरसागरो-दरादिवोद्ध्रियमाणे महीमण्डले, प्रतिभवनमङ्गनाजनेन विकचकुमुद-गन्धैश्चन्दनोदकैरुपह्रियमाणेषु, चन्द्रोदयार्घेषु, कामिनीप्रहितसुरतदूतीसह-स्रसंकुलेषु राजमार्गेषु, नीलांशुकरचिरतावगुण्ठनासु चन्द्रालोकभयचकितासु कमलवनलक्ष्मीष्विव नीलोत्पलप्रभापिहितास्वितस्ततः पलायमानास्वभि-सारिकासु, प्रतिकुमुदमाबद्धमधुकरमण्डलासु प्रबुध्यमानासु भवनदीर्घिका-कुमुदिनीषु, स्फुटितकुमुदवनबहलधूलिधवलितोदरे निशानदीपुलिनाय-मानेऽन्तरिक्षे, चन्द्रोदयानन्दनिर्भरे महोदधाविव रतिरसमूय इवोत्सवमय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इव विलासमय इव प्रीतिमय इव जीवलोके, शशिमणिप्रणालनिर्झरप्र
मुखरमयूररवरम्ये प्रदोषसमये, गृहीतविविधकुसुमताम्बूलाङ्गरागपटवा
चूर्णया तरलिकयानुगम्यमाना तेनैव मूर्च्छानिहितेन किंचिदाश्यानच
ललाटिकालग्नधूसराकुलालकेन चन्दनरसचर्चाङ्गरागवेषेणार्द्रार्द्रेण तथै
तया कण्ठस्थितयाक्षमालया श्रवणशिखरचुम्बिन्या च पारिजातम
पद्मरागरत्नरश्मिनिर्मितेनेव रक्तांशुकेन कृतशिरोऽवगुण्ठना केन
दात्मीयेनापि परिजनेनानुपलक्ष्यमाणा तस्मात्प्रासादशिखरादवातरम्।

इसके उपरान्त जैसे त्रिभुवनरूपी महलसे जलका निकास करनेवाले परना
समता रखते, जैसे अमृतरूपी जल-प्रवाहको धारण करते, जैसे चन्दन-
झरनोंको झारते, जैसे अमृत-समुद्रके प्रवाह तथा शुभ्र गंगाके सहस्रों स्रोत
उड़ेलते चन्द्र-मंडलके द्वारा समस्त भुवनके चाँदनीसे भर जानेपर, मनु
श्वेतद्वीपमें निवासके तुल्य चन्द्रलोकके दर्शन-सुखका अनुभव करनेपर,
वराहके दंष्ट्रमण्डलके तुल्य चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी-मण्डलके मानो क्षीर-समुद्रसे
किये जानेपर, प्रत्येक भवनमें खिले कुमुदोंकी सुगन्धसे युक्त चन्दन-जलसे
द्वारा चन्द्रोदयका अर्घ दिये जानेपर, राजमार्गोंपर कामिनियों द्वारा भेजी
सुरत-दूतियोंकी भीड़ हो जानेपर, नील कमलकी कान्तिसे मण्डित कमल-व
लक्ष्मियों-सी लगती नील वस्त्रका घूँघट मारे अभिसारिकाओंके चाँदनीके
चकपकाकर इधर-उधर भागनेपर, जिनके प्रत्येक कुमुदपर भौंरे बैठे हुए हैं,
भवनके जलाशयोंकी कुमुदिनियोंके खिल जानेपर, खिले कुमुदवनकी प्रचुर पर
मध्य भाग शुभ्र हो जानेके कारण क्षितिजके रात्रिरूपी नदीके तट जैसे
जानेपर, चन्द्रोदय-जनित अतिशय आनन्दमें मग्न प्राणियोंके जैसे महास
मग्न, शृंगार रसमय, उत्सवमय, लीलामय तथा प्रेममय हो जानेपर, चन्द्रका
मणिसे बने जल-मार्गोंके मेघगर्जनानुकारी शब्द द्वारा प्राप्त आनन्दके
कूकते मयूरोंसे निशामुखके रमणीय बन जानेपर, नाना प्रकारके फूल,
अङ्गराग तथा पटवास-चूर्ण साथ लिये तरलिकासे अनुगमित होती, कुछ
चन्दन-तिलकमें लगकर धूसर बनीं अलकें बिखराये, उस बेसुधी के समय
चन्दनलेप तथा अङ्गारके कारण गीला वेष बनाये और वैसे ही उस जपमाल
कण्ठमें धारे तथा पारिजात-मञ्जरीको कानकी लौरमें लटकाये, जैसे पद्मरागम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किरणोंसे बना हो, ऐसे लाल वस्त्रका घूँघट लगाये, किसी आत्मीयपरिजन द्वारा भी न देखी जाती हुई मैं उस महलकी अटारीसे उतरी।

३५—अवतीर्य च पारिजातकुसुममञ्जरीपरिमलाकृष्टेन रिक्तीकृतोपवनेन कुमुदवनान्यपहाय धावता मधुकरजालेन नीलपटावगुण्ठनविभ्रममिव संपादयतानुबध्यमाना प्रमदवनपक्षद्वारेण निर्गत्य तत्समीपमुदचलम्। प्रयान्ती च तरलिकाद्वितीयमपरिजनमात्मानमवलोक्याचिन्तयम्—'प्रियतमाभिसरणप्रवृत्तस्य जनस्य किमिव कृत्यं बाह्येन परिजनेन। नन्वेत एव परिजनलीलामुपदर्शयन्ति। तथा हि। समारोपितशरासनासक्तसायकोऽनुसरति कुसुमायुधः। दूरप्रसारितकरः कर्षति शशी। प्रस्खलनभयात्पदे पदेऽवलम्बते रागः। लज्जां पृष्ठतः कृत्वा पुरः सहेन्द्रियैर्धावति हृदयम्। निश्चयमारोप्य नयत्युत्कण्ठा' इति। प्रकाशं चावदम्—'अयि तरलिके अपि नाम मामिवायमिन्दुहतकस्तमपि किरणकचग्रहाकृष्टमभिमुखमानयेत्'। इत्येवंवादिनीं च मां सा विहस्याब्रवीत्—'भर्तृदारिके, मुग्धासि। किमस्य तेन जनेन। अयमात्मनैव तावन्मदनातुर इव भर्तृदारिकायां तास्ताश्चेष्टाः करोति। तथा हि। प्रतिबिम्बच्छलेन स्वेदसलिलकणिकाचितं चुम्बति कपोलयुगलम्। लावण्यवति पयोधरभारे निपतति प्रस्फुरितकरः। स्पृशति रशनामणीन्। निर्मलनखलग्नमूर्तिः पादयोः पतति। किं चास्य मदनातुरस्येव वपुस्तापाच्छुष्कचन्दनानुलेपपाण्डुतामुद्वहति। मृणालवलयधवलान्करान्धत्ते। प्रतिमाव्याजेन स्फटिकमणिकुट्टिमेषु केतकीगर्भकेसरधूलिधूसरपादः कुमुदसरांस्यवगाहते। सलिलसीकरार्द्रांश्शशिमणीन्करैरामृशति। द्वेष्टि विघटितचक्रवाकमिथुनानि कमलवनानि'। एतैश्चान्यैश्च तत्कालोचितैरालापैस्तया सह तमुद्देशमभ्युपागमम्।

तत्र च मार्गलताकुसुमरजोधूसरं चरणयुगलं कैलासतटाच्चन्द्रोदयप्रसृतचन्द्रकान्तमणिप्रस्रवणे प्रक्षालयन्ती यस्मिन्प्रदेशे स आस्ते तस्मिन्नेव चास्य सरसः पश्चिमे तटे पुरुषस्येव रुदितध्वनिं विप्रकर्षान्नातिव्यक्तमुपालक्षयम्। दक्षिणेक्षणस्फुरणेन च प्रथममेव मनस्याहितशङ्का तेन सुतरामवदीर्णहृदयेव किमप्यनिष्टमन्तः कथयतेव विषण्णेनान्तरात्मना 'तरलिके किमिदम्' इति सभयमभिदधाना वेपमानगात्रयष्टिस्तदभिमुखमतित्वरितमगच्छम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उतरकर पारिजातपुष्पकी मञ्जरीकी सुगन्धसे आकृष्ट हो उपक रीताकर तथा कुमुदवनोंको छोड़कर उड़ भागे, नील वस्त्रके घूँघटका जैसा बनाते मधुकरोंके जालसे रोकी जाती प्रमदवनके पक्षद्वारसे निक मैं उसके समीप चल पड़ी। जाते हुए तरलिकाके अतिरिक्त किसी भी परि अपने साथ न देख सोचने लगी—प्रियतमके निकट जाते जनको परिजनसे क्या काम? सोचती हूँ कि ये ही परिजनका कार्य करने लगते उदाहरणार्थ, प्रत्यञ्चा खिंचे धनुषपर बाण साधे कामदेव अनुसरण कर हैं। दूरतक फैलायी किरणरूपी हाथों द्वारा चन्द्रमा जैसे मुझे हाथ पकड़ खींचे लिये जा रहा है। फिसलनेके डरसे पग-पगपर अनुराग सहारा दे हैं। लज्जाको पीछे कर मन इन्द्रियोंके साथ आगे-आगे भाग रहा निश्चयपर चढ़ाकर उत्कण्ठा लिये जा रही है।' फिर प्रकट बोली—' तरलिका, कहीं यह हत्यारा चन्द्रमा मेरे समान उसे भी किरण-करों द्वारा पकड़कर खींच सम्मुख न ले आये'; ऐसा कहती हुई मुझसे वह हं बोली—'स्वामिपुत्री, तुम भोली हो। उसका उस व्यक्तिसे क्या सम्बन्ध? तो स्वयं ही कामपीड़ित जैसा हो स्वामिपुत्री (आप) के साथ वैसी चेष्टाएँ कर रहा है। जैसे कि प्रतिच्छायाके छलसे पसीनेकी बूँदोसे भरे कपोलोंको चूम रहा है। लावण्यमय पयोधरभारपर काँपते हाथ गिर रहा करधनीकी मणियोंको छू रहा है। निर्मल नखों में प्रतिबिम्बित होती मूर्तिके पैरों पड़ रहा है। और क्या, कामातुर जैसे इसका शरीर तापसे सूखे चन्दन समान सफेद पड़ रहा है। मृणाल-कत्तणके तुल्य श्वेत करोंको धारे है। प्रतिबि व्याजसे स्फटिकमणिके कुट्टिमों (फर्श) पर गिर रहा है। केतकीकी गर्भ-केस परागके समान धूसर पैर लिये कुमुद-सरोंमें स्नान कर रहा। जल-कणोंसे चन्द्रकान्तमणियोंको करोंसे छू रहा है। जिनसे चक्रवाकका जोड़ा दूर हो गया ऐसे कमल-वनोंसे द्वेष कर रहा है।' ऐसी तथा उस कालके अनुरूप दूसरी करती मैं उसके साथ उस स्थलपर पहुँच गयी। वहाँ मार्गमें लताओंके फूल रज लग जानेसे धूसर हुए दोनों पैरोंको चन्द्रोदयके कारण कैलाश पर्वतसे चन्द्रकान्तमणिओंके निर्झरमें धोती हुई मैंने जिस ओर वह था, उस प्रदेश इस सरोवरके पश्चिमी किनारे—दूर होनेसे जो अधिक स्पष्ट नहीं था, ऐसा पु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोनेका शब्द सुना। दाहिनी आँख फड़कनेसे पहले ही मन आशङ्कित होनेके कारण उस रोनेसे जैसे फटा हृदय लिये, किसी अनिष्टको मन में बोलती जैसी, दु:खी अन्तरात्मासे, 'तरलिके, यह क्या है', यह भयपूर्वक कहती, जिसका शरीर काँप रहा है. ऐसी मैं जल्दी-जल्दी उस ओर गयी।

३६—अथ निशीथप्रभावाद्दूरादेव विभाव्यमानस्वरम्, उन्मुक्तार्तनादम्, 'हा हतोऽस्मि, हा दग्धोऽस्मि, हा वञ्चितोऽस्मि, हा किमिदमापतितम्, किं वृत्तम्, उत्सन्नोऽस्मि, दुरात्मन्मदनपिशाच पाप निर्घृण किमिदमकृत्यमनुष्ठितम्, आः पापे दुष्कृतकारिणि दुर्विनीते महाश्वेते किमनेन तेऽपकृतम्, आः पा। दुश्चरित चन्द्रचाण्डाल कृतार्थोऽसीदानीम्, अपगतदाक्षिण्य दक्षिणानिलहतक पूर्णास्ते मनोरथाः कृतं कर्तव्यं वहेदानीं यथेष्टम्, हा भगवञ्छ्वेतकेतो पुत्रवत्सल न वेत्सि मुषितमात्मानम्, हा धर्म निष्परिग्रहोऽसि, हा तपो निराश्रयमसि, हा सरस्वति विधवासि, हा सत्यमनाथमसि, हा सुरलोक शून्योऽसि, सखे प्रतिपालय माम्, अहमपि भवन्तमनुयास्यामि, न शक्नोमि भवता विना क्षणमप्यवस्थातुमेकाकी, कथमपरिचित इवादृष्टपूर्वक इवाद्य मामेपकद उत्सृज्य प्रयासि, कुतस्तवेयमतिनिष्ठुरता। कथय त्वदृते क्व गच्छामि कं याचे कं शरणमुपैमि, अन्धोऽस्मि संवृत्तः, शून्या मे दिशो जाताः, निरर्थकं जीवितमप्रयोजनं तपो निःसुखाश्च लोकाः, केन सह परिभ्रमामि, कमालपामि, उत्तिष्ठ देहि मे प्रतिवचनम्, क्व तन्ममोपरि सुहृत्प्रेम, क्व सा स्मितपूर्वाभिभाषिता च' इत्येतानि चान्यानि च विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्।

इसके उपरान्त 'हाय मारा गया। हाय जल गया। हाय ठगा गया। हाय यह क्या आ पड़ा? क्या हुआ? जड़ से उखड़ गया। दुष्टात्मा काम-पिशाच, पापी, निर्दय, तूने क्या यह अकृत्य कर डाला? आः पापिनी, दुष्कर्मकारिणी, दुर्विनीत महाश्वेते, तेरा इसने क्या अपकार किया था? आः पापी, दुश्चरित्र चाण्डाल चन्द्र, तू कृतार्थ है? अनुकूलतासे रहित दक्षिण पवन, अब तेरे मनोरथ पूरे हुए? जो करना था कर डाला? अब इच्छानुसार बह। हा पुत्रपर प्रेम रखनेवाले भगवन् श्वेतकेतु, अपनेको लुटा नहीं जानते? धर्म, अब तुम्हारी स्वीकृति समाप्त हुई। तप, अब तुम आश्रयहीन हो। सरस्वती, तुम विधवा हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्य, तुम अनाथ हो। स्वर्ग, तुम शून्य हो। मित्र, मेरा प्रतिपालन करो। मैं तुम्हारे पीछे जाऊँगा। तुम्हारे बिना अकेला एक क्षण भी नहीं रह सकता। अपरिचितकी भाँति, पहिले न देखे हुए के समान आज मुझे सहसा छोड़ जा रहे हो? तुममें यह निष्ठुरता कहाँ से आयी? कहो, तुम्हारे बिना जाऊँ। किससे याचना करूँ? किसकी शरण जाऊँ? अन्धा हो गया हूँ। मेरे दिशाएँ सूनी हो गयी। जीवन निरर्थक है, तप निष्प्रयोजन है, संसार सुख है। किसके साथ घूमूँ? किससे बात करूँ? तुम उठो। मेरे वचनका उत्तर मुझपर तुम्हारा मित्र-प्रेम कहाँ गया और कहाँ गयी वह मुस्कानपूर्ण बातचीत?'—और ऐसे ही तथा दूसरे प्रकारसे विलाप करता, अर्द्धरात्रिके प्रभा जिसका स्वर पहिचाना जा रहा था ऐसा, आर्तनाद करता कपिञ्जल सुनायी पड़

३७—तच्च श्रुत्वा पतितैरिव प्राणैर्दूरादेव मुक्तैकताराक्रन्दा, सरस लतासक्तित्रुटयमानांशुकोत्तरीया, यथाशक्ति त्वरितैरज्ञातसमविषमभू भागविन्यस्तैः पादप्रक्षेपैः प्रस्खलन्ती पदे पदे, केनाप्युत्क्षिप्य नीयमाने प्रदेशं गत्वा सरस्तीरसमीपवर्तिनि शिशिरसीकरासारस्राविणि शशिम शिलातले विरचितं कुमुदकुवलयकमलैर्विविधवनकुसुमसुकुमारमालामयं मृणालमयं कुसुमशरसायकमयमिव शयनमधिशयानम्, अतिनिष्पन्द मत्पदशब्दमिवाकर्णयन्तम्, अन्तःकोपशमितमदनसंतापतया तत्क्षणल सुखप्रसुप्तमिव, मनःक्षोभप्रायश्चित्तप्राणायामावस्थितमिव अतिप्रस्फु प्रभेण त्वत्कृते ममेयमवस्थेति कथयन्तमिवाधारेण, इन्दुद्वेषपरिवर्तितदेह पृष्ठभागनिपतितैर्मदनदहनविह्वलहृदयन्यस्तहस्तनखमयूखच्छलेन छि तामिव शशिकिरणैः, उच्छुष्कपाण्डुरया स्वविनाशोत्पातोत्पन्नया मदनच कलयेव चन्दनलेखिकया रचितललाटिकम्, ईषदालक्ष्यपरिवृत्ततारके वरतरोदनाताम्रेण प्राणोत्सर्गोपजाताश्रुक्षयतया रुधिरमिव क्षरता म शरशल्यवेदनाकूणितत्रिमार्गेण नातिमीलितेन लोचनयुगलेन प्रियतरस्तवापरो जनो जात इति कुपितेनेव जीवितेन परित्यक्त मन्मथव्यथया सहैतानसूनस्वयमिवोत्सृज्य निश्चेतनतासुखमनुभवन्त अनङ्गयोगविद्यामिव ध्यायन्तम्, अपूर्वप्राणायाममिवाभ्यस्यन्तम्, उपप तास्मदागमनेन प्रणयादिवापहृतप्राणपूर्णपात्रमनङ्गेन, रचितललाटिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुण्ड्रकम्, धृतसरसबिससूत्रज्ञोपवीतम्, अंसावसक्तकदलीगर्भपत्रचारु-चीरम्, एकावलीविशालाक्षमालम्, अविरलामलकर्पूरक्षोदभस्मधवलम्, आवद्धमृणालरक्षाप्रतिसरमनोहरम्, मनोभवव्रतवेषमास्थाय मत्समागममन्त्र-मिव साधयन्तम्, 'कठिनहृदये दर्शनमात्रकेणापि न पुनरनुगृहीतोऽयमनु-गतो जनः' इति सप्रणयं मामुपालभमानमिव चक्षुषा, किंचिद्विवृताधरतया जीवितमपहर्तुमन्तःप्रविष्टैरिवेन्दुकिरणैर्निर्गच्छद्भिर्दशनांशुभिर्धवलितपुरो-भागम्, मन्मथव्यथाविघटमानहृदयनिहितेन वामेन पाणिना 'प्रसीद प्राणैः समं प्राणसमे न गन्तव्यम्' इति हृदयस्थितां मामिव धारयन्तम्, इतरेण च नखमयूखदन्तुरया चन्दनमिव स्रवतोत्तानीकृतेन चन्द्रातपमिव निवारयन्तम्, अन्तिकस्थितेन चाचिरोद्गतजीवितमार्गमिवोद्ग्रीवेण विलोकयता तपः-सुहृदा कमण्डलुना समुपेतम्, कण्ठाभरणीकृतेन च मृणालवलयेन रजनिकरकिरणपाशेनेव संयम्य लोकान्तरमुपनीयमानम्, कपिञ्जलेन मद्दर्शनादब्रह्मण्यमित्यूर्ध्वहस्तेन द्विगुणीभूतवाष्पोद्गमेनाक्रोशता कण्ठे परिष्वक्तं तत्क्षणविगतजीवितं तमहंपापकारिणी मन्दभाग्या महाभाग-मद्राक्षम्।

उसे सुनकर दूरसे ही ऊँचे स्वरमें क्रन्दन करती, सरोवरकी तीरवर्तिनी लताओंमें उलझ जानेसे, जिसका उत्तरीय वस्त्र फटा जा रहा था—ऐसी, शक्तिभर शीघ्रता करनेसे अनजानी ऊँचो-नीची धरतीपर रखे चरणन्याससे जैसे प्राणोंसे ही पग-पग फिसलती हुई, जैसे कोई उखाड़ कर ही लिये जा रहा हो, इस प्रकार उस स्थानपर पहुँचकर पापाचारिणी मुझ मन्दभागिनीने सरतीरके निकटवर्ती, शीतल जलकणोंको बरसाती चन्द्रकान्तमणिके शिलातलपर रचे, श्वेत कमल, उत्पल, नलिन आदि वन-कुसुमोंकी सुकुमार मालाके समान कमलनालमय, कुसुमशर कामदेवके बाणसे तुलना करनेवाले बिछौनेपर सोते; अत्यन्त निश्चल होनेके कारण मेरी पगध्वनिको सुनते जैसे लगते; भीतरी क्रोधके कारण काम-सन्तापके शान्त हो जानेसे उस क्षण प्राप्त सुखसे सोये जैसे; मुनिजनके निमित्त अनुचित क्षोभके प्रायश्चित्तके लिए जैसे प्राणायाममें स्थित, चन्द्रमाके द्वेषसे शरीर दूसरी ओर कर लेनेके कारण पिछले भागमें पतित चन्द्रमाकी किरणों द्वारा कामाग्निसे व्याकुल हृदयपर रखे हाथके नखोंकी किरणोंके ब्याजसे मानो छेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिये गये, अपने विनाशके उत्पातसे उत्पन्न कामरूपी चन्द्रमाकी कलासे सम रखनेवाली सूखी-भूरी चन्दन-खौर ललाटपर लगाये; कुछ-कुछ घूमती पुतलि युक्त, निरन्तर रोनेसे कुछ-कुछ लाल होनेके कारण प्राणनाशसे अश्रु समाप्तिपर रक्तको टपकाते जैसे प्रतीत होते, काम-वाणकी अन्तःप्रविष्ट कारण होती वेदनासे कुछ तिरछे कटाक्षसे युक्त अधिक न मुँदे दोनों 'मुझसे अधिक प्रिय तुझे दूसरा कोई हो गया' यह कह क्रुद्ध हो जैसे जीव ही त्यागे; काम-पीड़ाके साथ-साथ जैसे स्वयं ही प्राणोंको छोड़कर निश्चेत सुख अनुभव करते; कामविजयके निमित्त योगविद्याका ध्यान करते जैसे; प्राणायामका जैसे अभ्यास करते; मेरे ले आनेका कार्य सम्पादित करके कामदेव द्वारा स्नेह-पूर्वक जिसका प्राणरूपी पूर्णपात्र ही छीन लिया गया ऐसे; चन्दनकी ललाटिका (अर्द्धचन्द्राकार तिलक) पर त्रिपुण्ड रचे; मृणाल रूपी यज्ञोपवीतको धारण किये; केलेके भीतरी कोमल पत्तोंसे सम करनेवाले सुन्दर चीरको कन्धेपर डाले; एकावलीकी ही विशाल अक्षमाल घने कर्पूर-चूर्णकी ही भस्मसे शुभ्र बने; मृणालके रक्षा-हस्तसूत्रको बाँधनेसे मनो लगते; कामव्रतके निमित्त उपयुक्त वेष धारण कर मेरे समागमका जैसे मंत्र करते; 'अरी कठोरहृदया, तूने दर्शन देने तककी कृपा मुझपर नहीं की', प्रकार प्रेमपूर्वक नयन द्वारा जैसे मुझे उपालम्भ देते; अधरके थोड़े खुले कारण प्राण लेनेको भीतर घुसकर बाहर निकलती चन्द्र-किरणोंसे सम करनेवाली दाँतोंकी किरणों जैसे शुभ्र हुए मुखको धारण करते; काम- फटते हृदयपर रखे बाँये हाथसे 'प्रसन्न हो। प्राणसमा प्रिये, प्राणोंके सा न जाना'; यह कह जैसे हृदयमें बसी मुझे रोकते और नखोंकी किरणोंके तथा उन्नत होनेके कारण जैसे चन्दन झरते ऊपर उठते दाहिने हाथसे चाँदनीका निवारण करते; ऊपर गर्दनकर कुछ पहिले ही चले गये प्राणोंका मार्ग देखते तपश्चर्याके साथी निकटवर्ती कमण्डलुसे युक्त; कण्ठमें आभूषण पहिने मृणाल-वलयके कारण जैसे चन्द्र-किरणोंके पाशसे दूसरे लोकको लि रहे प्रतीत होते; मुझे देख हाथ उठाकर 'अनुचित' ऐसा कह दुगुने आँसू गि दुगुने वेगसे रोते कपिञ्जल द्वारा कण्ठमें आलिगन प्राप्त करते; उस समय प्राणि उस महाभागको देखा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३८—उद्भूतमूर्छान्धकारा च पातालतलमिवावतीर्णा तदा काहमगमं किमकरवं किं व्यलपमिति सर्वमेव नाज्ञासिषम्। असवश्च मे तस्मिन्क्षणे किमतिकठिनतयास्य मूढहृदयस्य, किमनेकदुःखसहस्रसहिष्णुतया हतशरीरकस्य, किं विहिततया दीर्घशोकस्य, किं भाजनतया जन्मान्तरोपात्तस्य दुष्कृतस्य, किं दुखदाननिपुणतया दग्धदैवस्य, किमेकान्तवासतया दुरात्मनो मन्मथहतकस्य केन हेतुना नोद्गच्छन्ति स्म तदपि न ज्ञातवती। केवलमतिचिराल्लब्धचेतना दुःखभागिनी वह्नाविव पतितमसह्यशोकदह्यमानमात्मानमवनौ विचेष्टमानमपश्यम्। अश्रद्दधाना चासंभावनीयं तत्तस्य मरणमात्मनश्च जीवितमुत्थाय, 'हा हा किमिदमुपनतम्' इति मुक्तार्तनादा, 'हा अम्ब, हा तात। हा सख्यः' इति व्याहरन्ती, 'हा नाथ जीवितनिबन्धन, आचक्ष्व क्व मामेकाकिनीमशरणामकरुण विमुच्य यासि, पृच्छ तरलिकां त्वत्कृते मया यानुभूतावस्था, युगसहस्रायमाणः कच्छ्रेण नीतो दिवसः, प्रसीद सकृदप्यालप, दर्शय भक्तवत्सलताम्, ईषदपि विलोकय पूरय मे मनोरथम्, आर्तास्मि भक्तास्म्यनुरक्तास्म्यनाथास्मि बालास्म्यगतिकास्मि दुःखितास्म्यनन्यशरणास्मि मदनपरिभूतास्मि, किमिति न करोषि दयाम्, कथय किमपराद्धम्, किं वा नानुष्ठितं मया, कस्यां वा नाज्ञायामादृतम्, कस्मिन्वा त्वदनुकूले नाभिरतम्, येन कुपितो दासजनमकारणात्परित्यज्य व्रजन्न बिभेषि कौलीनात्, अलीकानुरागप्रतारणकुशलया किं वा मया वामया पापया याहमद्यापि प्राणिमि, हा हतास्मि मन्दभागिनी, कथं न त्वं जातो न विनयो न बन्धुवर्गो न परलोकः, धिङ्मां दुष्कृतकारिणीं यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते, नास्ति मत्सदृशी नृशंसहृदया याहमेवंविधं भवन्तुमुत्सृज्य गृहं गतवती, किं मे गृहेण किमम्बया किं वा तातेन किं बन्धुभिः किं परिजनेन, हा कमुपयामि शरणम्, त्वां देहि दयितदक्षिणाम्, भगवति भवितव्यते कुरु कृपां पाहि वनितामनाथाम्, भगवत्यो वनदेवताः प्रसीदत प्रयच्छतास्य प्राणान्, अव वसुंधरे सकललोकानुग्रहजननि, रजनि किमर्थं नानुकम्पसे, तात कैलास शरणागतास्मि ते दर्शय दयालुताम्, इत्येतानि चान्यानि च व्याक्रोशन्ती कियद्वा स्मरामि ग्रहगृहीतेवाविष्टेवोन्मत्तेव भूतोपहतेव व्यलपम्। उपर्यु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिपतितनयनजलधारानिकरच्छनन विलीयमानेन द्रवतामिव नीयमा
जलाकारेणेवात्मीक्रियमाणा, प्रलापाक्षरैरपि दशनमयूखशिखानुगत
साश्रुधारैरिव निष्पतद्भिः शिरोरुहैरप्यविरलविगलितकुसुमतया मुक्तवा
जलबिन्दुभिरिवाभरणरपि प्रसृतविमलमणिकिरणाश्रुतया प्ररुदितैरिवोपेत
तज्जीवितायेवात्ममरणाय स्पृहयन्ती, मृतस्यापि सर्वात्मना हृदयं प्रवेष्टु
वेच्छन्ती करतलेन, कपोलयोराश्यानचन्दनश्वेतजटामूले च लला
निहितसरसबिसयोश्चांसयोर्मलयजरसलवलुलितकमलिनीपलाशावगुण्ठिते
हृदये परामृशन्ती, 'पुण्डरीक निष्ठुरोऽस्येवमप्यार्तां न गणयसि मा
इत्युपालभमाना मुहुर्मुहुरेनमन्वनयं मुहुर्मुहुः पर्यचुम्बं मुहुर्मुहुः क
गृहीत्वा व्याक्रोशम् । 'आः पापे, त्वयापि मत्प्रत्यागमनकालं यावदस्या
न रक्षिताः' इति तामेकावलीमगर्हयम् । 'अयि भगवन्प्रसीद प्रत्युज्जीवयैन
इति, मुहुर्मुहुः कपिञ्जलस्य पादयोरपतम् । मुहुर्मुहुश्च तरलिकां क
गृहीत्वा प्रारुदम् । अद्यापि चिन्तयन्ती न जानासि तस्मिन्काले कुतस्ता
चिन्तितान्यशिक्षितान्यनुपदिष्टान्यदृष्टपूर्वाणि मे हतपुण्यायाः कृपणा
चाटुसहस्राणि प्रादुरभवन्कुतस्ते संलापाः कुतस्तान्यतिकरुणानि वैक्लव्य
रुदितानि । अन्य एव स प्रकारः । प्रलयोर्मय इवोदतिष्ठन्नन्तर्बाष्पवेगाना
जलयन्त्राणीवामुच्यन्ताश्रुप्रवाहाणाम् । प्ररोहा इव निरगच्छन्प्रलापाना
शिखरशतानीवावर्धन्त दुःखानाम् । प्रसूतय इवोदपाद्यन्त मूर्च्छानाम्" ।

प्रकट हुए मूर्च्छारूपी अंधकारके कारण जैसे पाताल लोकमें पहुँची हुई
उस समय कहाँ गयी, क्या किया, क्या विलाप किया, यह सब न जान पायी
उस क्षण मेरे प्राण कदाचित् मूढ़ हृदयके अत्यन्त कठिन होनेसे, कदाचि
प्रयोजनहीन शरीरके अनेक दुःखोंको सह सकनेकी शक्तिके कारण, कदाचि
महान् शोकको भोगनेके निमित्त, कदाचित् पूर्वजन्ममें किये पापका
अवश्य भोगनेके लिए, कदाचित् जले भाग्यके दुःख देनेमें निपुण हो
कारण, कदाचित् दुरात्मा, हत्यारे कामदेवके पूर्णतः प्रतिकूल होनेके कारण
जाने किस कारण नहीं निकले, यह भी न जान पायी । बहुत देर बाद सुध पा
दुःखभागिनी मैंने—जैसे आगमें पड़ी हुई होऊँ, ऐसे—अपनेको केवल ध
पर लोटता हुआ देखा । उसकी उस मृत्यु और अपने जीवनको अ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समझ, उठकर 'हाय, यह क्या हो गया', इस प्रकार आर्तनाद करती; 'हाय माँ, हाय पिता, हाय सखियों;' यह कहती 'हाय स्वामी, जीवनके कारण, बोलो— मुझ अकेली शरणहीनाको निर्दयतापूर्वक छोड़ कर कहाँ जाते हो ? तुम्हारे लिए जो अवस्था मैंने अनुभव की है, वह तरलिकासे पूछो। सहस्र युगों-सा लगता दिन कठिनतासे विताया। प्रसन्न होओ। एक बार तो बोलो। भक्तवत्सलता दिखाओ। थोड़ा-सा तो देखो। मेरा मनोरथ पूर्ण करो। आर्त हूँ। भक्त हूँ। अनुरक्त हूँ। अनाथ हूँ। बाला हूँ। मेरी कोई गति नहीं। दुःखी हूँ। और कोई शरण नहीं है। कामसे हार गई हूँ। क्यों दया नहीं करते ? कहो, मैंने क्या अपराध किया, अथवा क्या नहीं किया, किस आज्ञाका आदर नहीं किया अथवा तुम्हें अनुकूल लगनेवाले किससे अनुराग नहीं किया, जिससे कुपित हो और इस दासीको अकारण छोड़कर जाते जनापवादसे भी नहीं डरते ? अथवा मिथ्यानुराग दिखला धोखा देनेमें कुशल मुझ पापिनी के प्रतिकूल होनेसे भी क्या ? ओह, मैं आज भी साँस ले रही हूँ। हाय, मारी गयी मन्दभागिनी ! न तुम मेरे हुए, न मर्यादा रही, न बंधुवर्ग रहे, न परलोक ही रहा। मुझ दुष्कर्म करनेवालीको धिक्कार है, जिसके लिए तुम्हारी ऐसी दशा है। मुझ जैसी कठोरहृदया और नहीं है, जो ऐसे आपको छोड़कर मैं घर चली गयी। मुझे घरसे क्या, माँसे क्या, पितासे क्या, बन्धुओंसे क्या, नौकर-चाकरोंसे क्या ? हाय, किसकी शरण जाऊँ ? भाग्य, मुझपर दया दिखाओ। तुमसे निवेदन करती हूँ। भगवती भवितव्यते, मुझे पति-दक्षिणा दो। कृपा करो। अनाथ स्त्रीकी रक्षा करो। भगवती वनदेवताओं, प्रसन्न होओ। इसे प्राण दो। सकल लोकपर कृपा करनेवाली वसुन्धरे, रक्षा करो। रात, कृपा नहीं करती ? पिता कैलाश, तेरी शरण आयी हूँ। दयालुता दिखाओ,' इस प्रकार ऐसे और दूसरी प्रकारसे व्याक्रोश (कोसने) करती,— कितने याद करूँ—ग्रह द्वारा पकड़ी जैसी, आवेशमें आयी जैसी, भूत-सतायी जैसी विलाप करती रही। एक-पर-एक गिरते आँसुओंकी धारके छलसे जैसे विलीन होती, जैसे तरलताको प्राप्त होती जल रूप होती जाती; दाँतोंकी किरणोंके अग्रभागपर आ जानेके कारण जैसे अश्रुधारके साथ गिरते विलापाक्षरों, निरन्तर फूल गिरते रहनेसे आँसूकी बूँदें टपकाते जैसे सिरके बालों तथा निर्मल मणि-किरण रूपी आँसू गिरानेके कारण रोते जैसे आभूषणोंसे युक्त; उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवनके लिए अपना मरण चाहती; मृतकके भी सब प्रकारसे हृदयमें प्रवे
करनेकी इच्छा करती; हथेलीसे दोनों कपोल, सूख गये चन्दनके कारण सफे
हुए जटा मूलसे युक्त ललाट, जिनपर गीली मृणाल-नाल रक्खी थीं, ऐसे दो
कन्धों और चन्दनरसके कणोंसे युक्त कमलिनीके पत्तोंसे ढके हृदयको छू
'पुण्डरीक, निष्ठुर हो; इस प्रकार दुःखी होनेपर भी मुझे नहीं गिनते,' इ
प्रकार उपालंभ देती इसकी बार-बार अनुनय करने लगी, बार-बार चूमने ल
बार-बार गले लगाकर विलाप करने लगी। 'अरी पापिनी, तूने मेरे आने
समय तक इसके प्राणोंकी रक्षा नहीं की,' ऐसा कह उस एकावलीकी निन्दा क
'हे भगवन् प्रसन्न होओ, इसे जीवित करो,' इसलिए कपिंजलके पैरों पड़ी बा
बार-बार तरलिकाको गले लगाकर रोई। आज भी सोचती हुई नहीं जान पा
कि जिसके पुण्योंका नाश हो चुका है, ऐसी मेरे (निकट) कहाँसे वे अचिन्ति
अनसीखे, अनवताये, पहिले न दीखे, दीन चाटु वचन उत्पन्न हो गए, क
वे संताप, कहाँ वे अतिदीन, विकलतासे भरे रोने ? वह प्रकार और ही है
अन्तरके अश्रु-वेगकी जैसे प्रलयकालीन तरंगें उठने लगीं, नेत्रोंसे अश्रुधाराओं
जैसे फव्वारे छूटने लगे; विलापोंके जैसे अंकुर निकल आए; जैसे मूर्च्छाओं
क्रम बन गए।'

३९—इत्येवमात्मवृत्तान्तमावेदयन्त्या एव तस्याः समतिक्रान्तं कथम
प्यतिकष्टमवस्थान्तरमनुभवन्त्या इव चेतनां जहार मूर्च्छा। वेगान्निष्पतन्
च शिलातले तां ससंभ्रमं प्रसारितकरः परिजन इव जातपीडश्चन्द्रापीड
विधृतवान्। अश्रुजलार्द्रेण च तदीयेनैवोत्तरीयवल्कलप्रान्तेन शनैःशनैर्वी
यन्संज्ञां ग्राहितवान्। उपजातकारुण्यश्च बाष्पसलिलोत्पीडेन प्रक्षाल्यमा
कपोलयुगलो लब्धचेतनामवादीत्। 'भगवति मया पापेन त्वायं पुनरभि
वतामुपनीतः शोको येनेदृशीं दशामुपनीतासि। तदलमनया कथया
संह्रियतामियम्। अहमप्यसमर्थः श्रोतुम्। अतिक्रान्तान्यपि हि संकी
मानानि प्रियजनविश्वासवचनान्यनुभवसमां वेदनामुपजनयन्ति सुहृज्जन
दुःखानि। तन्नार्हसि कथं कथमपि विधृतानिमानसुलभानसूनपुनः पु
स्मरणशोकानलेन्धनतामुपनेतुम्'।

इत्येवमुक्ता दीर्घमुष्णं च निश्वस्य बाष्पायमाणलोचना सनिर्वेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ादीत्—"राजपुत्र, या तदा तस्यामतिदारुणायां हतनिशायामेभिरति-
नृशंसैरसुभिर्न परित्यक्ता ते मामिदानीं परित्यजन्तीति दूरापेतम्। नूनम-
ुण्योपहतायाः पापाया मम भगवाननन्तकोऽपि परिहरति दर्शनम्। कुतश्च
मे कठिनहृदयायाः शोकः। सर्वमिदमलीकमस्य दुरात्मनः शठहृदयस्य।
सर्वथाहमनेन त्यक्तत्रपेण निरपत्रपाणामग्रेसरीकृता। यया चाविष्कृतमदनया
त्रमय्येवेदमनुभूतं तस्याः का गणना कथनं प्रति। किं वा परमतः कष्ट-
रमाख्येयमन्यद्भविष्यति यन्न शक्यते श्रोतुमाख्यातुं वा। केवलमस्य
त्रपातस्यानन्तरमाश्चर्यं यदभूत्तदावेदयामि। आत्मनश्च प्राणधारण-
ारणलव इवाव्यक्तो यः समुत्पन्नस्तं च कथयामि। यया दुराशामृगतृष्णि-
या गृहीताहमिदमुपरतकल्पं परकीयमिव भारभूतप्रयोजनमकृतज्ञं च हत-
रीरं वहामि तदलं श्रूयताम्। ततश्च तथाभूते तस्मिन्नवस्थान्तरे मरणे-
निश्चया तत्तदूहु विलप्य तरलिकामब्रवम्—'अभ्युत्तिष्ठ निष्ठुरहृदये,
कियद्रोदिषि। काष्ठान्याहृत्य विरचय चिताम्। अनुसरामि जीविते-
रम्' इति।

इस प्रकार आत्मवृत्तान्त कहती हुई महाश्वेता, किसी प्रकार अत्यन्त कष्टसे
ती पुण्डरीककी मृत्युदशाका जैसे अनुभव करती, चेतना खो बेसुध हो
यी। मूर्छा-वेगसे शिला-तलपर गिरती उसको परिजनकी भाँति वेगसे हाथ
ाकर चन्द्रापीडने पकड़ लिया और आँसुओंके जलसे भीगे उसी उत्तरीय
कलके छोरसे धीरे-धीरे हवा कर होशमें ले आया। अश्रुधारा प्रवाहसे
सके कपोल प्रक्षालित हो रहे थे तथा जिसके (मनमें) करुणा उपज आयी थी,
सा चन्द्रपीड होशमें आयी महाश्वेतासे बोला—'भगवति, मुझ पापीने तुम्हारा
ह शोक फिरसे नया कर दिया, जिससे आप इस दशाको प्राप्त हुई हैं। सो,
ह कथा समाप्त हो। इसका संक्षेप कीजिए। बीते हुए प्रियजनके विश्वास
चनोंको कहे जाते मैं भी सुननेमें समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि मित्रोंके दुःख अनुभव-
य पीड़ाको उपजाते हैं। सो किसी प्रकार धारे इन दुर्लभ प्राणोंको फिरसे
कारिनमें इंधन बनाना आपको उचित नहीं है; ऐसा कहे जानेपर लम्बी और
साँस छोड़ आँखोंमें आँसूभरे वह विरागपूर्वक बोली—'राजकुमार, जिन
तिनिष्ठुर प्राणोंने तब उस महाभीषण अशुभ रातमें जिसे नहीं छोड़ा, वे मुझे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब छोड़ देंगे, यह तो दूर चला गया। निश्चय ही अपुण्यसे मारी मुझ पापिनी को यमराज भी देखना नहीं चाहते। मुझ कठिनहृदयाको शोक कहाँ? इस शठ हृदयका यह सब झूठ है। इस लज्जा-छोड़ेने मुझे सब प्रकारसे निर्लज्जों अग्रेसर कर दिया। काम प्रकट हो जानेसे वज्र-जैसी बनी जिसने यह सब अनुभव किया, उसके कहनेकी क्या गिनती? इससे अधिक कष्टकर कथन और होगा क्या, जो सुना या कहा न जा सके? इस वज्रपातके उपरान्त जो आश्चर्य हुआ, वही केवल कहती हूँ और अपने प्राणोंको रखनेका जो छोटा-सा, अस्फुट कारण-जैसा उत्पन्न हुआ, उसे बताती हूँ। जिस दुराशारूपी मृगतृष्णाको पकड़कर इस अर्द्धमृत, पराये जैसे, बोझा बने, निष्प्रयोजन, कृतघ्न, पापी शरीर को धारे हूँ, केवल वही सुनिए। तब उस अवस्थाके अन्तमें मरनेके दृढ़ निश्चयसे पूर्वोक्त प्रकारसे प्रचुर विलाप करके मैं तरलिकासे बोली—'अरी निष्ठुरहृदया कितना रोएगी? लकड़ियाँ लाकर चिता रच। मैं जीवनेश्वरका अनुगमन करती हूँ।'

४०—अत्रान्तरे झटिति चन्द्रमण्डलविनिर्गतो गगनादवतीर्य केयूरकोटिलग्नममृतफेनपिण्डपाण्डुरं पवनतरलमंशुकोत्तरीयमाकर्षन्, उभयकर्णान्दोलितकुण्डलमणिप्रभानुरक्तगण्डस्थलः, स्थूलमुक्ताफलतया तारागणमिव ग्रथितमतितारं हारमुरसा दधानः, धवलदुकूलपल्लवकल्पितोष्णीषग्रन्थिः अलिकुलनीलकुटिलकुन्तलनिकरविकटमौलिः, उत्फुल्लकुमुदकर्णपूरः, कामिनीकुचकुङ्कुमपत्रलतालाञ्छितांसदेशः, कुमुदधवलदेहः, महाप्रमाणः पुरुषः महापुरुषलक्षणोपेतः, दिव्याकृतिः, स्वच्छवारिधवलेन देहप्रभावितानेन क्षालयन्निव दिगन्तराणि, आमोदिना च शरीरतः क्षरता शिशिरेण शीतज्वरामिव जनयतामृतसीकरनिकरवर्षेण तुषारपटलेनेवानुलिम्पन्, गोशीर्ष चन्दनरसच्छटाभिरिवासिञ्चन्, ऐरावतकरपीवराभ्यां बाहुभ्यां मृणालधवलाङ्गुलिभ्यामतिशीतलस्पर्शाभ्यां तमुपरतमुत्क्षिपन्, दुन्दुभिनादगम्भीरेण स्वरेण 'वत्से महाश्वेतेन परित्याज्यास्त्वया प्राणाः पुनरपि तवानेन सह भविष्यति समागमः' इत्येवं पितेवाभिधाय सहैवानेन गगनतलमुत्पतत्। अहं तु तेन व्यतिकरेण सभया सविस्मया सकौतुका चोन्मुखी किमिदमिति कपिञ्जलमपृच्छम्। असौ तु ससंभ्रममदत्त्वैवोत्तरमुदतिष्ठत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'दुरात्मन् क्व मे वयस्यमपहृत्य गच्छसि' इत्यभिधायोन्मुखः संजातकोपो बध्नन्सवेगमुत्तरीयवल्कलेन परिकरमुत्पतन्तं तमेवानुसरन्नन्तरिक्षमुदगात्। पश्यन्त्या एव च मे सर्व एव ते तारागणमध्यमविशन्।

मम तु तेन द्वितीयेनेव प्रियतममरणेन कपिञ्जलगमनेन द्विगुणीकृतशोकायाः सुतरामदीर्यत हृदयम्। किंकर्तव्यतामूढा च तरलिकामब्रवम्—'अयि न जानासि किमेतत्' इति। सा तु तदवलोक्य स्त्रीस्वभावकातरा तस्मिन्क्षणे शोकाभिभाविना भयेनाभिभूता वेपमानाङ्गयष्टिर्मम मरणशङ्कया च वराकी विषण्णहृदया सकरुणमवादीत्—"भर्तृदारिके, न जानासि पापकारिणी। किं तु महदिदमाश्चर्यम्। अमानुषाकृतिरेष पुरुषः। समाश्वासिता चानेन गच्छता सानुकम्पं पित्रेव भर्तृदारिका। प्रायेण चैवंविधा दिव्याः स्वप्नेऽप्यविसंवादिन्या भवन्त्याकृतयः। किमुत साक्षात्। न चाल्पमपि विचारयन्ती कारणमस्य मिथ्याभिधाने पश्यामि। अतो युक्तं विचार्यात्मानमस्मात्प्राणपरित्यागव्यवसायान्निवर्तयितुम्। अतिमहत्खल्विदमाश्वासस्थानमस्यामवस्थायाम्। अपि च तमनुसरन् गत एव कपिञ्जलः। तस्मात् 'कुतोऽयं, को वायं, किमर्थं वानेनायमपगतासुरुत्क्षिप्य नीतः, क्व वानीतः, कस्माच्चासंभावनीयेनामुना पुनःसमागमाशाप्रदानेन, भर्तृदारिका समाश्वासिता' इति सर्वमुपलभ्य जीवितं वा मरणं वा समाचरिष्यसि। अदुर्लभं हि मरणमध्यवसितम्। पश्चादप्येतद्भविष्यति। न च जीवन्कपिञ्जलो भर्तृदारिकामदृष्ट्वा स्थास्यति। तेन तत्प्रत्यागमनकालावधयोऽपि तावद्ध्रियन्ताममी प्राणाः"। इत्यभिदधाना पादयोर्मे न्यपतत्। अहं तु सकललोकदुर्लंघ्यतया जीविततृष्णायाः, क्षुद्रतया च स्त्रीस्वभावस्य, तया च तद्वचनोपनीतया दुराशामृगतृष्णिकया, कपिञ्जलप्रत्यागमनकांक्षया च तस्मिन्काले तदेव युक्तं मन्यमाना नोत्सृष्टवती जीवितम्। आशया हि किमिव न क्रियते। तां च पापकारिणीं कालरात्रिप्रतिमां वर्षसहस्रायमाणां यातनामयीमिव दुःखमयीमिव नरकमयीमिवाग्निमयीमिवोत्सन्ननिद्रा तथैव क्षितिजले विचेष्टमाना रेणुकणधूसरैरश्रुजलार्द्रकपोलसंदानितैर्विमुक्तव्याकुलैः शिरोरुहैरुपरुद्धमुखी निर्दयाक्रन्दजर्जरस्वरक्षयक्षामेण कण्ठेन तस्मिन्नेव सरस्तीरे तरलिकाद्वितीया क्षपां क्षपितवती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी बीच झटसे चन्द्रमण्डलसे निकला, गगनसे उतरकर किरीटके अग्रभागमें लगे अमृत-फेनके पिण्डसम श्वेत वायुमें उड़ते उत्तरीय वस्त्रको खींचता; दोनों कानोंमें पहने हिलते कुण्डलोंमें जड़ी मणियोंकी कान्तिसे लाल गण्डस्थलवाला; बड़े-बड़े मोतियोंके कारण जैसे तारागणसे गूँथे गये अति मनोहर हारको वक्षःस्थलपर धारण किये; शुभ्र दुपट्टेके छोरसे पगड़ीकी गाँठ लगाये; जिसके सिरको भौरोंके समान नीली तथा बाँकी अलकावलि सुशोभित कर रही थी—ऐसा; खिले कुमुदोंके आभूषण कानोंमें पहिने; कामिनीके कुचोंपर लगी केसरके चिह्नसे युक्त स्कन्ध प्रदेशवाला; श्वेतकमलके समान गोरी देहवाला; मनोहर स्वरूपवाला एक लम्बा-चौड़ा पुरुष दिगन्तोंको स्वच्छ जलके तुल्य शुभ्र शरीरके प्रभासमूहसे जैसे निर्मल करता तथा शरीरसे झरती, सुगन्धयुक्त, ठंडी—अतएव जैसे शीत ज्वरको उपजाती,—अमृतकणोंकी वर्षासे जैसे कुहरेसे ढकता; गोशीर्षनामक चन्दनके रसकी छटाओंसे जैसे सींचता; कमलनालसम श्वेत अंगुलियोंसे युक्त, शीतलस्पर्शवाली ऐरावतकी सूँड़के समान मोटी बाहोंसे उस मृतकको उठाता हुआ; दुन्दुभिके शब्दके समान गम्भीर स्वरमें 'वत्से महाश्वेते, तुम प्राण न दो; तुम्हारा इसके साथ पुनर्मिलन होगा, ऐसा पिताके समान कहकर मृत पुण्डरीकके साथ आकाश-मण्डलको उड़ गया। मैंने इस वृत्तान्तके कारण भय, आश्चर्य और कुतूहलसे युक्त हो ऊपर मुख उठा 'यह क्या है' ऐसा कपिञ्जलसे पूछा। वह तो उत्तर विना दिये ही वेगपूर्वक उठ खड़ा हुआ और 'अरे दुरात्मा, मेरे मित्रको हरकर कहाँ जाता है ?' यह कह, ऊपरको मुँह उठा, आवेगपूर्वक उत्तरीय वल्कलसे कमर कसता उड़कर उड़ते हुए उसीका पीछा करते अन्तरिक्षमें ऊँचा चला गया। मेरे देखते ही देखते वे सब सितारोंके बीच घुस गये। दूसरे प्रियतम-मरणके समान कपिञ्जलके गमनसे शोक दुगुना हो जानेके कारण मेरा हृदय बुरी तरह फटने लगा। किंकर्तव्यमूढ हुई मैं तरलिकासे बोली—'अरी जानती नहीं, कह, यह क्या है ?' यह देखकर स्त्रीस्वभावसे कातर वह बेचारी उस क्षण शोकको अभिभूत करनेवाले भयसे हारी, देह कँपाती, मेरे मरणकी शंकासे चित्त खिन्न किये करुणापूर्वक बोली—'स्वामिपुत्री, मैं पापिनी क्या जानूँ, किन्तु है यह बड़ा आश्चर्य। यह पुरुष मनुष्यों जैसे स्वरूपका नहीं था। जाते-जाते कृपापूर्वक उसने पिताके समान स्वामिपुत्री (आप) को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भरोसा भी दिया है। प्रायः ऐसी दिव्य आकृतियाँ स्वप्नमें भी अलीक नहीं होतीं, प्रत्यक्षकी तो बात ही क्या! थोड़ा-सा भी विचार करनेपर इसके असत्य-भाषणका कारण नहीं देखती। इसलिए विचार करके इस प्राण छोड़नेके कार्यका परित्याग करना हमलोगोंको उचित है। निश्चयपूर्वक इस अवस्थामें यह हमारे आश्वासनके निमित्त बहुत बड़ा कारण है। और उसका पीछा करता कपिञ्जल गया ही है। इससे 'यह कहाँसे आया अथवा कौन है और किस कारण यह उस मृतकको उठा ले गया, कहाँ ले गया और किस कारण इस अचिन्तनीय पुन-मिलनकी आशा देखकर उसने स्वामिपुत्रीको समाश्वासन दिया है', यह सब समझ कर ही जीने या मरनेका निश्चय कीजिए। सोच लेनेपर मरना तो दुर्लभ नहीं है। यह तो बादको भी हो सकेगा। जीनेपर कपिञ्जल स्वामिपुत्रीको बिना देखे न रहेगा, इससे उसके लौटनेके समय तक इन प्राणोंको धारण कीजिए', यह कहती हुई मेरे पैरों पड़ गयी। मैंने सारे संसारके द्वारा जीनेकी तृष्णा दुर्लंघ्य होने, स्त्रीस्वभावकी क्षुद्रता, उसके वचनों द्वारा लायी दुराशारूपी मृगतृष्णा तथा कपिञ्जलके लौट आनेकी आकांक्षाके कारण उस समय वही ठीक मानकर प्राण नहीं छोड़े। आशासे क्या नहीं किया जाता? उस कालरात्रि के सदृश, सहस्र वर्षों जैसी प्रतीत होती, तीव्र वेदनामयी जैसी, दुखमयी जैसी, नरकमयी जैसी, अग्निमयी जैसी वह रात नींद त्यागे, उसी प्रकार धरतीपर लोटते, धूलि-कणोंसे धूसरित हुए, अश्रु-जलसे गीले कपोलोंपर पड़े, खुले होनेसे बिखरे बालोंसे मुँह ढके, निष्करुण विलापके कारण शिथिल हुए स्वरके नष्ट हो जानेसे कृश हुए कण्ठको लिये मुझ पापिनीने उसी सरोवरके तटपर तरलिकाके साथ बितायी।

४१—प्रत्युषसि तूत्थाय तस्मिन्नेव सरसि स्नात्वा, कृतनिश्चया, तत्प्रीत्या तमेव कमण्डलुमादाय तान्येव च वल्कलानि तामेवाक्षमालां गृहीत्वा, बुद्ध्वा निःसारतां संसारस्य, ज्ञात्वा च मन्दपुण्यतामात्मनः, निरूप्य चाप्रतीकारदारुणतां व्यसनोपनिपातानाम्, आकलय्य दुर्निवारतां शोकस्य, दृष्ट्वा च निष्ठुरतां दैवस्य, चिन्तयित्वा चातिबहुलदुःखतां स्नेहस्य, भावयित्वा चानित्यतां सर्वभावानाम्, अवधार्य चाकाण्डभंगुरतां सर्वसुखानाम्, अविगणय्य तातमम्बां च, परित्यज्य सह परिजनेन सकल-बन्धुवर्गम्, निवर्त्य विषयसुखेभ्यो मनः, संयम्येन्द्रियाणि, गृहीतब्रह्मचर्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवं त्रैलोक्यनाथमनाथशरणमिमं शरणार्थिनी स्थाणुमाश्रिता। अपरेद्युश्च कुतोऽपि समुपलब्धवृत्तान्तस्तातः सहाम्बया सह बन्धुवर्गेणागत्य सुचिरं कृताक्रन्दस्तैस्तैरुपायैरभ्यर्थनाभिश्च बहुभिरुपदेशैश्चानेकप्रकारैः परिसान्त्वनैश्च नानाविधैर्गृहागमनाय मे महान्तं यत्नमकरोत्। यदा च नेयमस्माद्व्यवसायात्कथंचिदपि शक्यते व्यावर्तयितुमिति निश्चयमधिगतवाँस्तदा निराशोऽपि दुस्त्यजतया दुहितृस्नेहस्य पुनः पुनर्मया विसृज्यमानोऽपि बहून्दिवसान्स्थित्वा सशोक एतान्तर्दह्यमानहृदयो गृहानयासीत्। गते च ताते ततः प्रभृति तस्य जनस्याश्रुमोक्षमात्रेण किल कृतज्ञतां दर्शयन्ती, तदनुरागकृशमिदमपुण्यबहुलमस्तमितलज्जममङ्गलभूतमनेकक्लेशायाससहस्रनिवासं दग्धशरीरकं बहुविधैर्नियमशतैः शोषयन्ती, वन्यैश्च फलमूलवारिभिर्वर्तमाना, जपव्याजेन तद्गुणगणानिव गणयन्ती, त्रिसंध्यमत्र सरसि स्नानमुपस्पृशन्ती, प्रतिदिनमर्चयन्ती देवं त्र्यम्बकम्, अस्यामेव गुहायां तरलिकया सह दीर्घशोकमनुभवन्ती चिरमवसम्। साहमेवंविधा पापकारिणी निर्लक्षणा निर्लज्जा क्रूरा च निःस्नेहा च नृशंसा च गर्हणीया निष्प्रयोजनोत्पन्ना निष्फलजीविता निरवलम्बना निःसुखा च। किं मया दृष्टया पृष्टया वा कृतब्राह्मणवधमहापातकया करोति महाभागः। इत्युक्त्वा पाण्डुना वल्कलोपान्तेन शशिनमिव शरन्मेघशकलेनाच्छाद्य वदनं दुर्निवारबाष्पवेगमपारयन्ती निवारयितुमुन्मुक्तकण्ठमतिचिरमुच्चैः प्रारोदीत्।

सवेरे उठकर, उसी सरोवरमें स्नान कर निश्चय कर, उसके प्रेमसे वही कमण्डलु, वे ही वल्कल और वही अक्षमाला ले, संसारकी असारता और अपने पुण्योंको मन्द हुआ समझ, पड़े कष्ट का निवारण न हो सकनेकी कठिनता का निरूपण कर, शोककी दुर्निवारताका ध्यान कर, भाग्यकी निष्ठुरता देख, प्रेममें बहुतसे दुःखोंका होना विचार, सब पदार्थोंकी अनित्यता समझ, सब सुखोंका असमयमें ही नष्ट हो जानेवाला निश्चय कर, पिताकी अवगणना कर तथा समस्त परिजनों सहित माताको छोड़, विषयसुखोंसे मनको हटा, इन्द्रियोंका नियंत्रण कर ब्रह्मचर्य ले मैंने त्रिलोकीके स्वामी, अनाथोंके शरण इन्हीं स्थाणु-शिवकी शरण चाहते हुए, आश्रय ग्रहण किया। दूसरे दिन कहींसे समाचार जान माता तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्य बन्धुवर्गके साथ पिताने आकर बहुत देरतक विलापकर अनेक उपायों, बहुत-सी प्रार्थनाओं, अनेक उपदेशों तथा नाना प्रकारकी सान्त्वनाओंके द्वारा मुझे घर लौटा ले चलनेके लिए बड़ा प्रयत्न किया। और 'हमारे उद्योगसे यह किसी प्रकार लौटायी नहीं जा सकती,' यह निश्चय जब उन्हें हो गया तो निराश होकर भी पुत्री-प्रेमके दुर्निवार होनेके कारण बार-बार मेरे द्वारा घर जानेको कहा जानेपर भी बहुत दिनोंतक रहकर भीतरही भीतर जैसे जलता हृदय लिये शोक-सहित घर गये। पिताके जानेपर तबसे उस जन (पुण्डरीक) के प्रति आँसू गिरा-कर ही कृतज्ञता प्रकट करती, उसके प्रेममें दुर्बल, पापी, लज्जा-छोड़े, अमङ्गलरूप अनेक क्लेशोंके तथा सहस्रों परिश्रमोंके निवास स्थान, जले शरीरको अनेक प्रकारके सैकड़ों व्रतोंसे सुखाती, जङ्गली फल-मूल और जलसे जीवन चलाती, जपके बहाने जैसे उसके गुण जपती, इस तालाबमें तीन समय स्नान करती, प्रतिदिन त्रिनेत्र देव शिवकी पूजा करती, इसी गुफामें तरलिकाके साथ महान् शोकका अनुभव करती मैं रहने लगी। सो मैं ऐसी पापिनी, लक्षणहीना, निर्लज्ज, क्रूर, प्रेमहीन, कठोर, निन्दनीय, व्यर्थ उत्पन्न हुई, निष्फल जीवन धारण करनेवाली, निराश्रय और सुखरहित हूँ। ब्राह्मण-वधरूपी महापापको करनेवाली मुझे देखकर अथवा पूछकर सत्पुरुष आप क्या करेंगे'; ऐसा कहकर शरदृतुके मेघ-खण्डसे जैसे चन्द्रमा ढक गया हो; ऐसे सफेद वल्कलके छोरसे मुखको ढककर कठिनतासे रोके जा सकनेवाले अश्रु-वेग रोकनेमें पार न पाती हुई, ज़ोर-जोरसे बहुत देरतक मुक्तकण्ठ रोती रही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टीका तथा टिप्पणी

पूर्वकथा

वेत्रवती नदीके तटपर स्थित विख्यात विदिशा नामक नगरीमें शूद्रक नामक राजा राज्य करता था। एक दिन राज-सभामें एक चाण्डाल-कन्या एक तोता राजाको उपहाररूपमें देनेके लिए ले आयी। यह शुक समस्त विज्ञान एवं कला-कौशलमें अत्यन्त निपुण था और मनुष्यकी वाणीमें बात भी करता था। शूद्रकके अनुरोध पर उस शुकने अपनी गाथा इस प्रकार सुनायी। विन्ध्य वनमें अगस्त्य ऋषिके आश्रमके समीप एक प्राचीन शाल्मलीके पेड़पर शुकका जन्म हुआ था। जन्मके समय ही उसकी माँ परलोक-निवासिनी बन गयी। वृद्ध एवं निश्चेष्ट पिता ही उसका किसी प्रकारसे पालन-पोषण करता था। अभी उस नन्हें शुक-शावकके पंख भी नहीं जम पाये थे, कि साक्षात् यमराजकी भाँति शबरोंका अधिपति मृगयाके लिए उसी वनमें आया। शबर-सेनाके एक सैनिकने बड़ी क्रूरतासे उसके पिताको मार डाला। भाग्यवशात् शाल्मली की चोटीसे धरती पर गिरकर भी वह बच गया। जाबालि ऋषिके पुत्र हारीतकी दृष्टि शुकपर पड़ी और उसे वे अपने आश्रममें ले आये। जाबालिने उसे देखकर कहा—'यह अपने कर्मोंका फल भोग रहा है'। हारीतने कहा—'तात! इसके पूर्वजन्मकी कथा हमलोग सुनना चाहते हैं'। जाबालिने सारी घटना कह सुनायी जो इस प्रकार है—उज्जयिनी नगरीमें एक समय तारापीड नामक नरेश राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम विलासवती था। समस्त सुखोंके रहनेपर भी राजाके कोई सन्तान नहीं थी। अनेकविध अर्चाके पश्चात् राजाके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम चन्द्रापीड रखा गया। राजाके मन्त्री शुकनासकी पत्नी मनोरमाके गर्भसे उसी दिन वैशंपायन नामक पुत्र हुआ। आनन्दकी लहरें उमड़ पड़ीं। समस्त विद्याओंका अध्ययन करनेके पश्चात् युवराज पदपर अभिषिक्त चन्द्रापीड़ अपने मित्र वैशंपायनके साथ दिग्विजयके लिए निकल पड़ा। तीन वर्ष तक वह निरन्तर भ्रमण करता रहा। चन्द्रापीड एक दिन मृगयाके लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गया, वहाँ उसे किन्नरोंका एक जोड़ा दिखायी पड़ा। उसे पकड़नेके लिए राजकुमारने अपना अश्व उसके पीछे छोड़ दिया। बहुत दूर तक पीछा करनेपर भी किन्नरमिथुन तो नहीं मिला पर उसे एक दिव्य सरोवर दिखायी पड़ा। इस सरोवरका नाम अच्छोद था। राजकुमारने वहाँ अपने घोड़े इन्द्रायुधको खिलाया-पिलाया और स्वयं आराम किया। उसी समय उसे दूरसे आती हुई दिव्य संगीतकी ध्वनि सुनायी पड़ी। कौतूहलने उसे अन्वेषणमें प्रवृत्त कर दिया। कुछ दूर जानेके पश्चात् राजकुमारने एक प्राचीन शिव-मन्दिरका दर्शन किया। उस मन्दिरमें चराचर गुरु भगवान् शंकरकी एक चतुर्मुख मूर्ति स्थापित थी। इस मूर्तिकी दक्षिण दिशामें उत्तरकी ओर मुख करके बैठी हुई गन्धर्वकन्या महाश्वेताको राजकुमार चन्द्रापीडने देखा।

(१) यह लम्बा वाक्य बाण की शैली एवं वर्णन-शिल्पके कतिपय उत्तम उदाहरणोंमेंसे एक है। इस वाक्यमें ८७ विशेषणोंका प्रयोग 'कन्यकाम्'का वैशिष्ट्य बतलानेके लिए किया गया है। कल्पनाकी उड़ान, सुन्दर बिम्बोंकी प्रदर्शनी, सूक्ष्म निरीक्षण-दृष्टि, वर्णनकी उदात्तता और बाणके अपराजेय धैर्यका यह गद्य पूर्ण निदर्शन है। शब्दोंका कोष समाप्त नहीं हो सका, सर्वदा नव-नव शब्द-राशि। परन्तु पौराणिक सन्दर्भोंका परिसर और वर्ण्यका असन्तुलन काफी ऊबा देनेवाला है। बाणके और कतिपय वर्णन ऐसे ही विस्तृत तथा असन्तुलित हैं। तुलनीय : दर्पशात् अथवा हर्षका वर्णन (हर्षचरित), राजकुल-वर्णन (ह० च०), कादम्बरी-वर्णन (काद०)।

तस्येति। तस्य च दक्षिणां मूर्तिमाश्रित्याभिमुखमासीनां प्रतिपन्नपाशुपतव्रतां कन्यकां ददर्श। इति दूरेणान्वयः। सर्वाणि द्वितीयान्तपदानि 'कन्यकाम्' इति शब्दस्य विशेषणानि। दक्षिणामूर्त्ति—गुप्तकालकी कलामें चतुर्मुखी शिवकी मूर्त्तियाँ उपलब्ध हैं। दक्षिण मुख गौरीका होता था। एलीफेंटाकी प्रधान शिवमूर्तिके दक्षिण भागका मुख पार्वतीका ही है (जितेन्द्रनाथ बनर्जी, हिन्दू प्रतिमाशास्त्रका विकास, पृ० ४७६, फलक ४०, चित्र १। एन्शेण्ट इण्डिया संख्या २, फलक ७) गौरीपूजा पति-प्राप्तिके लिए अति प्रसिद्ध है।

१. उपरचितेति। उपरचितं ब्रह्मासनं समाधियोग्यासनं यया सा। अथवा उपरचितं ब्रह्मणः आसनमिव आसनं यया सा। ब्रह्मासने निषण्णां कमलासने वा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतीति । अतिविस्तारिणा सर्वदिङ्मुखानां प्लावकेन आच्छादकेन । प्रलये विप्लुतः वृद्धिङ्गतः यः क्षीरपयोधिः दुग्धसिन्धुः तस्य पूरवत् प्रवाहवत् पाण्डुरेण श्वेतेन । लुप्तोपमा । सर्वतो विसर्पता परितः प्रसरणशीलेन, अतिदीर्घः यः कालः समयः तेन सञ्चितेन एकत्रीकृतेन तपोराशिना तपसः समूहेनेव । उत्प्रेक्षा । त्रीणि स्रोतांसि यस्याः तस्याः जलनिभेन जलसदृशेन । 'भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि' इत्यमरः । गंगाकी तीन धाराएँ हैं एक स्वर्गमें, दूसरी पृथ्वीपर, तीसरी पातालमें—तुलनीय 'सा चक्रवाकांकितसैकतायास्त्रिस्रोतः कान्तिमतीत्य तस्थौ' कुमारसम्भव ७।१५ । इह आर्थी उपमा । पादपान्तरैः पिण्डीभूय जलप्रसरणे वृक्षाः विघ्नरूपाः अतः पुञ्जीभूय वहतेव । उत्प्रेक्षा । देहस्य प्रभा कान्तिस्तस्य वितानेन समूहेन विस्तारेणेति यावत् । सगिरिकाननं पर्वतवनैः सह तं पूर्ववर्णितं प्रदेशं दन्तमयमिव गजदन्तभरितमिव कुर्वतीम् । उत्प्रेक्षा । अत्र तृतीयान्तपदानि 'देहप्रभावितानेन' इति शब्दस्य विशेषणानि बोध्यानि ।

अन्यथेति । अन्यथा केनापि भिन्नरीत्या एव, यद्यपि कैलासः स्वाभाविकः शुभ्रस्तथापि तं कैलासगिरिं धवलयन्तीम्, श्वेतिमानं नयन्तीमिव । प्रतीयमानोत्प्रेक्षा ।

अन्तरिति । द्रष्टुरपि जनस्य अन्तः अभ्यन्तरं लोचनपथप्रविष्टेन नेत्रमार्गगतेन । तेनैव देहप्रभावितानेनेति शेषः । मनः श्वेतिमानं नयन्तीम् । उप्रेक्षा । संतुष्टिं गच्छति दर्शकस्य चित्तं तस्याः विलोकनमात्रेणैवेति भावः ।

अतिधवलेति । अतिधवला या प्रभा तया परिगतः सर्वतोऽधिकृतः देहः शरीरं यस्यास्तस्याः भावस्तया हेतुतया, स्फटिकगृहं गतामिव, दुग्धसलिले मग्नामिव । विमलं भास्वरं यत् चीनांशुकं वा चीनोद्भवं श्लक्ष्णं मसृणं च वस्त्रं तेनान्तरितामाच्छादितामिव । आदर्शतले दर्पणे संक्रान्तां प्रतिबिम्बितामिव । "दर्पणे मुकुरादर्शौ" इत्यमरः । शरदभ्राणां पटलेन शरत्कालिकमेघवृन्देन तिरस्कृतां विरोहितामन्तर्हितामिति यावत् । अत एवापरिस्फुटमव्यक्तं विभाव्यमाना ज्ञायमाना अवयवा यस्याः । अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा । तुलनीय—चीनांशुकं—संतानकाकीर्णप्रदापथं तच्चीनांशुकैः कल्पितकेतुमालम् । कुमार० ७।१३

पञ्चेति । पञ्चमहाभूतमयं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशरूपं द्रव्यात्मकं अङ्गनिष्पादने शरीररचनायां यान्युपकरणानि साधनानि तेषां कलापं समुदायमपहाय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(अप + ओहाक् त्यागे + क्त्वा तत् स्थाने ल्यप्) परित्यज्य केवलेनैकेन धवलगुणेनोत्पादितां निर्मितामिव। उत्प्रेक्षा। वैशेषिक दर्शनके अनुसार सात पदार्थोंमें गुणका प्रथम स्थान है: 'गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थाः।' द्रव्यका लक्षण है 'समवायिकारणं द्रव्यम्' अथवा 'गुणाश्रयो द्रव्यम्।' द्रव्य नौ हैं—पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव'। इनमें प्रथम पाँच द्रव्योंके समवायसे ही शरीरकी रचना होती है। मानव-शरीरका निर्माण द्रव्यसे होता है न कि गुणसे। पर यहाँ महाश्वेताकी शुभ्रताकी पूर्णतया प्रतीति करानेके लिए बाण असंभाव्य उत्प्रेक्षाका आश्रय लेकर कहते हैं कि महाश्वेताका निर्माण तो मात्र शुभ्रगुणसे मानो हुआ है। तुलनीय—'छिति जल पावक गगन समीरा। पंचतत्त्व यह अधम शरीरा'। तुलसी।

दक्षेति। उद्धता विनयविहीना ये गणाः पाखण्डसमुदायः, तैर्यः कचानां केशानां ग्रह आकर्षणं तस्माद् यद् भयं तेनोपसेवितस्त्र्यम्बकः शिवो यया सा महाश्वेता। दक्षः प्रजापतिविशेषः। 'दक्षस्त्वजायतांगुष्ठाद् दक्षिणाद् भगवानृषिः। ब्रह्मणः पृथिवीपाल शान्तात्मा सुमहातपः।' महाभारत आदि० ६६ अ०। तस्य दक्षप्रजापतेः अध्वरक्रिया यज्ञकर्म तामिव स्थिताम्। अध्वरक्रियापक्षे उद्धृता उद्धता ये गणाः वीरभद्रप्रमथादयस्तैर्यत् कचग्रहणं यज्ञपुरोहितानां तस्माद् यद् भयं तेनोपसेवितस्त्र्यम्बको यया सा अध्वरक्रिया। अत्र श्लिष्टोत्प्रेक्षा श्लिष्टपूर्णोपमा च। दक्षेण शिवो यज्ञेनाकारितस्तेन परमकोपनशीलः शिवः—'महावीरोऽपि रे भद्र मम सर्वगणेष्विह। वीरभद्राख्यया हि त्वं प्रथितिं परमां व्रज। कुरु मे त्वरं कर्म दक्षयज्ञं क्षयं नय।' काशीखण्डम् ८९ अ०। इति पौराणिकी कथा जिज्ञासुभिरनुसंधेया।

रतिमिवेति। मदनेन यो देहो लेपनं तज्जन्यसंताप इत्यर्थः। स एव निमित्तं यस्मिन् कर्मणि। यद् वा मदनेन युक्तो देह इति विग्रहो विधेयः। रतिपक्षे मदनस्य यो देहस्तन्निमित्तं कामशरीरप्राप्त्यर्थम्। महाश्वेतां न पीडयेत् कामो हरस्य प्रसन्नतायां, तस्यामेव च सत्यां रतिरपि स्ववल्लभं प्राप्नुयात्, इत्याशयः। पौराणिकी मदनदेहदाहगाथा तु सुप्रसिद्धैव। हरति दुःखान्, इति हरस्तस्य प्रसादनार्थमागृहीतं सम्यक्तया स्वीकृतं हरस्याराधना सपर्या यया सा ताम्। "मदनस्य देह इव देहो यस्यैवंविधः पुण्डरीकमुनिस्तन्निमित्तं तदर्थ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मित्यर्थो वा" इति भानुचन्द्रेण यद्भणितं तदप्रस्तुतत्वाच्चिन्त्यम् । अत्र 'हर' पदस्य एकस्मिन्नेव समस्तपदे वारद्वयमुपादानं पौनरुक्त्यदोषमुद्भावयति । अलङ्कारश्चोक्तः।

क्षीरोदेति । समुद्रमंथनात् पूर्वं यः सहवास एकत्रावस्थानं तेन परिचिता या हरचन्द्रलेखा शिवललाटगा शशिकला तस्यां योत्कण्ठा दर्शनोत्सुकता तयाकृष्टां क्षीरोदस्य दुग्धसिंधोरधिदेवतामधिष्ठात्रीमिव । लक्ष्मीचन्द्रयोरुभयोरपि समुद्भूति स्थानं क्षीरसागरः । महाश्वेता तु महादेवसमीपे निवसत्यत एव चन्द्रलेखया परिचिता सा ।

इन्दुमूर्तिमिति । स्वर्भानू राहुस्तस्माद् यद् भयं तेन कृतं त्रिनयनस्य शिवस्य शरणागमनं रक्षार्थं गमनं यया सा ताम् । इन्दुमूर्त्तिमिव चन्द्रशरीरमिव । उत्प्रेक्षा उपमायां तु स्वर्भानुः मध्याह्नसूर्यस्तस्माद् भयमातपरूपं तेन कृतं त्रिनयनस्य शरणे गृहे गमनं यया सा । 'स्वर्भानुस्तु तमो राहुः' इति रत्नकोषोऽमरमाला च शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः ।

ऐरावतेति । गजाजिन गजचर्म तस्यावगुण्ठनं परिधानं तस्मिन्नुत्कण्ठितो यः शितिकण्ठः शङ्करस्तेन चिन्तिता समनन्तरमेवोपनता प्राप्ता ताम् । पक्षे गजाजिनाव गुण्ठन उत्कण्ठितो य ईश्वरस्तस्य चिन्तितेनापेक्षयोपनताम् । ऐरावतो महेन्द्रगज स्तस्य देहस्य च्छविमिव विद्यमानाम् । गजासुरको मारनेके पश्चात् शिवने उसके सिक्त चर्मको ओढ़कर नृत्य किया था । ताण्डवके समय वे सदैव गजाजिन की इच्छा करते हैं । तुलनीय—'नृत्यारम्भे हरपशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम् मेघदूत १।३६ । विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।' कुमारसम्भव ५।७८

पशुपतीति । निजस्थानान्मुखाच्च बहिरागत्य कृतमवस्थानं स्थितिर्यया ताम् पशुपतेर्महादेवस्य दक्षिणमुखे यो हासस्तस्य छविमिव । उत्प्रेक्षा । महाश्वेता शिव दक्षिणमुखकी ओर मुख करके बैठी हुई है, अतः उसे दक्षिण मुखकी हँसी कहना नितान्त युक्तिसंगत है ।

शरीरिणीमिति । शरीरिणीम् । नारीरूपेणाविर्भूताम् । रुद्रस्य शिवस्याङ्ग शरीरविलेपनं तदर्थं भूतिं भस्मेव । उत्प्रेक्षा ।

आविर्भूतामिति । हरकण्ठे योऽन्धकारो नीलत्वसाम्यात्तस्य विघट्टनं दूरी

तत्र तु ... प्रकाशम् ... ज्योत्स्नामिव । उत्प्रेक्षा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गौरीति । कृतो देहस्य परिग्रहः स्वीकारो यया सा ताम् । गौर्याः मनः शुद्धिमिव मानसिकपवित्रतामिव । उत्प्रेक्षा ।

कार्त्तीति । मूर्त्तिमतीं कार्तिकेयस्य कुमारस्य षण्मुखस्य यत्र कौमारं शैशवं व्रतं तपस्यादिकं तस्य क्रियामिव । उत्प्रेक्षा ।

गिरीशेति । पृथगवस्थितां देहाद् विनिर्गत्य पृथग् विद्यमानां गिरीशस्य यो वृषभो नन्दी तस्य देहस्य द्युतिमिव । उत्प्रेक्षा ।

आयतनेति । शंकरस्याभ्यर्चनाय पूजनाय स्वयमुद्यतां बद्धपरिकराम् । आयतनं शिवालयं तस्य तरवस्तेषां कुसुमानां समृद्धिमिव । उत्प्रेक्षा ।

पितामहेति । महीतलं भूतलमवतीर्णां पितामहस्य ब्रह्मणस्तपः सिद्धिमिव । उत्प्रेक्षा ।

आदीति । आदियुगे कृतयुगे ये प्रजापतयो मरीच्यादयस्तेषां कीर्त्तिमिव । सप्तलोकाः भूर्भुवः स्वः महः जनस्तपो सत्यमिति तेषु यद् भ्रमणं तेन यः खेदः श्रमस्तेन विश्रान्तां तत्र कृतविश्रामाम् । उत्प्रेक्षा ।

त्रयोमिति । कलियुगेन कलियुगे वा ध्वस्तो दूरोत्सारितो यो धर्मस्तस्माद् यः शोकस्तेन गृहीतो वनवासो यया सा ताम् । त्रयीमिव ऋग्यजुःसामरूपामिव ।

आगामिति । प्रमदारूपेण नारीरूपेणावस्थितां कृतस्थानामागामिनो भाविनो युगस्य कृताख्यस्य बीजानां कलामिव कारणमात्रामिव । उत्प्रेक्षा ।

देहेति । देहवतीं शरीरधारिणीं मुनिजनानां ध्यानसम्पदमिव समाधिसमृद्धिमिव । उत्प्रेक्षा ।

अमरेति । अभ्रगङ्गायाः आकाशगङ्गाया अभ्यागमस्यागमनवेगेन शीघ्रतया पतितां देवलोकाच्च्युताममरगजानां वीथिमिव समूहमिव ।

कैलासेति । दशमुखो रावणस्तेन यदुन्मूलनमुत्पाटनं तस्माद् यः क्षोभस्त्रासस्तस्मान्निपतितां स्रस्तां कैलासश्रियमिव कैलासशोभामिव । 'लक्ष्मीसरस्वतीधीत्रिवर्गसम्पद् विभूतिशोभासु । उपकरणवेशरचनांविधासु च श्रीरिति प्रथिता' । इति मेदिनीकारः ।ः । उत्प्रेक्षा ।

श्वेतद्वीपेति । अन्ये द्वीपास्तेषां द्वीपान्तराणां यदवलोकनं तदर्थं यत्कुतूहलं कौतुकं तेनागतां संप्राप्तां, 'यत्र सर्वमेव वस्तु श्वेतं तच्छ्वेतद्वीप'मिति भानुचन्द्रः । तस्य या लक्ष्मीः श्रीस्तामिव । संसारका विभाजन १८ द्वीपोंमें किया गया है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनमें श्वेतद्वीपकी गणना की गयी है। कहा जाता है कि श्वेतद्वीप क्षीरसागरसे उत्तरमें स्थित है : क्षीरोदधेरुत्तरतः श्वेतद्वीपो महाप्रभः' महाभारत। उत्प्रेक्षा।

काशेति। शरत्समयमुदीक्षमाणां प्रतीक्षमाणां काशकुसुमानां यो विकासस्तस्य प्रभामिव। तुलनीयः 'निवृत्तपर्जन्यजलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेव रेजे' कुमार० ७। 'शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनी। काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम' स्वप्नवासवदत्तम् चतुर्थोऽङ्कः। 'विकसत्काशचामरः' (शरदृतुः) रघुवंशम् ४।१७। 'काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या' रत्नावली १।१, २६। उत्प्रेक्षा।

शेषेति। रसातलमपहाय रसातललोकं विहाय निर्गतां बहिरगतां, शेषो नागराजस्तस्य यच्छरीरं तस्य च्छाया कान्तिस्तामिव। उत्प्रेक्षा।

मुसलेति। मधुमदो मदिरापानजनितमत्तता तेन यद् विघूर्णनं शरीरभ्रान्ति-स्तस्य य आयासः परिश्रमस्तेन विगलितां च्युतां मुसलायुधो बलरामः कृष्णाग्रज-स्तस्य देहप्रभामिव। उत्प्रेक्षा।

शुक्लेति। पुञ्जीकृतां राशीकृतां शुक्लपक्षाणां परम्परामिव संततिमिव। उत्प्रेक्षा।

सर्वेति। सर्वैः हंसैः धवलतया स्वशुभ्रतया कृतः संविभागः विभज्य स्वशुभ्रता-शार्पणं यस्यै ताम्। उत्प्रेक्षा।

धर्मेति। धर्मस्य हृदयाद् विनिर्गतां बहिर्निःसृतामिव। शङ्खादुत्कीर्णामिव टङ्कितामिव। मुक्ताफलादाकृष्टामिवाविर्भावितामिव। मृणालैर्विरचिता अवयवा यस्यास्तामिव। दन्तदलैर्गजदन्तशकलैर्घटितां रचितामिव। इन्दुकराश्चन्द्रकिरणा एव कूर्चकास्तूलिकास्तैः प्रक्षालितामिव धौतामिव। रूपकमुत्प्रेक्षा च।

वर्णेति। वर्णसुधा वर्णनार्थं सुधा धवलं लेपनद्रव्यं तस्याश्छटाभिः पृषद्भिरा-रितां सर्वतः प्रलिप्तामिव। पारदरसस्य रसेन्द्रद्रव्यस्य। 'पारा' इति हिन्दी। धाराभिर्धौतामिव। 'रसेन्द्रः पारदः प्रोक्तः पारतोऽपि निगद्यते' इति तारपालः। पूर्वं पारदरसशब्दयोः पौनरुक्त्यप्रतीतेः पश्चाद् रसशब्दस्य द्रवार्थे पर्यवसानात् पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः उत्प्रेक्षा च। अमृतस्य ये फेनाः पिण्डास्तैः पाण्डु-कृतामिव धवलितामिव।

रजतेति। रजतस्य रौप्यस्य द्रवो रसस्तेन निर्मृष्टां प्रोञ्छितामिव। चन्द्रमण्ड-लादुत्कीर्णामिव, उत्कीर्य बहिःकृतामिव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुटजेति । कुटजो गिरिमल्लिका, कुन्दो माघभवं धवलपुष्पम्, सिंदुवारो निर्गुण्डी एतेषां कुसुमानां छवयस्ताभिरुल्लासितामुद्भासितामिव । उत्प्रेक्षा ।

इयत्तामिति । धवलिम्नः श्वेतिम्नरियत्ताम्—इदं प्रमाणस्येवांस्तस्य भावस्तत्ता ताम् । परमावधिमिव । उत्प्रेक्षा ।

स्कन्धेति । अत्र तृतीयान्तबहुवचनपदानि 'जटाभि'रिति पदस्य विशेषणानि । स्कन्धे स्कन्धदेशेऽवलम्बितुं शीलं यासां ताभिः । स्कन्धप्रदेशपर्यन्त प्रलम्बमानाभिरित्यर्थः । उदय उदयपर्वतस्तस्य तटं शिखरं तत्र गतस्तस्मादर्कबिम्बात् सूर्यमण्डलादुद्धृत्य निष्कास्य बाला या रश्मयस्तासां प्रभाभिर्निर्मिताभी रचिताभिरिव । उन्मिषन्ती प्रस्फुरन्ती या विद्युत् तस्यास्तरलं चलं तेजस्तद्वत् ताम्राभिस्तथाचिरं भवः कृतं यत्स्नानं तस्मादवस्थिता विरला स्वल्पा ये वारिकणाः नीरबिन्दवस्तेषां भावस्तत्ता तया । प्रणामे नमनसमये लग्नानि पशुपतेश्चरणभस्मचूर्णानि यासु ताभिरिव जटाभिरुद्भासितो देदीप्यमानः शिरोभागो यस्याः सा ताम् । उदयतट' इत्यादौ, उत्प्रेक्षा । 'उन्मिषद्' इत्यादौ, उपमा ।

जटेति । उत्तमाङ्गेन शिरसा जटापाशे जटाजूटे ग्रथितं गुम्फितं मणिमयं नाम्नः शिवनाम्नोऽङ्कश्चिह्नं यत्र तथोक्तम्, ईश्वरस्य शङ्करस्य चरणद्वयमुद्वहन्तीं धारयन्ती भक्त्याधिक्येन ।

रवीति । रविरथस्य तुरगाणामश्वानां खुरमुखैः खुराग्रैः क्षुण्णानां विदारितानां नक्षत्राणां यः क्षोदश्चूर्णस्तद्वद् विशदेन धवलेन भस्मनालङ्कृता ललाटपट्टिका यस्यास्ताम् । अतएव शिखरशिलयाश्लिष्टा शशाङ्ककला चन्द्रलेखा यस्यास्तां कुलराजस्य हिमाचलस्य मेखलां नितम्बमध्यभागमिव स्थिताम् । अत्र पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम् 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृत'मिति स्मरणात् । चन्द्रलेखया विभूतितिलकस्य, शुभ्रप्रस्तरेण सह ललाटपट्टस्य मेखलया च कन्यायाः सादृश्यादुत्प्रेक्षा ।

अतुलेति । अतुला अनुपमेया या भक्तिः । पूज्येष्वनुरागविशेषः भक्तिरिति किरातटीकायां मल्लिनाथः । तया प्रसाधितया अलंकृतया प्रसन्नया वा लक्ष्यीकृतं ध्यानावलम्बनीकृतं लिङ्गं शिवलिङ्गं यया सा तया, द्वितीययापरया पुण्डरीकमालयेव त्रिभुवननाथं शिवं संभावयन्तीमर्चयन्तीम् । उत्प्रेक्षा ।

अनवरतेति । अनवरतं सततं यद्गीतं तेन परिस्फुरितं यदधरपुटं तद्वशान्मुखा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्निष्पतद्भिर्दशनांशुभिर्दन्तच्छविभिर्गौरीपतिं शिवं पुनरिव एकदा पूजार्थं
स्नपितत्वात् स्नपन्तीम्। कथंभूताभिश्छविभिरित्येतदाह—अतिशुचिभिरतिप
त्राभिः, शुद्धहृदयस्य मयूखैः किरणैरिव, मूर्त्तिमद्भिः, गीतगुणैरिव स्वरैः सङ्गी
स्वरैरिव, स्तुतिवर्णैरिव। उत्प्रेक्षा।

अतिति। अतिविमलैरिति मुक्ताफलैरिति पुरो निहितस्य विशेषणम्। पि
महस्य ब्रह्मणो मुखादाकृष्टैः साक्षाद् वेदानामर्थैरिव ग्रन्थनतां गुम्फनतामुपग
प्राप्तैः गायत्र्याः वर्णैरिवाक्षरैरिव। वर्णाः ब्रह्माभिन्नतया निर्मला अतएव साम
मुपयुज्यते। नारायणस्य नाभिपुण्डरीकं नाभिकमलं तस्य बीजैरिवोद्धृतैः, त
त्मानं करस्पर्शेन जपकाले तत्करस्पर्शेन पूतं पवित्रं कर्त्तुमिच्छद्भिः, तारका
नक्षत्ररूपं धृत्वागतैः सप्तर्षिभिर्मरीच्यादिभिः काश्यपादिभिर्वा। आमलक्याः धा
यत् फलं तद्वत् स्थूलैः मुक्ताफलैरुपरचितेनाक्षवलयेन जपमालिकयाधिष्ठितः आ
[illegible] यस्यास्ताम्। अतएव परिवेषः परिधिस्तेन परिगतं परिवृत्तं चन्द्रम
यस्यां तां पौर्णमासीनिशामिव। अत्र मौक्तिकाक्षवलयतत्स्थानीयपरिवेषयोः परस
साम्यं तस्या मुखस्य चन्द्रसाम्यं तस्याश्च पौर्णमासी साम्यम्। अतएवात्र श्रौत्युप
आमलकीफलस्थूलैरित्यत्र लुप्तोपमा। पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गं च। अन्यत्रोत्प्रेक्षा

सप्तर्षि—मंडलके ऋषियोंके नामोंमें वैमत्य है :

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिनः॥

—महाभारत : शान्ति

काश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः।
विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुन्धती॥

—वही : अनुशासन

मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्चेति सप्तैते ज्ञेयाश्चित्रशिखण्डिनः॥

अधोमुखेति। हरस्य शिरस्तत्र कपालं हरशिरःकपालम्, अधोमुखं च
हरशिरःकपालं च तस्य मण्डलं तद्वदाकारो यस्य तेन। मोक्षस्य द्वारे स्था
यः कलशो घटस्तस्येव कान्तिर्यस्य तेन स्तनयुगलेनातएव—एकं यद् हंस
तेन सनाथाधिष्ठिता या तां गङ्गामिव। अत्र "अधोमुखकृतशिरः" इत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मोक्षपुरे'त्यादौ च लुप्तोपमा। काव्यलिङ्गं पदार्थहेतुकम्। तथा हंसयुगलेन कुचद्वयस्य गङ्गया च कन्यकायाः साम्यमिति श्रौत्युपमा। कपालपदमत्र जुगुप्सा-व्यञ्जकत्वेनाश्लीलतामावहति। वर्णन करनेकी झोकमें कवि स्तनोंकी उपमा कपालकी गोलाईसे देता है, जो सौन्दर्यके स्थानपर जुगुप्साकी सृष्टि करता है। जलपूर्ण घटोंको दरवाजेके दोनों ओर रखना शुभदायक माना जाता है। तुलनीय—'मणिमयमङ्गलकलशयुगलाशून्येन' 'द्वारदेशेन विराजमानं……सूतिका-गृहमपश्यत्।' सूतिकागृहवर्णनम्।

गौरीति। गौरीसिंहो मनस्तालस्तस्य सटा जटा तन्मयेनेव तद्विकारेणेव निर्मितेन। चामरस्य वालव्यजनस्याकृतिरिव मनोहराकृतिर्यस्य तेन। तथा स्तन-युगलस्य मध्ये निबद्धो ग्रन्थिर्यस्यास्तेन। कल्पतरुलतावल्कलेन देवतरुवल्कलेन कृतमुत्तरीयस्य कृत्यं यया सा ताम्। उत्तरीयस्थाने तदेव परिदधानामिति भावः। 'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्'। इत्यमरः। 'चामररुचिराकृति' इत्यादौ लुप्तोपमा। अन्यत्रोत्प्रेक्षा।

अयुग्मेति। अयुग्मलोचनः शिवस्तस्य सकाशात् समीपात् प्रसादः प्रसन्नता तेन लब्धेन, चूडामणिभूतस्य चन्द्रस्य मयूखजालेन किरणसमूहेनेव स्थितेन, मण्डलीकृतेन वर्त्तुलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण यज्ञोपवीतेन पवित्रीकृतः कायः शरीरं यस्यास्ताम्। उत्प्रेक्षा। व्रते स्थितायाः कन्यकायाः वल्कलयज्ञोपवीतादिधारणम्। पहले नारियोंको यज्ञोपवीत धारण और वेदाध्ययन करनेका अधिकार था। जैसा वृद्धहारीतका कथन है :

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
उपदेशं च तासां हि सवित्रीवाचनं तथा॥

हर्षचरितमें सरस्वती भी यज्ञोपवीत धारण किये हुए वर्णित की गयी हैं।

आप्रपदेति। पादस्याग्रं प्रपदं तन्मर्यादीकृत्य आप्रपदं, तत्प्राप्नोतीती, आप्र-पदीनम्। तेन पदतलपर्यन्तव्यापकेन। आप्रपदीनमित्यत्र। आप्रपदं प्राप्नोति। इति खच्। स्वाभावेन सितः श्वेतस्तेन, ब्रह्मासनस्य यो बन्धस्तेनोत्तानमूर्ध्वमुखं यत्पादतलं, तस्य प्रभायाः परिष्वङ्गात् संपर्कात् लोहितायमानेन, दुकूलपटेन क्षौमवस्त्रेण प्रावृत आच्छादितो नितम्बो यस्यास्ताम्। अत्र शुक्लवस्त्रस्य लोहित-गुणग्रहणात् तद्गुणालङ्कारः। 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः'। स्यात्त्रिष्वाप्रपदीनं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत् प्राप्नोत्याप्रपदं हि यत्'। इति चामरः। 'ब्रह्मासनं तदा वक्ष्ये यत्कृत्वा ब्राह्मणो भवेत्। एकपादमुरौ दत्वा तिष्ठेद् दण्डाकृतिर्भवेत्' इति रुद्रयामले।

यौवनेनेति। स्वकाल उचितसमये सेवावेलायां वापसर्पतीत्येवंशीलेन। 'स्वसमयप्रादुर्भूतेन स्वसेवावसरोपस्थितेन च' इति बालबोधिनी। निर्विकारं कामविकाररहितं क्रोधादिविकारशून्यं च यथा स्यात्तथा विनीतेन शिक्षितेन यौवनेन शिष्येणेवोपास्यमानाम्। पूर्णोपमा।

लावण्येनेति। कृतं पुण्यं येन तेनेव स्वच्छात्मना विशदमानसेन लावण्येन परिगृहीतामधिष्ठिताम्। उत्प्रेक्षा।

रूपेणेति। रुचिरे लोचने यस्य तेन। पक्षे रुचिरं सुन्दरं लोचनं दर्शनं यस्य यत्र वा तेन। विगतं दूरङ्गतं चापलं यस्य यत्र च तेन। आयतनमृगेण मंदिरहरिणेनेव रूपेण निषेविताम्। पूर्णोपमा।

[illegible]नेति। सूक्ष्मा याः शङ्खखण्डिकाः शङ्खदलानि तेषां तद् विशिष्टानि वा यान्यङ्गुलीयान्यंगुलिविभूषणानि तैरापूरितांगुलयो यस्य तेन। दक्षिणकरेणेत्यस्य विशेषणम्। त्रिपुण्ड्रकात् तिलकविशेषादवशेषं शिष्टं यद्भस्म तेन पाण्डुरः श्वेतस्तेन। अथवा त्रिपुण्ड्रकायावशिष्टं यद्भस्म तेन पाण्डुरस्तेनेति समासयोजना। प्रकोष्ठे रत्निमणिबन्धयोर्मध्ये। कलाचिकेति भानुचन्द्रः। बद्धो यः शङ्खस्तस्य खण्डकस्तेन। नखानां मयूखैः किरणैः दन्तुरतयोच्चतया। गृहीतो दन्तमयकोणो वीणावादनसाधनं येन तेन दक्षिकरेणोत्सङ्गगतां क्रोडे निहितां दन्तमयीं दन्तप्रचुरां वीणां स्वसुतामिवास्फालयन्तीं वादयन्तीम्। अत्र पूर्णोपमा, काव्यलिङ्गम्, उत्प्रेक्षा च। 'कोणो वीणादिवादनम्।' इत्यमरः। 'प्रकोष्ठमन्तरं विद्यादरत्निमणिबन्धयोः इति कात्यः।' वक्रा ललाटगास्तिस्रो भस्मरेखा त्रिपुण्ड्रकम्' इति हारावली।

स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्याद् धृत्वा चैवं तु भस्मना।
देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्वपापापनुत्तये॥

—आचारमयूखोद्धृतं ब्रह्माण्डपुराणे

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः॥

—आचारमयूखोद्धृतः कात्याय[न]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद् विद्वान् सर्वकल्मषनाशनम् ॥

उत्सङ्गगतां वीणाम् : तुलनीय—

'उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य ! निक्षिप्य वीणां ।
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ॥' मे० उ० २३

प्रत्यक्षेति । मणिभिर्निर्मिता मण्डपिकायाः स्तम्भेषु लग्ना अतिवैशद्यतया प्रतिविम्बितास्ताभिः । 'यादृशं रूपे तादृशं प्रतिबिम्बे' इत्युक्तेरिति भानुचन्द्रः । विलासवतीभिः आत्मानुरूपाभिः सहचरीभिः सवीणाभिः प्रतिमाभिरुपेतां प्रत्यक्षां गन्धर्वविद्यामिव । उपमोत्प्रेक्षा च ।

गन्धर्व देवलोकके गायक हैं । कहा जाता है कि पूजा करनेपर वे कन्याओं-को मधुर कण्ठ देते हैं । तुलनीय : सोमं शौचं ददावासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम्' । याज्ञवल्क्य ।

स्नपनेति । स्नपनेनाभिषेकेणार्द्रं यल्लिङ्गं शिवमूर्त्तिस्तस्मिन् संक्रान्तं प्रविष्टं प्रतिबिम्बं यस्यास्तस्या भावस्तत्ता तया हेतुना । अत्यन्तं प्रबलोत्कृष्टा या भक्तिः पूज्येष्वनुरागविशेषभावना तयाराधितस्तस्य हरस्य हृदयं प्रविष्टामिव । उत्प्रेक्षा ।

हारेति । हारलतया मौक्तिकमालयेव प्राप्तः कण्ठेन ध्वनिस्थलेन योगः सम्बन्धो यया । 'कण्ठयोगो रागाणामवस्थानविशेषो गीतशास्त्रप्रसिद्धः' इति भानुचन्द्रः । ग्रहाणां पङ्क्त्येन ध्रुवेण गानाङ्गविशेषेण प्रतिबद्धया, तदुक्तं ध्रुवा हि नाट्यस्य प्राणाः । पक्षे ध्रुवः प्रसिद्धो नक्षत्रो यमवलम्ब्य सर्वग्रहकक्षास्थितिः । तु० 'श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम्' भर्तृहरिः । क्रुधया स्त्रियेव रक्ता श्रीविलासादिसमन्विता मुखवर्णा मुखोच्चरिता वर्णा यस्यां तया । पक्षे रक्तस्ताम्रो मुखवर्णो यस्यास्तया । मत्तया मदविह्वलयेव 'घूर्णिता दोलनां प्राप्ता मन्द्रा उरः-प्रदेशोद्भवाः' [मृद इत्यर्थः] 'ताराः शिरः समुद्भवाः (उच्चाः) स्वराः यस्याम्' इति भानुचन्द्रः । पक्षे घूर्णिता भ्रान्ति प्राप्ता मन्द्रा अलसा तारा कनीनिका यस्याम् । उन्मत्तयोन्मादग्रस्तयेव अनेके कृतास्तालाः तालक्रियामानरूपा यस्याम् । पक्षे तालाः करसंयोगाः । मीमांसयेवानेकाभिर्विविधाभिर्भावनाभिर्मूर्च्छनाभिर-नुविद्धया युक्त्या । पक्षे अनेकया भावनया शब्दनिष्ठयार्थनिष्ठया चानुविद्धया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्यूतया। एवं प्रकारया गीत्या विगतं रूपं विरूपम्, विरूपाण्यक्षीणि नेत्राणि यस्य स शिवस्तं देवमुपवीणयन्तीमुपगायन्तीम्। पूर्णा मालोपमा।

ध्रुवा : उत्तमः षट्पदः प्रोक्तो मध्यमाः पञ्चमः स्मृतः।
कनिष्ठश्च चतुर्भिः स्याद् ध्रुवकोऽयं मयोदितः॥
—सङ्गीतनारायण

ग्रहसमूह ध्रुव नक्षत्रपर आधृत रहता है।

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम्॥

ध्रुवा एक विशेष प्रकारकी गीतिको कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं : प्रावेशिकी, नैष्क्रमिकी, आक्षेपिकी, आन्तरा और प्रासादिकी। इन गीतियोंके द्वारा वर्ण्य वस्तु प्रतीक या अन्योक्तिके रूपमें प्रकट होती है। हर्षचरितमें सरस्वती ~~भी शिवस्तवनमें~~ ध्रुवा गीति का प्रयोग करती हैं।

मीमांसाका अर्थ पूर्वमीमांसा या जैमिनीय मीमांसा है। इस शास्त्रमें वैदिक संदर्भोंकी व्याख्या और तदनुकूल नियमोंका विवेचन है। मीमांसामें अनेक 'भावनाएँ' हैं। अर्थसंग्रह में कहा गया है :

भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः।

इस भावनाके दो प्रमुख भेद हैं : शाब्दी भावना, आर्थी भावना। शाब्दी भावना—'पुरुषप्रवृत्त्यनुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः। सा च लिङ्गेनोच्यते, आर्थी भावना—'प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापारः। अर्थसंग्रहः ४–५

जैसे : 'अहरहः स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत' इस वाक्यमें 'सन्ध्यामुपासीत' भावना है, और यह भावना पुरुषके प्रवर्तनके अनुकूल विशेष व्यापार है।

अतिमधुरेति। अतिमधुरं प्रियं यद् गीतं तेनावकृष्टैराकृष्य प्रापितैः निश्चलानि कर्णपुटानि येषां ते तैरतएव ध्यानमभ्यस्यद्भिश्चित्तवृत्तिसंरोधाभ्यासं कुर्वद्भिरिव, आबद्धं विरचितं मण्डलं वर्तुलाकारेणावस्थानं यैस्ते तैः, मृगाः वराहाः शूकराः वानराः वारणाः गजाः शरभाः सिंहघातिनः प्राणिविशेषा अष्टपादाः, एते प्रभृतय आद्या येषां ते तैः, वनचरैर्वनप्राणिभिराकर्ण्यमानो गीतेनानुविद्धोऽनुस्यूतो विपञ्च्या वीणाया घोषः शब्दो यस्यास्ताम्। उत्प्रेक्षा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमरेति। नभसो गगनादवतीर्णां धरातले समागताममराणामापगां देवनदीं मन्दाकिनीमिव।

दीक्षितेति। दीक्षितस्य यज्ञे प्रवर्त्तमानस्य। "नापभाषित वै, इत्यादि श्रुत्या दीक्षितस्यापभ्रष्टवाङ्निषेधादिति बालबोधिनी'।" वाचं वाक्यमिव अप्रकृतां दिव्याम्। पक्षे संस्कृताम्।

त्रिपुरेति। त्रिपुरारेः शिवस्य शरशलाका बाणयष्टिकेव तेजोमयीं तेजः-प्रचुराम्।

पीतेति। पीतममृतं यया तामिव, विगता तृष्णा संसारविषयकवासनाजन्य-लोभो यस्यास्तामिव। पक्षे तृष्णा पिपासा।

ईशानेति। ईशानस्य शिवस्य शिरसः शशिकलामिव, अनुपजातो रागो-ऽनुरागो यस्याः सा तां विरागपूर्णाम्। पक्षे रागो लौहित्यम्।

अमथितेति। अमथितश्चासौ उदधिः समुद्रस्तस्य जलसंपदमिव, अन्तर्मनसि प्रसन्नां सांसारिकपदार्थविकाररहितामिति भावः। पक्षेऽन्तः प्रसन्नां कालुष्यशून्य-मध्याम्।

असमस्तेति। असमस्ता समासरहिता पदवृत्तिः पदरचना तामिव। 'अत्र नत्रा समासप्राचुर्याभावो गम्यते तेन वैदर्भीरीतिमिवेत्यर्थो लक्ष्यते' इति बाल-बोधिनी। अद्वन्द्वां शीतोष्णादिबाधविरहिताम्। पक्षेऽद्वन्द्वां द्वन्द्वसमासरहिताम्।

बौद्धेति। बौद्धानां बुद्धानुयायिनां बुद्धिमिव शास्त्रसमयमिव। निर्गत आलम्बो यस्यास्तां निराश्रयां विषयेष्वनासक्तां वा। बौद्धपदेनात्र माध्यमिका योगाचाराश्च ग्राह्या इति बालबोधिनी। पक्षे निरधिष्ठानाम्। 'ते शून्यवादिनो विज्ञानातिरिक्तं वस्तु नाभ्युपगच्छन्ति। अतस्तन्मते घटपटादिज्ञानस्य विषयो नास्त्येव। तदुक्तम्—सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः। भेदश्च भ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये'। इति च बालबोधिनी।

बौद्ध दर्शनके, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक सम्प्रदायों-में योगाचार और माध्यमिक मतके प्रतिष्ठापक ज्ञानकी उपलब्धिमें किसी संवादी अस्तित्वको नहीं मानते। बौद्ध दर्शनके अनुसार सब कुछ क्षणिक है—'यत् सत् तत् क्षणिकम्' अथवा 'सर्वं क्षणिकम्'। प्रत्येक ज्ञानका कोई-न-कोई आलम्बन होता है, परन्तु बौद्धोंके अनुसार जो भी हमने अभी-अभी जाना या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखा, वह क्षणभर पश्चात् वही नहीं रहा जो क्षणभर पूर्व था। उनके अनुसार आशय अथवा सन्तान ही शाश्वत हैं।

वैदेहीति। विदेहस्यापत्यं स्त्री वैदेही जनकपुत्री सीता तामिव, प्राप्तो ज्योतिषो परब्रह्मणि प्रवेशो यया, कृतब्रह्मसाक्षात्कारामित्यर्थः। पक्षे प्राप्तो ज्योतिषि परीक्षार्थं वह्नौ प्रवेशो यया।

द्यूतेति। द्यूतस्य कला विज्ञानं तत्र कुशला चतुरा तामिव वशीकृतान्यक्षाणीन्द्रियाणि यया। पक्षे वशीकृतमक्षहृदयमक्षविद्या रहस्यं यया, अथवा वशीकृतमक्षैः पाशकैर्हृदयं यस्याः।

महीति। महीमिव पृथिवीमिव, जलेन भृतः पुष्टो देहो यस्याः सा ताम्। पक्षे तु जलेन भृतो वेष्टितो देहो यस्यास्ताम्।

महाश्वेताका निर्माण जलसे हुआ है: तुलनीय: 'तस्माद् वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः। आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नमन्नात् पुरुषः'। तैत्तिरीयोपनिषद्।

हिमेति। हिमसमयः शीतकालस्तस्य दिनमुखं प्रभातं तस्य लक्ष्मीः श्रीस्तामिव। परिगृहीतः स्वीकृतो व्रतानुरोधाद् भास्करस्यातपो सूर्यस्यालोको यया ताम्। 'तपस्विनां सूर्यातपग्रहणं महाफलाय इति श्रुतेः' इति भानुचन्द्रः। पक्षे परिगृहीतो भास्करातपः तेजः प्रकाशः यया।

आर्येति। आर्या छन्दोविशेषस्तामिव, समुपात्ता गृहीता यतिगणस्तपस्विजनस्तस्योचिता योग्या मात्रा परिच्छदो यया। पक्षे यतिर्विश्रामस्थानं, गणा मगणादयस्तेषामुचिता मात्रा यस्याम्। आर्यालक्षणन्तु:

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽर्या॥

मात्राका अर्थ कन्यका—पक्षमें धन, संपत्ति है! तुलनीय: 'शून्यमठिकायां मात्रां न मुञ्चति' पंचतंत्र।

आलिखितेति। आलिखितां चित्रितामिव, अचले पर्वतेऽवस्थानं यस्यास्ताम्। पक्षे अचलं स्थिरमवस्थानं यस्यास्ताम्।

अंशुमयीति। अंशुमयीं तेजोमयीमिव, तनुच्छाया देहकान्तिस्तयानुलिप्तं व्याप्तं भूतलं यया ताम्। पक्षे तनुरल्पा छाया तयानुलिप्तं भूतलं यया ताम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्ममेति। निर्गतो ममकारो ममत्वबुद्धिर्यस्यास्ताम्। यद् वा 'मम' इत्यव्ययपदं ममतावाचि तद् रहितां निःस्पृहामित्यर्थः। निर्गतोऽहंकारोऽभिमानो यस्यास्ताम्। निर्गतो मत्सरो गुणेष्वसूया यस्यास्ताम्। न विद्यते मानुषस्याकृतिर्यस्यास्ताम्। दिव्यामिति भावः। दिव्यत्वाद् दिव्यस्वरूपतया परिज्ञायमानं वयोऽवस्थाविशेषस्तस्य परिमाणं मानं यस्यामित्थंभूतामपि, अष्टादशवर्षदेशीयामिव अष्टादशवयस किंचिन्न्यूनवर्षीयामिव। 'ईषदसमाप्तौ कल्पव् देश्यदेशीयरः।' इति देशीयर्प्रत्ययः। प्रतिपन्नं प्रतिपत्त्या युक्तं गृहीतं पाशुपतस्य व्रतं यया तां कन्यकां चन्द्रापीडस्तारापीडतनूजो ददर्श।

इह 'दीक्षितवाचम्' इत्यारभ्य 'अंशुमयीम्' इति पर्यन्तं पूर्णोपमा।

(२) तत इति। तत अलोकसामान्यकुलकन्यकादर्शनानन्तरम्, अवतीर्य तुरगात्, तरोः शाखायां तुरङ्गममिन्द्रायुधनामानं समुद्रजमश्वं बद्ध्वा, अवतीर्य तत्समीपमागत्य, भक्त्या श्रद्धया भगवते परमैश्वर्यधारकाय त्रिलो[illegible]शिवा[illegible] प्रणम्य, अविद्यमानो निमेषो यस्य तदनिमेषं अनिमेषं पक्ष्म यस्य तत् तेन। निमेषरहितरोम्णा। निश्चलं यथा स्यात्तथा निबद्धं लक्ष्यं येन। चक्षुषा तामेव दिव्ययोषितं परमरम्यरमणीं पुनर्भूयो निरूपयामास, विवेचकदृष्ट्या विलोकयामास।

उदपादीति। तस्याः पूर्ववर्णितकन्यायाः रूपसम्पदा सौन्दर्यसमृद्धया, कान्त्या देहदीप्त्या, प्रशान्त्या चाविर्भूतः प्रकटितो विस्मयो यस्य तस्य, अस्य चन्द्रापीडस्य मनसि उदपादि, इयं वृत्तिः सञ्जाता। का सा विचारपद्धतिः समायाता या तस्य चित्ते तामाह : जगति जन्तूनां साधारणजीवानां वृत्तान्तान्तराणि विविधाः वृत्तान्ता असमर्थितोपनतान्यतर्कितोपस्थितानि, आपतन्ति 'अहो' इत्याश्चर्ये।

तथाहीति। तथाहि मया मृगयायां, यदृच्छा स्वेच्छा तया, निरर्थकमनुबध्नतानुगच्छता तुरङ्गमुखमिथुनं किन्नरयुगलमतिमनोहरोऽतिसुन्दरो मानवानामगम्योऽगोचरो दिव्यजनानां सञ्चरणं तत्रोचितो योग्योऽयं प्रदेशो वीक्षितो दृष्टः। अत्र सलिलं जलमन्वेषमाणेन, सिद्धाश्च ते जनास्तैरुपस्पृष्टं सेवितं जलं यस्य तत् सरोऽच्छोदतडागं सरोवरं दृष्टम्। तस्याच्छोदसरोवरस्य तीरं तस्य लेखायां पंक्त्यां विश्रान्तेण, अमानुषं दिव्यं गीतमाकर्णितम्। तच्चानुसरता मानुषाणां दुर्लभं दर्शनं यस्याः सा, इयं दिव्यकन्यका आलोकिता।

नहीति। अस्या दिव्यतां प्रति मे मम नहि संशीतिः सन्देहः, आकृतिरेवा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानुषतामनुमापयति। एवंविधानामेतावन्मधुरहृद्यानां गन्धर्वा देवगायकास्तेषां ध्वनेर्नादस्य विशेषाणां मर्त्यलोके भूलोके कुतः संभूतिरुत्पत्तिः। तत् कारणाद् यदि सहसाकस्मात् मे मन दृष्टिपथान् नापयाति न दूरं गच्छति, कैलासस्य शिखरं शृङ्गं वा नारोहति, गगनतलं वा नोत्पतति, नभसि वा न गच्छति ततः का त्वं किमभिधाना किन्नामधेया किमर्थं कस्मै प्रयोजनाय वा प्रथमे वयसि व्रतं प्रतिपन्नेति सर्वमेतद्, एनामुपसृत्य पृच्छामि। अतिमहान् अयमवकाश आश्चर्याणां विस्मयस्य स्थानमेतदतिमहद् इति, अवधार्य निश्चित्य तस्यामेव स्फटिकमण्डपिमायामन्यतम-मेकतमं स्तम्भमाश्रित्य गीतस्य समाप्तेरवसरं प्रतीक्षमाणस्तस्थौ।

(३) अथेति। अथ गीतस्यावसानं समाप्तिस्तस्मिन् सति मूकीभूता क्वणन-रहिता वीणा यस्याः सा, अतएव प्रशान्तम् मधुकराणां भ्रमराणां मधुरं प्रियं रुतं शब्दो यस्या एवंभूता कुमुदिनीव। ततस्तत्स्थानात् समुत्थाय शिष्टतयोत्थाय, प्रदक्षिणीकृत्य प्रदक्षिणां विधाय शिवलिङ्गस्येत्यर्थः। कृतो हराय शिवाय प्रणामो यया सा, परिवृत्य स्वभावेन धवलया शुभ्रया तपसः प्रभावस्तेन प्रगल्भा प्रौढा तया दृष्ट्या विलोकनेन समाश्वासयन्ती समाश्वासनं कुर्वन्तीव, अभयं प्रयच्छन्तीव, पुण्यैः स्पृशन्तीव, तीर्थजलैः प्रक्षालयन्ती शुभ्रां संस्कारवतीमिव कुर्वाणा, तपोभिः पावयन्तीव पवित्रयन्तीव, शुद्धि कुर्वाणेव, वरदानमुपपादयन्तीव सम्पादयन्तीव, पवित्रतां नयन्तीव चन्द्रापीडमावभाषे कथितवती। 'कुमुदिनीव' इत्यत्रोपमा। 'समाश्वासयन्ती'त्यारभ्य 'नयन्तीव'—पर्यन्तमुत्प्रेक्षा।

'उत्पत्ति निधनं चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति'।

स्वागतमिति। अतिथयेऽभ्यागताय स्वागतम्, महान्भागो भाग्यं यस्य संबोधने इमां भूमिं कथमनुप्राप्तः। कथमस्मिन् प्रदेशो समागतः। तत् तस्माद्धेतोः, उत्तिष्ठ, आगम्यताम्। तया महाश्वेतया, एवमित्थंप्रकारेणोक्तः भणितस्तु चन्द्रापीड इति शेषः। संभाषणमात्रैणैव केवलेन संलापेनैवात्मानमनुगृहीतं मन्यमान उत्थाय कृतप्रणामो 'भगवति !...वव्राजेत्यन्वयः। पूर्णोपमा।'

'जन्मप्रभृत्यारभ्य कलङ्को यस्य नो भवेत्।
स्याच्चैदनुपमा कीर्तिर्महाभागः स उच्यते।। इति महाभागलक्षणम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वागतम् : तुलनीय—'स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै। प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनैः स्वागतं व्याजहार।' मेघ० ४ 'स्वागतं देव्यै' मालविकाग्निमित्रम् १ अङ्क।

व्रजंश्चेति। व्रजन् तां कन्यकां दिव्यामनुगच्छन् राजकुमारः समर्थयामास स्वमनसि निर्धारयामास। किं समर्थयामासेत्येतदाह—हन्तेति। हन्त हर्षबोधकमव्ययम्। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः।' इत्यमरः। तावदादौ इयं कन्या मां दृष्ट्वा न तिरोभूता न नेत्रयोरगोचरतां गता। हि तस्मादेव हेतोर्मम हृदि मानसे कुतूहलेन। करणे कर्त्तरि वा तृतीया। प्रश्नस्याशया पदं स्थानं कृतम्। 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इत्यमरः। तपस्विजनानां तपस्विजनेषु वा दुर्लभं दुष्प्रापम्। 'ईषद्दुःसुकृच्छाकृच्छार्थेषु खल्।' इति खल्प्रत्ययः। दिव्यमलोकसामान्यं रूपं सौन्दर्यं यस्यास्तस्या अपि यथा येन प्रकारेणेयं दाक्षिण्यं परच्छन्दानुवर्तनं 'दक्षिणः सरलोदारः परच्छन्दानुवर्तिषु' इति शाश्वतः। तस्यातिशय आधिक्य यस्यां सा, प्रतिपत्तिः उचितकरणानुसन्धानम्, अत्र तु आतिथ्यक्रियाप्रवृत्तिः, अभिजाताभिजनयोग्या, विभाव्यते लक्ष्यते। तथा तेन प्रकारेण अभ्यर्थमाना मया कथनाय अनुरुध्यमाना सती, नियतं नूनमखिलं, आत्मनो निजस्योदन्तो वार्ता। 'उदन्तः साधुवार्तयोः।' इति कोशः। कथयिष्यति, इत्येवं संभावयामि तर्कयामि। एवञ्च कृतमतिः विहितनिश्चयः चन्द्रापीडः पदशतमात्रमिव गत्वा गुहामद्राक्षीत्, इति दूरेणान्वयः। अत्र स्त्रीलिङ्गद्योतकानि द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि 'गुहाम्' इत्यस्य विशेषणानि। निरन्तरैर्घनैः, अतएव दिवापि दिनेऽपि रजनीसमयं रात्रिकालं दर्शयद्भिरिव स्थितैः, तमालतरुभिः अन्धकारितः पुरोभागः अग्रप्रदेशो यस्यास्ताम्। 'दर्शयद्भिरिव इत्यत्र उत्प्रेक्षा।

उत्फुल्लेति। उत्फुल्लानि विकसितानि कुसुमानि येषु तेषु, लतानिकुञ्जेषु लतागहनेषु मन्दं मन्दं कूजतां गुञ्जतां मदेन मधुपानजनितेन मत्ताः ये मधुलिहो भ्रमरास्तेषां विरुतिभिः झङ्कारैर्मुखरीकृतः शब्दायमानः पर्यन्तः प्रान्तप्रदेशो यस्यास्ताम्।

अतिदूरेति। अतिदूरात् पतितुं शीलं यासां तासाम्। धवलानि या शिलातलानि तेषु तैर्वा यः प्रतिघातः स्खलनं तस्मादुत्पतनं तेन फेनिलानां फेनयुक्तानामपां जलानाम्। उत्कोटय, ऊर्ध्वाग्रा ये ग्रावाणः प्रस्तरास्तेषां विटङ्काः शिरोभागाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कपोतपालिकायां तु विटङ्कं पुन्नपुंसकम्' इत्यमरवचनाद् यद्यपि विटङ्कशब्दो गृहप्रान्तरक्षितपक्षिस्थानवाची तथाप्यत्र लक्षणयोर्ध्वभाग एव । तैर्विपाट्यमानैः दीर्यमाणैः । उच्चरन्तः स्खलेनान्मुखराः ध्वनयः शब्दा येषु तैः, अवशीर्यमाणो दलनां प्राप्यमाणो यस्तुषारो हिमं तस्य शिशिराः शीतलाः शीकराः वारिकणास्तेषामासारो वेगवान् वर्षो येषां तैः प्रस्रवणैर्गिरिनिर्झरैः, आवध्यमानाः सञ्जायमाना नीहाराः सलिलकणा यस्यां ताम् ।

अत्र स्वभावोक्तिः, तुषारशिशिरपदयोः समानार्थतया पौनरुक्त्यप्रतीतेरनन्तरं तुषारवत् शिशिरा इति भेदेन पुनरुक्तवदाभासश्च ।

हिमेति । हिमं च हारो मुक्ताहारश्च हरहारश्च तद्वद्धवलैः । उभयतः द्वारपार्श्वद्वये क्षरद्भिः स्रवद्भिः निर्झरैः कारणभूतैः । द्वारेवलम्बितो यश्चलन् चामराणां बालव्यजनानां कलापः समूहो यस्यास्तामिव उपलक्ष्यमाणां विलोक्यमानाम् । उत्प्रेक्षा ।

अन्तरिति । अन्तरभ्यन्तरप्रदेशे स्थापितं मणिमयकमण्डलूनां मण्डलं यस्यां ताम् ।

वर्णनकी झोंकमें यहाँ बाण औचित्य भूल जाते हैं । महाश्वेताके पास मणिनिर्मित कमण्डलुओंका समूह कहाँसे आ गता ? वह अपने घरसे कभी कमंडलु नहीं ले आती । 'तत्प्रीत्या तं कमण्डलुमादाय' से इसका संकेत मिलता है कि पुंडरीककी मृत्युके पश्चात् महाश्वेताने उसका कमंडलु ले लिया । अपने प्रियकी वस्तुओंको सभी स्मृति रूपमें रख लेते हैं । परन्तु पुंडरीकके कमंडलुको बाणने मणिमय नहीं कहा, अतः मणि शब्दका प्रयोग उन्हें नहीं करना चाहिए था । इसके पूर्व बाणने महाश्वेताका एक विशेषण दिया है—'आर्यामिव समुपात्तयतिगणोचितमात्रान्' अतएव 'मणिमय' के परित्यागके साथ-साथ 'मंडल' शब्दका भी परित्याग कर देना चाहिए । यहाँ यह भी नहीं सोचा जा सकता कि वहाँ बहुतसे कमंडलु रहे होंगे और उनमें कुछ मणियोंके भी बने हो सकते हैं ।

एकान्तेति । एकान्ते एक प्रदेशे अवलम्बिता स्थापिता योगपट्टिका योगाभ्यासाय योगिभिर्धार्याः पट्टविशेषाः यस्याम् । तदुक्तं सिद्धान्तशेखरे—

त्रिविधं योगपदकमाद्यं व्याघ्राजिनोद्भवम् ।
द्वितीयं मृगचर्माढ्यं तृतीयं तन्तुनिर्मितम् ।
चतुर्मात्रप्रविस्तारं दैर्घ्येण यज्ञसूत्रवत् ॥, इति बाल०

विशाखिकेति । विशाखिका शिक्यभेदः 'भूमिशलाकामध्ये...लोहयष्टि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूपा' इति भानुचन्द्रः । तस्याः शिखरे उपरिदेशे निबद्धं नालिकेरफलस्य वल्कलं तन्मयं धौतं क्षालितमुपानहोः युगलम् । 'नारिकेलस्तु लाङ्गली' इत्यमरः । तेनोपेताम् ।

अवशीर्णेति । अवशीर्णं च्युतं यदङ्गभस्म तेन धूसरं मलिनं यद् वल्कलशयनीयं वल्कलमयी शय्या तेन सनाथो युक्त एकदेशो यस्यास्ताम् ।

इन्द्विति । इन्दुमण्डलेनेव स्थितेन, टङ्केन प्रस्तरविदारणास्त्रेण उत्कीर्णं संतक्ष्य रचितं तेन, शङ्खमयेन भिक्षाकपालेन भिक्षाभाजनेन अधिष्ठिताम् । उपमा ।

सन्निहितेति । सन्निहिता समीपे स्थिता भस्मनो रक्षणार्थमलाबुः सुषिरा तुम्बिका यस्यां तां गुहामद्राक्षीत् ।

तस्या इति । तस्याश्च द्वारि····समुपस्थितां कन्यकामवादीदिति वाक्ययोजना। तस्याः गुहायाः द्वारि यच्छिलातलं तस्मिन्नुपविष्टश्चन्द्रापीडः, वल्कलमयं शयनं तस्य शिरोभागे विन्यस्ता स्थापिता वीणा यया ताम्, ततः वीणास्थापनानन्तरं पर्णपुटेन द्रोणेन निर्झरात् प्रस्रवणात् । आगृहीतमात्तमर्घ्यसलिलमादाय समुपस्थितां तां कन्यकामवादीत् । किमुवाचेत्येतदाह अलमिति । अतियन्त्रणया सक्लेशप्रयत्नेनालम्, मत्कृते नहि करोतु भवती खेदानुभवमिति भावः । अतिप्रसादेन अनुग्रहातिशयेनालं कृतम्, भगवति ! तपोरूपैश्वर्यशालिनी ! प्रसीद प्रसन्नतां प्राप्नुहि । अयमत्यादरो मत्सम्बन्धे विमुच्यतां परित्यज्यताम्, त्वदीयं त्वत्सम्बन्धि आलोकनमपि दर्शनमपि सर्वेषां पापानां प्रशमनं विनाशकमघर्षणमिव पापविनाशकम् 'ऋतञ्च सत्यञ्च' इत्यादि सूक्तमिव पवित्रीकरणायालं पर्याप्तम् । अत आस्यतामुपविश्यताम् । दर्शनमात्रेणैव भवत्या कृतार्थतां गतं मे जन्म किमतिथिसत्कारसमारम्भेणेति भावः ।

अघमर्षणम्—'ऋतं च सत्यं च' इत्यादि । 'आपो हिष्ठा' इत्यादि सूक्तं च । तच्चान्तर्जले जप्यम् । यथाह बौधायनः 'ऋतं च सत्यं चाघमर्षणं त्रिरन्तर्जले जपन् सर्वस्मात् पापात् प्रमुच्यते' इति । 'पातकोपपातकमहापातकानामेकतमसन्निपातेऽघमर्षणमेव जपेत्' इति हारीतः । अघं पापं मृष्यते उत्पन्नत्वेऽपि नाशनेन कर्माक्षमत्वात् सह्यते एभिः, अब्देवतास्तुतिरूपा ऋचः । उक्तंच—'यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः । तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥' इति बालबोधिनी ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्विति। तया पूर्ववर्णितया कन्यकया अनुरुध्यमानः प्रार्थ्यमानश्चन्द्रापीडः अतिदूरावनतेन विनतेन अतिथिसपर्यामभ्यागतपूजां सप्रश्रयं सविनयं शिरसा प्रतिजग्राह स्वीकृतवान्।

(४) कृतातिथ्येति। कृतम् आतिथ्यमतिथिपूजां यया सा तया। द्वितीये शिलातले उपविष्टा तया। तया कन्यया महाश्वेतयेति शेषः। क्षणमिव तूष्णीं स्थित्वा क्षणमात्रं मौनमाश्रित्य क्रमेण पृष्टश्चन्द्रापीडो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमिथुनस्य यदनुसरणमनुगमनं तत् प्रसंगेनात्मनः सर्वमागमनमाचचक्षे उवाच।

विदितेति। विदितः ज्ञातः सकलो निखिलो वृत्तान्तो यया सा तादृशी, सा कन्यका उत्थाय भिक्षाकपालं भिक्षापात्रमादाय गृहीत्वा च तेषामायतनतरूणां गुहासमीपस्थसिद्धायतनवृक्षाणां तलेष्वधोभागे विचचार भ्रमणं कृतवती।

अचिरेणेति। अचिरेण स्वल्पकालेनैव स्वयंपतितैः प्रकृत्या च्युतैः फलैस्तस्याः भिक्षाभाजनमपूर्यत पूर्णतामगच्छत्।

आगत्येति। आगत्य पुनः परावृत्य च तेषां भिक्षापात्रे स्थापितानां फलानामुपयोगायोपभोगाय नियुक्तवती प्रेरितवती चन्द्रापीडम्।

आसीदिति। तस्य चन्द्रापीडस्य चेतसि मनस्यासीत् अभूत्।

नास्तीति। तपसां तपस्यानां खलु निश्चयेन असाध्यमशक्यं नाम नास्ति न विद्यते। तपसा सर्वं साध्यमित्यर्थः। तथाहि—

'तपस्यतो हि नासाध्यं किंचिज्जगति विद्यते।' नामेति कोमलामन्त्रणे।

किमिति। अतः परं किमाश्चर्यम्, अस्यै तरवोऽपि फलानि प्रयच्छन्ति विषयोऽयमेवाश्चर्यस्य।

यत्रेति। यत्र यस्मिन् प्रदेशे व्यपगता दूरीभूता चेतना चैतन्यं येषां ते सचेतना इव सचैतन्या इव अस्यै भगवत्यै षडैश्वर्यशालिन्यै फलानि समतिसृजन्तः समर्पयन्तः वितरन्त आत्मनोऽनुग्रहं स्वीयसफलतामुपपादयन्ति निष्पादयन्ति। सर्वं तपस्याया एव फलम्। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः स च विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपः।

चित्रमिति। न दृष्टं पूर्वं यस्य अदृष्टपूर्वमविलोकितपूर्वमिदं चित्रमाश्चर्यकरमालोकितं दृष्टम्। चित्रम् तु० 'चित्रं चित्रं वत वत महच्चित्रमेतद् विचित्रम्' 'चित्रं बधिरो नाम व्याकरणमध्येष्यते'। इति अधिकतरमुपजातः विस्मयः येन सः। 'सुप्सुपा' समासः। चन्द्रापीड उत्थाय तमेव प्रदेशमिद्धायुधमेतन्नामकम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानीय व्यपनीतं दूरीकृतं पर्याणं पल्ययनं यस्य तं नातिदूरे समीपे संयम्य बद्ध्वा निर्झरस्य जले निर्वर्तितः कृतस्नानविधिर्येन स चन्द्रापीडः, अमृतवत् पीयूषवत् स्वादूनि सुरसानि, तानि फलानि उपभुज्य भुक्त्वा, तुषारस्तुहिनं तद्वत् शिशिरं शीतलं प्रस्रवणस्य निर्झरस्य जलमुपस्पृश्य भोजनान्त आचमनं कृत्वा, एकान्ते तावदवतस्थे तावत्कालं तस्थौ यावत् यावत्कालं तयापि कन्यकया महाश्वेतया जलफलमूलमयेषु, आहारेषु प्रणय आदरः कृतः। आहारङ्कृतवतीत्यर्थः।

(५) इतीति। इति इत्थं परिसमापितः पर्याप्तिं नीत आहारो भोजनं यया ताम्। निर्वर्तितः समापितः सन्ध्योचिताचारः सायंकालयोग्यो विधिर्यया ताम्। शिलातले विस्रब्धं सविश्वासं यथा स्यात्तथोपविष्टामासीनाम्। निभृतं निःशब्दं यथा स्यात्तथोपसृत्य समीपमागत्य नातिदूरे निकटे समुपविश्य मुहूर्त्तमिव क्षणमिव स्थित्वा चन्द्रापीडः सविनयं विनयपूर्वकं यथा स्यात्तथा अवादीत् अगदत्—भगवति! देवि। तव प्रसादस्त्वत्प्रसादस्तस्य प्राप्तिस्तया प्रोत्साहितेन प्रगुणीकृतेन कुतूहलेनाकुलीक्रियमाणः व्याकुलतां नीयमान मानुषता मनुष्यता तत्र सुलभः सुप्रापो लघिमा लघुता, अनिच्छन्तमभिलषन्तमपि मां चन्द्रापीडं बलवद् हठात् प्रश्नकर्मणि पृच्छाव्यापारे नियोजयति प्रेरयति।

उपजनयतीति। प्रभोः निग्रहानुग्रहसमर्थस्य स्वामिनः प्रसादलवोऽपि प्रसन्नतालेशोऽपि, अधीरा धैर्यरहिता प्रकृतिः स्वभावो यस्य तस्य जनस्य प्रागल्भ्यं धृष्टतामुपजयति, उत्पादयति। भवत्या कृतेनातिथ्येनैवाहं धृष्टवत् प्रश्नपरम्परां रचयामि, इति भावः।

स्वल्पेति। एकावस्थान एकावस्थितौ स्वल्पापि कालकला कालमात्रा परिचयमुत्पादयति, परिचयं प्रस्तौति। एतावत्कालपर्यन्तमेकत्रस्थितत्वादावयोः परिचयो जात एवेति भावार्थः।

अण्विति। अणुरपि स्वल्पोऽपि, उपचारः सेवा तस्य परिग्रहः स्वीकारः प्रणयं स्नेहमारोपयति। एषु सामान्यादप्राकृतात् प्रकृतस्य विशेषस्य बोधादप्रस्तुतप्रशंसा।

तदिति। तत् तद्धेतोः यदि नातिखेदकरमिव नातिदुःखप्रदायकमिव, ततस्तदा कथनेन मम विचिकित्स्यविषयप्रतिपादनेन आत्मानं स्वमनुग्राह्यं भवत्कृपाविषयं कर्तुमिच्छामि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कतरदिति। मरुतां देवानां, ऋषीणां सदसद्विवेकशालिनां महात्मनां गन्धर्वाणां देवगायनानां, गुह्यकानां यक्षसदृशदेवयोनिविशेषाणां अप्सरसां तिलोत्तमाप्रभृतीनां मध्ये, जन्मना उत्पत्त्या भगवत्या कतरत् कुलं वंशः अनुगृहीतं प्रसादीकृतम्। 'निधिं रक्षन्ति ये यक्षास्ते वै गुह्यकसंज्ञकाः' इति व्याडिः।

किमर्थमिति। वा अथवा कुसुमवत् पुष्पवत् सुकुमारे कोमले नवे नूतने अस्मिन् वयसि अवस्थायां नवीनयौवने, किमथं कस्मै प्रयोजनाय व्रतस्य नियमस्य ग्रहणं स्वीकारः।

क्वेति। इदं वयः नवयौवनं क्व, इदं तपः क्लेशकरो नियमस्वीकारः क्व, वृद्ध वयस्येव तस्यौचित्यत्वात्। तु०—

'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः'। रघु० १

'क्व तेऽन्योऽन्यं यत्नः क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः'।

उत्तररामचरितम् ६।

'क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः'।

शाकुन्तलम् २।

'क्व रुजा हृदयप्रमाथिनी क्व च ते विश्वसनीयमायुधम्'।

मालविकाग्निमित्रम्

'निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः क्व भूपतिनां चरितं क्व जन्तवः'।

किरा० १

इयं सर्वतो मनोज्ञा आकृतिराकारः क्व; अयं च लावण्यस्य सौन्दर्यस्याति आधिक्यं क्व, तथा इयं प्रबलैषणानामिन्द्रियाणामुपशान्तिः शान्तता च उभयत्र विरुद्धसंघटनाद् विषमोऽलङ्कारः।

तदिति। मे मम सर्वं तदद्भुतमाश्चर्यकरमिव प्रतिभाति प्रतीयते।

किं निमित्तमिति। अनेके बहवो ये सिद्धाः साध्याश्च देवयोनिविशेषाः संबाधानि संकुलानि व्याप्तानि, सुरलोका अमरादिदेववृन्दास्तैः तेषां परिभ्र रित्यर्थः। सुभगानि मनोरमाणि दिव्यानि अलोकसामान्यानि च तानि आश्रमपद मुनीनां निवासस्थलानि अपहाय परित्यज्य एकाकिनी असहाया, अमनु मनुष्यविहीनम्, इदं वनं काननं कथं त्वम् अधिवससि निवासं करोषि। वनमि 'उपान्वध्याङ्वसः' इति कर्मणि द्वितीया। सिद्ध—सिद्ध देवयोनिविशेषके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आगत क्रमांक......२५,२......१३१

कहा जाता है कि इनके पास अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता नामकी आठ सिद्धियाँ हैं।

साध्य = साध्य भी सिद्धोंकी भाँति एक विशेष देववर्ग है।

कश्चेति। चकारः समुच्चयार्थकः, अयं कः प्रकारोऽनिर्दिष्टरूपको यत्तैरेव यैरेव तत्त्वैः समस्तप्राणिनां शरीराणि निर्मितानि भवन्ति तैरेवेत्यर्थः, पञ्चभिर्महाभूतैः पृथिव्यादिभिरारब्धं समुत्पादितं शरीरं तवेदं वपुः। ईदृशीमेवंविधां धवलतां गौरवर्णतां धत्ते धारयति। अस्माभिरन्यत्र न दृष्टश्रुतपूर्वं नावलोकिताकर्णितपूर्वं वा अतएव महदाश्चर्यकरम्।

अपनयत्विति। नोऽस्माकं कौतुकं कुतूहलमपनयतु दूरीकरोतु, भवति सर्वमिदमावेदयतु कथयतु निखिलं निजं वृत्तान्तम्।

इतीति। इत्येवंविधयाभिहिता कथिता सा महाश्वेता किमपि अनिर्वचनीयमकथनीयमलोकसामान्यमिति यावत्, अन्तर्मनसि ध्यायन्ती चिन्तयन्ती तूष्णीं मौनं मुहूर्त्तमिव क्षणसदृशम्। अत्र सदृशार्थ इव प्रयोगः, इति भानुचन्द्रः। निःश्वस्य श्वासं मुक्त्वा स्थूलानि च स्थूलानि तैः स्थूलस्थूलैः पृथुलपृथुलैः। अन्तर्गताम् अभ्यन्तरे स्थितां हृदस्य मनसः शुद्धिं पवित्रतामादाय गृहीत्वेव निर्गच्छद्भिर्निःसरद्भिः। नयनाश्रु सर्वतो निर्मलमिति भावः। इन्द्रियाणां प्रसादं प्रसन्नतामिव वर्षद्भिः तपसो रसस्य तपस्यातत्त्वस्य निःस्यन्दधारां स्रवद्भिर्निर्गच्छद्भिरिव। लोचनविषयं नेत्रसम्बन्धिनं धवलिमानं श्वेतिमानं द्रवीकृत्य रसीकृत्य पातयद्भिः स्रवद्भिरिव। अच्छानि च स्वच्छानि चाच्छानि तैः। अतिस्वच्छैरित्यर्थः। अमलं निर्मलं यत् कपोलस्थलं तत्र स्खलितैः अवशीर्णस्त्रुटितो यो हारो मुक्तावली तस्य मुक्ताफलानि रसोद्भवानि तद्वत् तरलः कम्पनः पातो येषां तैः। एतेनोज्ज्वलत्वसाम्यात् क्षरन्मुक्ताफलसाम्यमश्रूणां ध्वनितम्। अनुबद्धा परस्परसंसक्ताः बिन्दवो येषां तैः। वल्कलेन तरुत्वचावृतावाच्छादितौ यौ कुचौ स्तनौ तयोः शिखरौ चूचकाग्रभागौ ताभ्यां जर्जरिताश्चूर्णीकृताः शीकराः कणा येषां ते तैः। एतेन कुचोन्नत्यं काठिन्यं च व्यज्यते। अश्रुभिर्नेत्रजलैः। आमीलिते सङ्कुचिते लोचने नयने यस्याः सा तादृशी कुमारी सती, निःशब्दं यथा स्यात्तथा रोदितुमाक्रन्दितुमारेभे आरब्धवती। अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा। 'मुक्ताफलतरलपातैः' इत्यत्र लुप्तोपमा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(६) तामिति । च समुच्चयार्थे । तां पूर्ववर्णितां कन्यकां प्ररुदितां दृष्ट्वा। चन्द्रापीडस्तत्क्षणमचिन्तयत् । अहो इत्याश्चर्यार्थिकमव्ययम् । व्यसनानि दुःख जनकानि तेषामुपनिपातास्तेषां दुर्निवारता दुर्हेयता । दैवकृतानि दुःखानि निवार यितुं न कोऽपि क्षम इति भावः । यद् यत्कारणादनभिभवनीयामभिभवितुमन र्ह्याम्, ईदृशीमेवंविधविशेषणविशिष्टाम्, आकृतिमपि, आत्मीयां स्ववशंवद कुर्वन्ति ।

सर्वथेति । सर्वथा सर्वप्रकारेणोपतापाः संतापकारिणः क्लेशाः कंचन कंचि दपि शरीरधर्माणं देहिनं न स्पृशन्ति इति तु नापि तु सर्वमेवाभिभवन्ति । 'द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं सूचयतः' इति न्यायाद् द्विनकारप्रयोगः । 'सम्भाव्य निषेधनिवर्तने द्वौ प्रतिषेधौ' इति वामनः, काव्यालङ्कार० ५।१।९

बलेति । हि यस्माद् द्वन्द्वानां सुखदुःखादियुग्मानां प्रवृत्तिः प्राणिषु प्रवर्तनं बलवती । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः ।

इदमिति । मे मनसि, इदमपरमन्यत्, अधिकतरं पूर्वस्मात् कौतुकादधिक मतिमहत् कौतुकमाश्चर्यजनकमित्यर्थः । अस्याः कन्यकायाः वाष्पसलिलमश्रुजलं तस्य पातेन पतनेनोपजनितमुत्पादितम् ।

नेति । एवंविधाः मूर्तयोऽल्पीयसा लघुना केनचिदपि कारणेन न क्लेशक्रिया विषयीक्रियन्ते ।

न हीति । हि तथाहि क्षुद्रस्तुच्छो यो निर्घातो भूभावकस्मात् पवनपातेन भिघातस्तेनाभिहता ताडिता ।

'वायुना निहतो वायुर्गगनाच्च पतत्यधः ।
प्रचण्डघोरनिर्घोषो निर्घात इति कथ्यते' ॥
'अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन्स्वस्वनं करोति' ।

—वराहमिहिरः ।

वसुधा पृथ्वी न चलति । अर्थान्तरन्यासः ।

संवर्धितेति । संवर्धितं वृद्धिं प्राप्तं कुतूहलमाश्चर्यं यस्य सः चन्द्रापीडः । शोक खेदस्य स्मरणं तस्य हेतुतां कारणतामुपगतं प्राप्तमत एव, अपराधिनमात्मान स्वमवगच्छन्, जानन् उत्थाय प्रस्रवणात् निर्झरात् मुखस्य प्रक्षालनार्थमुदक जलमुपनिन्ये समस्थापितवान् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेति । सा कन्यका तु तस्यानुरोध आग्रहस्तस्माद्, अविच्छिन्नं परम्परावाहिबाष्पजलस्य धारा तस्याः संतानः समूहो यस्याः सती । अथवा तस्याः संतानं निरवधिप्रवाहः । किंचित् कषायितं रक्तमुदरमभ्यन्तरं ययोस्ते लोचने नेत्रे प्रक्षाल्य प्रमृज्य वल्कलस्योपान्तेनाञ्चलेन वदनं मुखमपमृज्य मार्जनं कृत्वा दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शनैः शनैः प्रत्यवादीत् प्रत्यवोचत् ।

राजपुत्रेति । राजपुत्र ! अतिनिर्घृणं नितान्तनिर्दयं हृदयं यस्यास्तस्याः । मन्दं भाग्यं यस्यास्तस्याः । पापायाः मम जन्मनः प्रभृति उत्पत्तेरारभ्याश्रवणीयेनानाकर्णनीयेन वैराग्यवृत्तान्तेन अनेन श्रुतेन किं स्यात् ।

तथापीति । तथापि एवं निर्दयत्वेऽपि यदि भवतां मनसि महत् कुतूहलं तत्कथयामि । श्रूयताम् ।

(७) एतदिति । कल्याणे मङ्गलेऽभिनिवेश आग्रहोऽस्यास्तीति तस्य भवतः, एतत्, प्रायेण वारम्वारं श्रुतिविषयं कर्णपथमापतितमेवागतमेव यथा विबुधाः देवास्तेषां सद्मनि गृहे देवलोक इत्यर्थः । अद्भ्यः सरन्ति, इत्यप्सरसः, 'अप्सु निर्मथनादेव रसात् तस्माद् वरस्त्रियः । उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन् ।' इति रामायणे अप्सरसामुत्पत्तिर्वर्णिता । कन्यकाः सन्ति ।

तासामिति । तासां देवलोकस्थानामप्सरसां चतुर्दशकुलानि सन्ति । एकं........ चतुर्दशकुलानि ।

अत्रेति । अस्मिन्नेव प्रदेशे मुनेर्दक्षकन्यकायाः सेनादीनां पञ्चदशानां भ्रातॄणां गुणैरधिकः षोडशश्चित्ररथो नाम समुत्पन्नः संबभूव ।

स इति । किलेति प्रसिद्धौ । शैशव एव बाल्य एव, त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं सकलं त्रिभुवनं तस्मिन् प्रख्यातः प्रसिद्धः पराक्रमो यस्य सः । समस्ताः ये सुराः देवास्तेषां मौलिमालाः किरीटपङ्क्तयस्ताभिर्लालितं नमस्कारसमये सादरमभिवंदितं चरणमेव नलिनं कमलं यस्य तेन भगवता ।

'उत्पत्तिं निधनं चैव भूतानामगतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥'

आखण्डलेनेन्द्रेण, सुहृच्छब्देन मित्रशब्देनोपबृंहितो वर्धितः प्रभावः कोशदण्डजं तेजो यस्य सः । 'स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्' । स चित्ररथः, असिलतायाः खड्गलतायाः मरीचयः रश्मयस्तस्य निचयः समूहस्तेन मेचकितः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्यामलितस्तेन तादृशेन बाहुना भुजेन समुपार्जितं लब्धं, सर्वेषां गन्धर्वाणां देवगायनानामाधिपत्यं स्वामित्वमाप्तवान् लब्धवान् ।

इत इति । किंचेति चार्थः । इतोऽस्मात् स्थानात्, नातिदूरे समीप एवेत्यर्थः, अस्मात् भारतवर्षात् भरतदेशादुत्तरेणानन्तरेऽव्यवहितान्तरे, किंपुरुषनाम्नि वर्षे क्षेत्रे हेमकूटो नाम हेमकूटाभिधानो वर्षपर्वतो देशविभाजको गिरिः, तस्य चित्ररथगंधर्वाधिपस्य निवास आश्रयस्थानं विद्यत इति शेषः ।

वर्ष—विश्वको विभक्त करनेवाले क्षेत्रोंको वर्ष कहा गया । संसार भरमें नौ वर्ष हैं :—कुरु, हिरण्यमय, रम्यक, इलावृत्त, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किन्नर (अथवा किंपुरुष) और भारत ।

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ।।"

वर्षपर्वत—उन पर्वतोंको वर्षपर्वत कहते हैं जो उपर्युक्त नौ वर्षोंका विभाजन करते हैं । हिमवान्, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृंगी नामके वर्षपर्वत हैं ।

तत्रेति । तत्र तस्मिन् हेमकूटनाम्नि वर्षपर्वते तस्य चित्ररथस्य भुजयुगलेन बाहुभ्यां परिपालितानि सर्वतो रक्षितानि, अनेकानि गन्धर्वाणां शतानि सहस्राणि देवगायनसमूहाः प्रतिवसन्ति । तेनैव नृपतिना चित्ररथेन, चित्ररथस्येदं चैत्ररथं नाम, अतिमनोहरम्, इदं पुरतो वर्तमानं काननं वनं निर्मितम् । इदं चाच्छोदाभिधानमतिमहत् सरः खानितम्, तडाकं निर्मापितम् । अत्रायं च भगवान् भवानीपतिः शिवरूपचरितः, शिवमूर्तिः स्थापितेत्याशयः ।

भवानीपति—'भवस्य स्त्री भवानी, तस्याः पतिः' विग्रह होता है । इस विग्रहमें अर्थ होता है भवकी पत्नीका पति, जो दोषयुक्त है, क्योंकि यह भ्रम पैदा करता है । काव्यप्रकाशकार राजानक मम्मटने इसे एक अन्य उदाहरणमें दुष्ट कहा है । इस प्रकारके प्रयोगोंमें 'विरुद्धमतिकृद्' दोष हुआ करता है ।

अरिष्टाया इति । त्विति पुनरर्थकः । अरिष्टाया अपरायाः दक्षसुतायाः तुम्बुरुप्रभृतीनां, समाने एके उदरे जठरे शयिता इति सोदर्याः सहोदरास्तेषां षण्णां मध्ये जगद् विदितः संसारप्रसिद्धो हंसो नाम गन्धर्वः ज्येष्ठः तस्मिन् द्वितीये गन्धर्वकुले गन्धर्वराजेन चित्ररथेनैवाभिषिक्तोऽभिषेकविषयीकृतः, अतएव बाल्ये शिशुरेव राज्यपदमासादितवान् प्राप्तवान् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपरिमितेति । अपरिमितानामगणितानां गन्धर्वाणां बलं सेना परिवारः परिजनो यस्य तस्य, तस्यापि स एव गिरिरधिवासः निवासस्थलम् ।

यदिति । तत् पूर्वोक्तं, सोमस्य चन्द्रस्य मयूखाः किरणास्तस्मात् सम्भवः समुत्पत्तिर्यस्य तत्, अप्सरसां कुलं तस्माद् वंशात् किरणजालस्य रश्मिसमूहस्य अनुसारेण अनुसरणक्रमेण गलितं क्षरितं तेन, सकलेन समस्तेन, राजनिकरस्य चन्द्रस्य यः कलानां भागानां कलापः समूहः, तस्य लावण्येन सौन्दर्येण निर्मिता रचितेव, अतिगौरवर्णा । त्रिभुवनस्य निवासिनो लोकस्य नयनाभिरामा नेत्रानन्द-दायिका, द्वितीया अपरा भगवती षडैश्वर्यशालिनी गौरी पार्वतीव । हिमकरः शशी तस्य किरणवत् अवदातो गौरो वर्णो यस्याः सा गौरीति नाम्ना कन्यका कुमारी प्रसूता जाता । उत्प्रेक्षा । 'हिमकरकिरणावदातवर्णा' इत्यत्र लुप्तोपमा ।

तामिति । तां गौरीं द्वितीयकुलाधिपतिर्हंसो मंदाकिनी देवापगां क्षीरसागर इव प्रणयिनीमकरोत् ।

सेति । भगवता मकरः केतनं यस्य सः कंदर्पेण रतिमिव । शरत्समयेन घनापगमकालेन कमलिनी पद्मिनीव । हंसेन सह संयोजिता सङ्गमिता तु सा गौरी, सदृशेन समानेन समागमेन संमेलनेनोपजनितामुत्पादितामतिमहतीं गरीयसीं मुदमानन्दमुपगतवती प्राप्तवती । तस्य हंसस्य निखिलानां समेषामन्तःपुराणां तत्रस्थरमणीनां स्वामिनी मुख्या चाभवत् । उपमा चात्रालङ्कारः ।

(८) तयोरिति । तयोस्तादृशयोः सकलगुणाकरयोर्हंसगौर्योरहम्, ईदृशी विगतलक्षणां शुभलक्षणविहीनाः एकैवात्मजा पुत्री, अनेकं यद् दुःखसहस्रं तस्य भाजनं पात्रं केवलं शोकाय शोकैकहेतवे समुत्पन्ना ।

तात इति । अनपत्यतया संतानरहिततया सुतजन्मातिरिक्तेन पुत्रजन्माति-शयानेन महोत्सवेन मम जन्म मदीयमुद्भवमभिनंदितवान् स्तुतवान् । अवाप्ते प्राप्ते च दशमेऽहनि दिने । कृतो यथोचितो यथायोग्यः समाचारो वेदविहितक्रिया-कलापो येन सः । महाश्वेतवर्णत्वान्महाश्वेतेति यथार्थमन्वर्थमेव नाम कृतवान् ।

सेति । साऽहं महाश्वेता पितृभवने तातगृहे बालतया शिशुभावेन, वीणा वल्लकीव कलं मनोज्ञमव्यक्तं मधुरं च प्रलपितु भाषितु शीलं यस्याः सा, गन्धर्वाणां देवगायकानामङ्कादङ्कं सञ्चरन्ती गच्छन्ती, अविदितैरनवगतैः स्नेहशोकयोरायासैः प्रयासैः मनोहरं तत्सत्कारभावाभिव्यक्तात् रमणीयं शैशवमतीतवती ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रमेणेति। क्रमेण परम्परया वसन्ते पुष्पकाले इव मधुमासेन चैत्रमासेन, मधुमासे इव नव-पल्लवेन नूतनकिसलयेन, नवपल्लवे इव कुसुमेन पुष्पेण, कुसुमे इव मधुकरेण भ्रमरेण, मधुकरे इव मदेन, मे मम वपुषि देहे नवयौवनेन पदं स्थानं कृतम्। इह सरस्वतीकण्ठाभरणकृद्भोजराजमते रशनोपमा। साहित्यदर्पणकार-विश्वनाथपञ्चाननमते मालोपमा।

(९) अथेति। अथ अनन्तरमहं मधुमासदिवसेषु वसन्तर्तौ, एकदा अम्बया सहेदमच्छोदं सरः स्नातुमभ्यागममिति दूरेणान्वयः। 'सप्तमीबहुवचनान्तानि पदानि मधुमासदिवसेषु' इत्यग्रेतनस्य विशेषणानि। विजृम्भमाणानि विकसन्ति नवानि नूतनानि नलिनानां कमलानां वनानि येषु तेषु।

अकठोरेति। अकठोरैः कोमलैः चूतकलिकानामाम्रमञ्जरीणां कलापैः समूहैः कृता विहिता कामुकानाम्, उत्कलिका उत्कण्ठा येषु तेषु। चूताङ्कुरस्य मदन-बाणान्यतमत्वात् कामोद्दीपकत्वम्। तदुक्तम्—'अरविन्दमशोकं च चूतं च नव-मल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः'॥ आह च कालिदासः—'अमदयत् सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि'। 'नीते समाप्ति नवचूतबाणे' इति च।

कोमलेति। कोमलोऽतिमृदुर्यो मलयस्तस्य मारुतस्य पवनस्यावतारोऽवतरणं तेन तरङ्गितानि ऊर्मिवत् प्रस्फुरितानि, अनङ्गध्वजानां कामपताकानामंशुकानि वसनानि येषु तेषु। 'वसन्ते मदनमहोत्सवे हि प्रतिगृहं कामिनोऽनङ्गध्वजारोपणं कुर्वन्तीति प्रसिद्धमिति बाल०'।

मदेति। मदेव वसन्तजनितमत्ततया कलिता व्याप्ता या कामिन्यो रमण्य-स्तासां गण्डूषसीधुर्मुखचुलुकित आसवस्तस्य सेकेन सिञ्चनेन पुलकितो रोमाञ्च-सहिताः वकुलाः केसरतरवो येषु तेषु। कविसमयश्चात्र।

'पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः शोकं जहाति वकुलो मुखसीधुसिक्तः।
आलोकितः कुरवकः कुरुते विकासमालोडितस्तिलक उत्कलिको विभाति।'
'स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्।
पादाघातादशोकः तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ॥'
तु०—'मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गपुराणसीधुं नवपाटलं च'।

—रघु० १६।५२

मधुकरेति। मधुकरकुलमेव कलङ्कः श्यामिका तेन कालीकृताः श्यामलीकृताः कालेयकाः जायकास्तेषां कुसुमकुड्मलाः पुष्पकोरकाः येषु तेषु।

अशोकेति। अशोकतरुषु अशोकतरोर्वा ताडनेन कुसुमसमुत्पादनाय चरण-प्रहारैः रणिताः शब्दिता ये रमणीनां सुन्दरीणां मणिनूपुरा मणिनिर्मितपादकरकाः तेषां झङ्कारो मधुरध्वनिस्तेषां सहस्रेण मुखराः शब्दायमाना दिवसाः येषु तेषु।

विकसदिति। विकसन्ति यानि मुकुलानि गुच्छाः। कुसुमानामिति शेषः। तेषां परिमलेनामोदेन पुञ्जितं समवेतं यदलिजालं भ्रमरसमुदायस्तस्य मञ्जुना मनोहारिणा शिञ्जितेन शब्देन सुभगा रमणीया सहकारा आम्रतरवो येषु तेषु। आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः'। इत्यमरः।

अविरलेति। अविरलानि निविडानि यानि कुसुमानि तेषां धूलिः परागः। श्वेत-तासाम्यात्। सैव बालुकापुलिनं तेन धवलितं शुभ्रीकृतं धरातलं भूतलं येषु तेषु।

मध्विति। मधुमदेन पुष्पासवमदेन विडम्बिता विह्वलीकृताः ये मधुक-रास्तेषां कदम्बकेन समूहेन संवाह्यमाना इतस्ततश्चालिता लता एव दोला येषु तेषु।

उत्फुल्लेति। उत्फुल्लाः पल्लवाः किसलयानि यासां ताः लवल्यो लताविशे-षास्तासु लीयमाना गुप्तभावेन संतिष्ठमाना ये मत्तकोकिला मदमत्तपिकास्तैरुल्ल-सिता ऊर्ध्वं विप्रकीर्णा ये मधुसीकरा पुष्परसकणास्तैरुद्दामं नितान्तमुत्कटं दुर्दिनं येषु तेषु।

प्रोषितेति। प्रोषिता प्रवासं गता ये जनास्तेषां जायाः वियोगिन्यः स्त्रियस्तेषां जीवास्तेषामुपहारैरुपहरणैः हृष्टो मुदितो यो मन्मथः कामस्तेनास्फालितं मरामृष्टं यच्चापं धनुस्तस्य यो रवः शब्दस्तस्मात् यद्भयं तेन स्फुटितानि विभिन्नानि यानि पथिकानां हृदयानि तेषां रुधिरेण रक्तेनार्द्रीकृतः क्लिन्नो मार्गो येषु तेषु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वसन्तागमे हि प्रोषितपतिकाः कामिन्यः कामविह्वलाः प्राणास्त्यजन्ति । यथा माघकृतशिशुपाल० 'कुसुमकार्मुककार्मुकसंहितद्रुतशिलीमुखखण्डितविग्रहाः। मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे.....' । ६।१६

पान्थाश्च रमणीवियोगविकला विशीर्णहृदयाः भवन्तीति कविवर्णनम्। भणितं च । 'समवलोक्य विलासवनस्थलीं न पथिकैः पथिकैः पतितं भुवि । मलयजद्रुमसौरभमेदुरोदरसमीरसमीरितवल्लरीम्' ।

अविरतेति । अविरतं सततं पतन्त उपविशन्तः कुसुमशरेषु पुष्पकाण्डेषु। 'शरः काण्डतेजनयोः' इत्यनेकार्थः । एतादृशा ये पतत्रयस्तेषां पत्राणां पक्षानां सूत्कारेण बधिरीकृतानि दिङ्मुखानि येषु तेषु । अथवा अविरतं पतन्तो ये कुसुमशरपतत्रिणो कामबाणास्तेषां पत्राणां सूत्कारैः शेषं पूर्ववत् । 'पत्रं तु वाहने पर्णे स्यात्पक्षे शरपक्षिणोः' इति मेदिनी ।

दिवापीति । दिवापि दिवसेऽपि प्रवृत्तो विजृम्भितोऽन्तर्हृदये यो मदनरागस्तेनान्धा विवेकज्ञानशून्या या अभिसारिकास्तासां सार्थेन समूहेन सङ्कुलेषु सङ्कीर्णेषु । अभिसारिकालक्षणम् । वसन्तराजीये—'मदेन मदनेनापि प्रेरिता शिथिलत्रपा । योत्सुकाभिसरेत् कान्तं सा भवेदभिसारिका' । 'अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा । स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका' । इति साहित्यदर्पणकारोऽपि ।

तु०—'निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्' ।
रघु० १६।१२

उद्वेलेति । उद्गतो वेलामुद्वेलः संवर्धितजल उन्मदादि इति यावत्, यो रतिरसः शृङ्गारोऽगाधत्वसाम्यात् स एव सागरः समुद्रस्तस्य पूरः प्लवस्तेन प्लावितेषु आच्छादितेषु । निरङ्गं केवलरूपकम् ।

सकलेति । सकलाः ये जीवलोकाः प्राणिनस्तेषां हृदयानन्दं ददतीति तेषु मधुमासदिवसेषु वसन्तवासरेषु ।

एकदेति । एकदा, अम्बया मात्रा सह, मधुमासेन वसन्तेन चैत्रेण वा विस्तारिता गुणातिशयं नीता शोभा यस्य तत् । तथा प्रोत्फुल्लानि विकसितानि नवानि कुमुदानि धवलकमलानि, कुवलयानि नीलकमलानि, कह्लाराणि सौगन्धिकानि च यत्र तत् । इदमच्छोदं सरस्तडागं स्नातुं स्नातायाम्यागमम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्रेति । अत्र, अच्छोदसरःप्रदेशे स्नानार्थमागतया भगवत्या पार्वत्या तटस्थेषु शिलातलेषु प्रस्तरेषु विलिखितानि रेखयोल्लिखितानि, भृङ्गिरिटिना शिवगणेन सह विद्यमानानि सभृङ्गिरिटीनि, 'भृङ्गिरिटः शिवद्वारपालः' इति शब्दकल्पद्रुमः । पांशुषु धूलिषु निमग्नैः ब्रुडितैरत एव कृशैः पदानां मण्डलैः चरणानां चिह्नसार्थैः, अनुमितानि प्रतीतानि मुनिजनानां तपस्विवर्गाणां प्रणामप्रदक्षिणानि नमस्कार-परिभ्रमणक्रिया येषां तानि । त्र्यम्बकस्य महेश्वरस्य शिवस्य प्रतिबिम्बकानि, आलेख्यानि वन्दमाना प्रणम्यमाना, अहं व्यचरमित्यग्रेणान्वयः ।

भ्रमरेति । भ्रमराणां भरेण भारेण भुग्नाः कुञ्चिता गर्भकेसरा अन्तःकिंजल्का येषां तानि, तैः जर्जराणि यानि कुसुमानि तेषामुपहारस्तेन रम्यः । अयं लतामण्डपः ।

परभृतेति । परभृताः कोकिलास्तेषां नखकोटिभिर्नखराग्रैः पाटितानि विभिन्नानि यानि कुड्मलनालानि मुकुलकाण्डास्तेषां विवरेभ्यो छिद्रेभ्यो विगलितं यन्मधु पुष्परसस्तस्य निकराः समूहाः धाराः यत्र । सुपुष्पितः सम्यक् कुसुमितोऽयं सहकारतरुः ।

उन्मदेति । उन्मदा मदोन्मत्ता ये मयूरास्तेषां यत् कुलं समूहस्तस्य कलकलैः ध्वनिभिर्भीताः ये भुजङ्गाः सर्पास्तैर्मुक्तं व्यक्तं तलं यस्या एवंविधा, इयं पुरोऽवलोक्यमाना चन्दनवीथिका मलयजखण्डश्रेणिः ।

विकचेति । विकचानि विकसितानि यानि कुसुमानि तेषां पुञ्जस्य समूहस्य पातेन पतनेन सूचितं ज्ञापितं यद् वनदेवता वनाधिष्ठात्री देवता तस्याः प्रेङ्खोलनमान्दोलनं तेन शोभना मनोज्ञेयं लतादोला ।

वहलेति । वहलं समधिकं यत् कुसुमरजः पुष्परागस्तेषां पटलं समूहस्तस्मिन् मग्ना लीना कलहंसानां कदम्बानां पदलेखाश्चरणचिह्नानि यस्मिंस्तत् । अत एवातिरमणीयमतिमनोरममिदं दृश्यमानं तीरतरुतलं तटवृक्षाधःप्रदेशः ।

इतीति । इति, एवं प्रकारेण स्निग्धानां चिक्कणानामत एव मनोहरतराणामतिशयेन चित्ताकर्षकाणाम्, उद्देशानां वनैकदेशानां दर्शनलोभेनाक्षिप्तसमाकृष्टं हृदयं यस्याः सा तादृशी, अहम्, सखीजनेन समं सह व्यचरम् । अभ्रमम् ।

(१०) एकस्मिंश्चेति । एकस्मिंश्च प्रदेशे झटिति शीघ्रं वनानिलेन वन्येन वातेनोपनीतमाहृतम्, निर्भरमतिमात्रं यथा स्यात्तथा विकसितेऽपि प्रस्फुटितेऽपि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कानने वने सति, अभिभूतो न्यक्कृतोऽन्येषामपरेषां विजातीयानां कुसुमानां परिमलाः सौरभाणि येन तम्। एतस्मात् परिमलात् को नोत्कृष्ट इति भावः। विसर्पन्तं सर्वतः प्रसरन्तम्, अतिसुरभितया घ्राणेन्द्रियं नासिकामनुलिम्पन्त व्याप्नुवन्तमिव, पूरयन्तं परिपूर्ण कुर्वन्तमिव, तर्पयन्तं तृप्तिमुत्पादयन्तमिव; अहमहमिकया 'अहमग्रेऽहमग्रे' इत्यभिमानेन मधुकरकुलैरनुबध्यमानमनुगम्यमानम्, पूर्वं नाघ्रातः इति, अनाघ्रातपूर्वमानुषलोकोचितनलोकसामान्यं कुसुमगन्धमजिघ्रम्। 'अनुलिम्पन्तमिवेत्यादौ' उत्प्रेक्षा।

कुत इति। कुतः कस्मात् प्रदेशात्, अयं गन्ध आयातीति शेषः। इत्येवमुपारूढमुत्पन्नं कुतूहलं यस्याः सा तादृशी, अहम्, तेन कुसुमगन्धेन मुकुलिते कोरकवदुन्मीलिते लोचने नयने यस्याः सा मधुकरी इव आकृष्यमाणा कौतुकेन कुतूहलेन तरलः कम्प्रः, अत्यधिकतरपूर्वस्मादतिमात्रं यथा स्यात्तथा उपजात उत्पन्नो यो मणिनूपुराणां झङ्कारस्तेनाकृष्टाः सरः कलहंसास्तडाककादम्बा यैस्तानि कतिचित् पदानि गत्वा 'स्नानार्थमागतं मुनिकुमारकमपश्यम्' इति दूरेणान्वयः। अत्र द्वितीयैकवचनान्तानि पदानि 'मुनिकुमारकम्' इत्यस्य विशेषणानि।

हरेति। न इन्धनमनिन्धनम्, अनिन्धनमिन्धनं सम्पद्यमानः कृतः इन्धनीकृतः। हरेण शिवेन हुताशनेऽग्नौ, इन्धनीकृतो भस्मीकृतो यो मदनः कामस्तस्य शोकेन खेदेन विधुरं व्याकुलमत एव तपस्यन्तं वैराग्यात् तपश्चरन्तं वसन्तं सुरभिसमयमिव। 'इयं सुरभिगन्धसाम्यादुत्प्रेक्षा' इति भानुचन्द्रः। सा च काव्यलिङ्गेन सङ्कीर्यते।

अखिलेति। अखिलं समस्तं यन्मण्डलं षोडशकलात्मकं तस्य प्राप्त्यर्थं, धृतं स्वीकृतं व्रतं नियमो येन स तम्। ईशानशिरःशशाङ्कं महेशभालस्थचन्द्रमिव, तन्निभधवलरूपत्वात्। उत्प्रेक्षा।

अयुग्मेति। अयुग्मे विषमे लोचने यस्य तं शिवं वशीकर्त्तुं स्वकीयं कर्तुं कामः स्पृहाऽस्येति तम्। अत एव सनियमं व्रतं चरन्तं काममिव, तद्वदतिलावण्यशालित्वात्। उत्प्रेक्षा।

अतीति। अतितेजो विद्यते यस्यासावतितेजस्वी तस्य भावस्तत्ता तया। प्रचला चपला याः तडिल्लताः विद्युल्लतास्तासां पञ्जरमध्यगतमिव समूहाभ्यन्तरे स्थितमिव ग्रीष्मदिवसस्य यद् दिवसकरमण्डलं सूर्यबिम्बं तस्मादवतीर्य प्रविष्टमिव,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा ज्वलनस्य वह्नेर्यो ज्वालाकलापः शिखासमूहस्तस्य मध्यस्थितमिवाभ्यन्तरगतमिव, विभाव्यमानं प्रतीयमानम् । उत्प्रेक्षा ।

उन्मिषन्त्येति । उन्मिषन्त्या शरीरादेव विकसन्त्या, बहुलबहुलयात्यधिकया, 'अत्र वीप्सयोत्तरोत्तरं स्फारीभावः सूचितः' इति बाल० । दीपिकाया य आलोकः प्रकाशस्तद्वत् पिङ्गलया पिञ्जरया, देहप्रभया शरीरकान्त्या, कपिलीकृतं पिङ्गलवर्णीकृतं काननं वनं येन स तम् । अत एव तं प्रदेशं कनकमयमिव सुवर्णभरितमिव कुर्वाणम् ।

'अत्र दीपिकालोक०' इत्यादौ लुप्तोपमा । काननस्य पिङ्गलीकरणसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिः । काव्यलिङ्गम् । उत्प्रेक्षा ।

रोचनेति । रोचनारसेन गोरोचनाद्रवेण लुलितो भावितो यः प्रतिसरो हस्तसूत्रं तत्समाना सुकुमारा कोमला पिङ्गला पीतधूसरा च जटा यस्य तम् । लुप्तोपमा ।

पुण्येति । पुण्यस्य पताका ध्वजा तद्वदाचरन्त्या । 'कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च' इत्याचारार्थे क्यङ् । पुण्यस्य धवलत्वात् तत्पताकापि धवलवर्णा । सरस्वत्याः यः समागमः सङ्गमस्तस्मै योत्कण्ठोत्कलिका तया कृता या चन्दनरेखा तया इव, भस्मनो विभूतेः ललाटिकया पुण्ड्रकविशेषेण बालपुलिनरेखया सूक्ष्मजलोज्झितरेखया गङ्गायाः प्रवाहमिव, उद्भासमानं देदीप्यमानम् । 'पुण्यपता०' इत्यत्र, उपमा । 'चन्दनरेखयेव' इत्यत्र उत्प्रेक्षा । 'गङ्गाप्रवाहमिव' इत्यत्र चोपमा ।

अनेकेति । अनेका असङ्ख्याः या शापभ्रुकुटयस्तत्तच्छापावसरे भ्रूविकारास्तासां भवनं गृहं तस्य तोरणेन बहिर्द्वारोपरिभागेन धनुराकृतिरूपेणेव स्थितेन भ्रूलताद्वयेन भ्रूयुग्मेन विराजितं शोभितम् । 'एतेन सर्वेषां शापप्रदाने क्षम इति ध्वनितम्' । इति भानुचन्द्रः । अत्र परम्परितरूपकम् ।

अत्येति । अत्यायततया नयनयोरतिविस्तीर्णतया कारणेन लोचनमयीं नेत्रमयीं ग्रथितां गुम्फितां मालामिव जपमालिकामिवोद्वहन्तं धारयन्तम् ।

सर्वेति । सर्वहरिणैः समस्तैः मृगैः दत्त अर्पितो लोचनशोभायाः नयनकान्तेः संविभागो यस्मै ।

आयतेति । आयतो विस्तीर्ण उत्तुङ्ग अत्युच्चश्च घ्राणं वंश इव घ्राणवंशस्तम् नासिकादण्डम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अप्राप्तेति। अप्राप्तोऽनुलब्धो हृदये चित्ते प्रवेशो येन तेन, नवयौवनस्य रागेणेव सर्वात्मना सर्वप्रकारप्रयत्नेन, पाटलीकृतं श्वेतरक्तीकृतम्, अधरोरुचकं बीजपूरं निष्कमिव वा यस्य तम्। 'रुचको बीजपूरे च निष्के दन्तकपोतयोः'। इति मेदिनी। अत्र, अतिशयोक्तिः, उत्प्रेक्षा, लुप्तोपमा चालङ्काराः।

अधररुचक—अजंताके भित्ति-चित्रोंमें अधरोष्ठ कुछ नीचे लटके हुए दिखलाये गये हैं। (दे० औंध कृत, अजंताफलक ३३, ६१, ७८)। इस प्रकारके अधरोष्ठ सौन्दर्यके आधायक समझे जाते हैं। यहाँ रुचकका अर्थ निष्क (अशर्फी जैसा सोनेका गोल सिक्का)। पतंजलिने महाभाष्यके पस्पशाह्निकमें निष्कके अर्थमें रुचकका प्रयोग किया है। हरिवंशपुराणमें वराहके अधर भागकी गोल आकृतिको अधररुचक कहा गया है (दे० हरि० १।४१।३४, ३।३४।४०)। गुप्तकालमें शंख कमल आदिके मुखसे सुवर्ण-मुद्राएँ निकलती हुई दिखायी गयी हैं। यह लक्षण सौभाग्यका सूचक है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधरकी निष्काकृति व्यक्तिके मुखसे सौभाग्य-सूचक मुद्राएँ निकलनेका संकेत करती है। पद्मप्राभृतकभाणमें भी 'ओष्ठसूचक' शब्दका प्रयोग हुआ है (दे० प० प्रा० पृ० ९)।

अनुद्भिन्नेति। न उद्भिन्नानि प्रकटितानि अनुद्भिन्नानि श्मश्रूणि मुखलोमानि यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मादनासादितोऽप्राप्तो, मधुकरावली एव वलयं तेन परिक्षेपः परिवेष्टनं तल्लक्षणो विलासो येनैवंभूतं बालकमलमिव, आननं मुखं दधानं धारयन्तम्। 'बालकमलमिव' इत्यत्र उपमा।

अनङ्गेति। अनङ्गस्य कामस्य यत् कार्मुकं धनुस्तस्य कुण्डलीकृतेन गुणेन ज्ययेव, सुन्दरीणां कामोद्दीपनत्वात्, तथा तप एव तडाकं सरोवरं तस्य या कमलिनी नलिनी तस्या मृणालेन बिसेनेव, श्वेतत्वात्, यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेणालंकृतं सुशोभितम्। अत्र 'कार्मुकगुणेनेव' इत्यत्र उपमा। 'तपस्तडाके' त्यत्र निरङ्ग रूपकम्। 'कमलिनी मृणालेनेव' इत्यत्र, उपमा।

एकेनेति। एकेन करेण वामहस्तेनेत्यर्थः, सनालं सवृन्तं यद् बकुलफलं केसरफलं तद्वदाकार आकृतिर्यस्यैवंभूतं कमण्डलुम्। कमण्डलोरपि नालसत्त्वात् सनालेति विशेषणम्। अपरेण दक्षिणेन हस्तेन मकरकेतुः कन्दर्पस्तस्य विनाशो नाशस्तस्माद्यः शोकस्तेन रुदितायाः कृताश्रुपातायाः रतेर्मदनस्त्रियो बाष्पजल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिन्दुभिर्नेत्राश्रुभिरारचितां निर्मितामिव, स्फटिकस्य श्वेतमणेरक्षमालिकां जपमालां कलयन्तं धारयन्तम् । अत्र प्रथमविशेषणे, उपमा । द्वितीये, उत्प्रेक्षा ।

अनेकेति । अनेका नानाविधा विद्या आन्वीक्षकीत्रयीवार्त्तादण्डनीत्यादयः ता एवापगा नद्यस्तासां सङ्गमे सम्मेलने य आवर्त्त अम्भसां भ्रमिस्तन्निभया तत्सदृशया नाभिमुद्रया तुन्दकूपिकया उपशोभमानं विराजमानम् ।

इह 'विद्यापगा' इत्यत्र निरङ्गरूपकम् । 'आवर्त्तनिभया' इत्यत्र उपमा ।

अन्तरिति । अन्तर्ज्ञानेन तत्त्वज्ञानेन निराकृतस्य मोहोऽन्धकारस्तस्यापयानपदवीमिव निःसरणमार्गमिव, अञ्जनरजसां कज्जलधूलीनां लेखेव श्यामला कृष्णा ताम्, तनीयसीं केवलोत्पत्त्यारम्भात् कृशतरां रोमराजि तनूरुहश्रेणीं बिभ्राणं दधानम् । अत्र मोहेऽन्धकारत्वारोपः शाब्दः, अन्तर्ज्ञाने प्रकाशत्वारोपस्त्वार्थः, इत्येकदेशविवर्तिरूपकम् । 'अपयानपदवीमिव' इत्युत्प्रेक्षा । 'अञ्जनरजोलेखाश्यामलाम्' इत्यत्र लुप्तोपमा ।

आत्मेति । आत्मतेजसा स्वकीयतपःप्रभावेण सवितारं सूर्यं विजित्य पराभूय परिगृहीतेनात्तेन परिवेषमण्डलेनेव परिधिवलयेनेव विद्यमानेन; मौञ्जमेखलागुणेन रशनावरकेण परिक्षिप्तः परिवेष्टितः जघनभागो यस्य तम् । उत्प्रेक्षा ।

अभ्रेति । अभ्रगङ्गा व्योमनदी तस्याः स्रोतः प्रवाहस्तस्य जलं तेन प्रक्षालितेन धौतेन जरद्वृद्धश्चासौ चकोरः पक्षिविशेषस्तस्य लोचनपुटवत् पाटला श्वेतरक्ता कान्तिर्द्युतिर्यस्य तेन मन्दारो देवतरुविशेषस्तस्य वल्कलेन त्वचा, उपपादितं सम्पादितम् । अम्बरप्रयोजनं वसनप्रयोजनं येन तम् ।

अत्र 'जरच्चकोर' इत्यादौ लुप्तोपमा ।

अलंकारमिति । ब्रह्मचर्यस्य स्त्रीसम्बन्धिपरिवर्जनरूपस्य अलङ्कारं भूषणमिव । ब्रह्मचर्यलक्षणमाह्निकसूत्रावल्याम्—

"स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्" ।।

पुंस्य सुकृतस्य यौवनं तरुणतेव, अत्र पूर्णत्वात् । सरस्वत्या भारत्या विलासमिव विभ्रममिव, अत्रैव तस्याः साफल्यात् । सर्वविद्यानाम् । आन्वीक्षिक्यादिचतुर्द-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शानाम्। स्वयं व्रियते इति स्वयंवरः। तथोक्तः पतिः स्वामी तमिव। 'अनेनाश स्वाभाविकी सर्वविद्योपस्थितिः सूचिता' इति बाल०।

सर्वश्रुतीनां समस्तवेदानां संकेतस्थानमिव, स्वयमेव तत्र गमनात्। अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा।

निदाघेति। निदाघकालं ग्रीष्मसमयमिव, आषाढेन पालाशदण्डेन तन्नामक-मासेन च सहेति साषाढम्। 'आषाढो व्रतिनां दण्डे मासे मलयपर्वते'। इ 'शुचिग्रीष्माग्निशृङ्गारेष्वाषाढे शुद्धमन्त्रिणि' इति च मेदिनी।

हिमेति। हिमसमयः शीतकालस्तस्य काननं वनमिव स्फुटिता प्रफुल्लिता प्रियंगुमञ्जरी फलिनीवल्लरी तत्वद् गौरं शुभ्रवर्णम्।

मध्विति। मधुमासश्चैत्रमासस्तमिव, कुसुमवत् पुष्पवद् धवला शुभ्रा या तिल कार्थं भूतिर्भस्म तथा विभूषितमलंकृतं मुखं यस्य तम्। अन्यत्र तु कुसुमैः धवल ये तिलकाः वृक्षविशेषास्तेषां विभूत्या समृद्धया विभूषितं मुखं यस्य तम्। 'तिलकोऽश्वद्रुमभिदोः पुण्ड्रके तिलकालके। तिलकं रुचके क्लोम्नि'। इति हैमः। 'भूति र्भस्मनि सम्पत्तिहस्तिशृङ्गारयोः स्त्रियाम्'। इति मेदिनी।

अत्र पूर्णोपमा सा च श्लिष्टा।

आत्मेति। आत्मनोऽनुरूपेण सदृशेन सवयसा मित्रेणापरेण भिन्नेन देवता मर्चनं पूजनं तदर्थं कुसुमानि पुष्पाण्युच्चिन्वतावचयं कुर्वता तापसकुमारेणानु मनुस्मृतम्, अतिमनोहरमतिरमणीयं स्नानार्थमागतं मुनिकुमारकमपश्यम्। मुनि कुमारकमित्यर्थेऽनुकम्पार्थे कः।

(११) तेनेति। तेन कुमारेण कर्णावतंसीकृतां श्रवणाभूषणीकृतां कु मञ्जरीमद्राक्षमित्यन्वयः। वसन्तस्य दर्शनेन विलोकनेन आनन्दितायाः प्रहर्षिता वनश्रियः काननलक्ष्म्याः स्मितं हास्यच्छविमिवि, धवलत्वसादृश्यात्। मधुमा चैत्रमासस्य मलयमारुतस्य आगमनार्थमागमनाभिनन्दनाय यो लाजानाम अञ्जलिपूर्णाः धानास्तमिव। अन्योऽपि मानवीयपुरुषाभिनन्दनाय लाजाञ्जलि दत्ते। तु०—'अवाकिरन् बाललताप्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः'। रघु० २।

कुसुमलक्ष्म्याः पुष्पश्रियो यौवनलीलामिव तारुण्यक्रीडामिव, कामाभिव्य त्वात्। रतेः सुरतपरिश्रमाद् ... तस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृषतास्तेषां जालकं समूहस्तस्यावलिमिव पंक्तिमिव। मनोभवः काम एव गजस्तस्य ध्वजस्य पताकायाः चिन्हरूपा लक्ष्मरूपा चामरपिच्छिका निम्नगुम्फिता चामररूपा पिच्छिका बर्हचूडा तामिव, तत्पिच्छिकाविलोकनेन गजप्राकट्यज्ञानवत् तन्मञ्जरीविलोकनेन कामाविष्कारप्रतीतेः।

'पिच्छा पूगच्छटाकोषमोचाशाल्मलिवेष्टके।
भक्तसम्भूतमण्डे च पंक्तावश्यपदामये॥
स्त्रियां, पुंसि तु लाङ्गूले न द्वयोर्बर्हिचूडयोः'।

इति मेदिनी।

मधुकरो भ्रमर एव कामुकस्तस्य अभिसारिकामिव, तदुद्देशेन द्रुतगमनात्। कृत्तिका ताराः कृत्तिकासंज्ञकानि षट् नक्षत्राणि तेषा स्तवकं गुच्छम्, अनुकर्त्तुं शीलं यस्यास्ताम्। अमृतबिन्दुनिस्यन्दिनीं मधुकणस्राविणीम्, अदृष्टपूर्वां कुसुममञ्जरीमद्राक्षम्। अत्र उत्प्रेक्षा। 'मनोभवगजस्य' 'मधुकरकामुके'त्यत्र रूपकम्। 'कृत्तिकातारास्तवकानुकारिणीमित्यत्र लुप्तोपमा।

अस्या इति। अस्याः मञ्जर्याः अयं परिमलो गन्धः, परिभूतोऽभिभूतोऽन्येषां पुष्पाणामामोदो गन्धो येन स तथोक्तो ननु अवधारणे। 'ननु प्रश्नेऽप्यनुनयेऽनुज्ञाने ऽवधारणे।' इति विश्वः। इति मनसा चित्तेन निश्चित्य अवधार्य तं पूर्ववर्णितं तपः एव धनं यस्यैवंविधो युवा तं मुनिकुमारकम्, ईक्षमाणा पश्यन्ती, अहं महाश्वेता, अचिन्तयमध्यायम्।

अहो इति। अहो इत्याश्चर्ये। विधातुः प्रजापतेः रूपस्य सौन्दर्यस्यातिशय आधिक्यं तस्य निष्पादने निर्माणविषये यानि उपकरणानि साधनानि तेषां कोषस्य भाण्डागारस्याक्षीणताक्षयत्वम्।

यदिति। यस्मात् कारणात्, त्रिभुवनेऽद्भुतोऽतिशायी रूपसम्भारो रूपराशिर्यत्र सः। भगवन्तं कुसुमायुधं काममुत्पाद्य निर्माय तस्य कुसुमशरस्याकाराद् अतिरिक्तोऽधिकः रूपराशिः सौन्दर्यजातं मुनिमायामयस्तापसव्याजमयः, अयं पुरो विलोक्यमानः कुमारः, अपरोऽन्यो मकरकेतुः कामः कृत्वोत्पादितः। ब्रह्मणेति शेषः। 'उत्तरोत्तरमतिशयवत्त्वादयं मकरकेतुस्तदपेक्षयाप्युत्कृष्ट इति भावः।' इति भानुचन्द्रः। 'मुनिमायामय' इत्यत्र प्रस्तुतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनादपह्नुतिः।

मन्य इति। अहमिति मन्ये जाने। सकलं समस्तं यज्जगत् तस्य नयनानन्दकरं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेत्राह्लादकं शशिबिम्बं चन्द्रमण्डलं विरचयता रचनां कुर्वता, लक्ष्म्याः लीलया वासस्य भवनानि कमलानि सृजता कुर्वता ब्रह्मणा तस्य मुनिकुमारस्याननं मुखं तस्याकार आकृतिस्तस्य करणे निर्माणे कौशलं चातुर्यं तदर्थमभ्यासः पौनःपुन्येन प्रवृत्तिरेव कृतः। अत्रोत्प्रेक्षा, तया च शशिनः कमलाच्च मुनिकुमारमुखस्यात्यन्त-रमणीयबोधनेन व्यतिरेकालङ्कारो व्यज्यतेऽत एवात्रालङ्कारेणालङ्कारध्वनिः। अन्यथा तद्वैपरीत्ये सदृशवस्तुविरचनायां समानकोटिकपदार्थसमुत्पादने किमपि कारणं नियामकमस्तीति शेषः।

अलीकमिति। रविः सूर्यः सुषुम्नानाम्ना रश्मिना निजकिरणविशेषेण बहुलपक्षे कृष्णपक्षे क्षीयमाणस्य कृशतां प्राप्यमाणस्य कलावतश्चन्द्रस्य सकलाः निखिलाः कला आपिबति पानं करोति, इति, इदं पुराणवचनम्, अलीकं मिथ्या। तथा च विष्णुपुराणम्—

"सूर्यरश्मिः सुषुम्नो यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमाः।
कृष्णपक्षेऽमरैः सार्धं पीयते वै सुधामयः॥"

अत्रालीकत्वसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिः।

ता इति। अस्य चन्द्रस्य खलु निश्चयेन ताः कलाः, समस्ता गभस्तयो रश्मयश्च, इदम्, अवलोक्यमानं वपुः मुनिबालकशरीरम्, आविशन्ति, प्रविशन्ति। अत्रापि शशिकलारश्मीनां तच्छरीरे प्रवेशसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिः।

कुत इति। अन्यथोक्तान्यथात्वे रूपस्य सौन्दर्यस्यापहारिणि क्लेशातिशय-सौन्दर्यापघातके तपसि तपस्यायां वर्त्तमानस्य स्थितस्येदं लावण्यं सर्वोदात्तसौन्दर्यं कुतः स्यात्, न कुतोऽपीत्याशयः, कारणव्यतिरेकेण कार्यानुदयात्।

इतीति। इति इत्थं, चिन्तयतीं ध्यायन्तीमिव मां महाश्वेतां न विचारितो नालोचितो गुणदोषयोर्विशेषो बलाबलं येन सः, पक्षे पातः पक्षपातः। रूपमेव मुख्यं तस्मिन् पक्षपातो यस्य, नवयौवने सुलभोऽयत्नलभ्यः। तारुण्ये तदुत्पत्तिसंभवात्। कुसुमायुधः कामः। कुसुमसमयस्य वसन्तस्य मद इव मधुकरीं भ्रमरीमिव मां परवशां परायत्तामकरोत्। उपमा। कुसुमसमयमदो मधुकरीं परवशां करोति, अत्र कालेनाल्प...

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१२) उच्छ्वसितैरिति । उच्छ्वसितैः निःश्वासपवनैः सह विस्मृतो निमेषो निमीलनं यस्य तत्तथा तेन । किञ्चिदामुकुलितानि ईषत् प्रस्फुटितानि पक्ष्माणि नेत्ररोमाणि यस्य तेन । जिह्मिता वक्रा तरलतरातिचपला तारा कनीनिका यस्यैवंभूतं शारं कल्मषमुदरं मध्यभागो यस्य तत्तथा तेन । दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहं साभिलाषं यथा स्यात्तथा आपिबन्तीव विलोकयन्तीव । किमपि अलोकसामान्यं याचमानेव प्रार्थ्यमानेव । 'त्वदायत्ता त्वदधीनास्मि' इति वदन्तीव । अभिमुखं तत्सम्मुखं हृदयं चित्तमर्पयन्तीव । सर्वात्मना सर्वतोभावेन अनुप्रविशन्तीव तच्चित्तं प्रविशन्तीव । तन्मयतां तद्रूपतां गन्तुमीहमाना कामयमानेव । मनोभवेन कंदर्पेणाभिभूतां त्रायस्व, इति हेतोः शरणं त्राणमुपयान्तीव गच्छन्तीव । हृदये चित्तेऽवकाशं प्रवेशं देहि, इति, अर्थितां याचकतामिव दर्शयन्ती प्रकाशयन्ती । 'हा ! हा ! इति खेदे किमिदमसाम्प्रतमनुचितम्, अतिह्रेपणमतिलज्जाकरम्, अकुलोद्भवोऽकुलीनो यो कुमारीजनस्तस्योचितं योग्यम्, इदमेतादृशं कर्म मया प्रस्तुतप्रारब्धमिति जानानाप्येतादृशज्ञानवत्यपि करणानामिन्द्रियाणामवरोधनेऽप्रभवन्ती, असमर्था । स्तम्भितेव जडीकृतेव, लिखिता चित्रितेव, उत्कीर्णोत्कीरितेव, संयता बद्धेव, मूर्च्छिता चैतन्यरहितेव, तथा केनापि अनिर्वचनीयपुरुषेण विधृता गृहीतेव । निष्पन्दाश्चेष्टारहिताः सकला अवयवा अङ्गानि यस्याः सा तादृशी, अहम्, अकथितोऽपि लोचनं विघूर्णयितुमनुपदिष्टोऽपि शिक्षितस्तत्र निपुणस्तेन । अनाख्येयेन आकस्मिकोपस्थित्या कीदृश इति वक्तुमसमर्थेन, अतएव स्वसंवेद्येन तत्काले तदात्वे आविर्भूतेन प्रकटितेन, अवष्टम्भेन, निश्चेष्टताप्रयोजकसात्त्विकविकारविशेषाश्रयणेन, केवलं तमतिचिरं व्यलोकयमिति सम्बन्धः । अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा ।

नेति । न विभाव्यते निरूपयिष्यमाणानां मध्ये केनोपदिष्टा सती तमतिचिरं व्यलोकयमिति निर्णेतुं न प्रभवाऽहमित्याशयः । किं तस्य मुनिकुमारस्य रूपस्य सौन्दर्यस्य संपदा संपत्त्या । किं मनसा चित्तेन । किं मनसिजेन कामेन । किं वाभिनवयौवनेन नवतारुण्येन । किं वानुरागेणैकान्तिकप्रीत्या । किमन्येनैवापरेणैव केनापि प्रकारेणोपदिश्यमाना कथं केनाप्यनिर्वचनीयस्वरूपेण, अतिचिरं तं तापसकुमारं व्यलोकयम्, किन्तु कथं तं तथा व्यलोकयमित्यहमपि न जानामि नावगच्छामीत्यर्थः । अत्र विप्रलम्भशृङ्गारस्य वितर्कसंज्ञको भावोऽङ्गमिति प्रेयो नामालङ्कारः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्क्षिप्येति । इन्द्रियैर्नयनादिभिः करणैः, उत्क्षिप्य उत्तोल्य तस्य तापसबालकस्य समीपं नीयमाना प्राप्यमाणेव । एतेनोत्कण्ठा द्योतिता । हृदयेन पुरस्तादग्रे आकृष्यमाणेव । पुष्पधन्वना कामेन पृष्ठतः प्रेर्यमाणा चाल्यमानेव सती । मुक्तस्त्यक्तः प्रयत्नस्तदन्तिकप्राप्तिनिवारणव्यापारो येन तं तादृशमपि आत्मानं शरीरं कथमपि महता क्लेशेनेति भावः, अधारयम्, निजस्थान एवापालयम् । अनेन धृतिः प्रतिपादिता । उत्प्रेक्षा ।

अनन्तरमिति । अनन्तरं मे मम हृदयाभ्यन्तरेऽवकाशं तस्य मुनिकुमारस्य निवासं दातुमर्पितमिव, मदनेन कामेन आहितः समुत्पादितः सन्तानो विस्तारो येषां ते तादृशाः श्वासमरुतो निश्वसितपवना निरीयुर्निःसृताः । उत्प्रेक्षा ।

साभिलाषमिति । कुचयोः स्तनयोर्युगलं द्वयं, साभिलाषं सस्पृहं तत्तापसकुमारलाभेच्छापरिपूर्णमित्यर्थः । हृदयं मनः आख्यातुकामं 'नूनं लप्स्यसे' इति प्रियवृत्तान्तं कथयितुमिच्छुः इव सत्, स्फुरितं स्पन्दितं मुखं यस्य तत् तादृशमभूत् । अन्योऽपि विवक्षुः स्फुरितमुखो भवति । अनेनाभिलाषो व्यभिचारिभाव उक्तः ।

स्वेदेति । स्वेदो घर्मस्तस्य लवाः कणास्तेषां लेखाभिः क्षालिता धौतेव लज्जा गलदस्रवत् ।

'अत्र मुखस्फुरणमभिलाषकार्यं स्वेदः श्रमकार्यं लज्जा च्युतिश्चोन्मादकार्यमिति यथाक्रमं ज्ञेयम्' इति भानुचन्द्रः । उत्प्रेक्षा ।

मकरेति । मकरध्वजस्य कामस्य ये निशिताः तीक्ष्णाः शराः बाणास्तेषां निकरस्य समूहस्य निपातादाघाताद् गात्रयष्टिः शरीरयष्टिस्त्रस्ता भीतेव सती, अकम्पयामास । उत्प्रेक्षा । अत्र वेपथुर्निगदितः ।

तद्रूपेति । रोमाञ्चानां पुलकानां जालकं समूहः । तस्य तापसकुमारस्य यो रूपस्तस्य सौन्दर्यस्यातिशयोऽतिरेकस्तं द्रष्टुमिव; आलिङ्गने लालसेभ्यो लोलुपेभ्योऽङ्गेभ्यो हस्तपादादिभ्योऽवयवेभ्यः कुतूहलात् कौतुकात् निरगात् निःसृतो बभूव । एतेन रोमाञ्च उक्तः । लालसेभ्योऽनेनौत्सुक्यमुक्तम् ।

अशेषत इति । स्वेदाम्भसा घर्मजलेन, अशेषतः समग्रतया धौतः प्रक्षालितो रागोऽलक्तकारुण्यमिव रागो रतिश्चरणयुगलाङ्घ्रियुग्माद् हृदयमविशदिव प्रवेशमकरोदिव । एतेन रतिर्नाम स्थायिभाव उक्तः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थायित्वलक्षणं धनञ्जयकृते दशरूपे :—

'विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः ॥'

(१३) आसीच्चेति । मे मम मनसि चित्ते, इदमासीद् बभूव । शान्तः सत्त्व-गुणयुक्त आत्मा मनो यस्य तस्मिंस्तादृशे, तथा दूरीकृतः सुरतव्यतिकरो विषय-सेवनवृत्तान्तो येन तस्मिन्, अस्मिन् जने मां निक्षिपता स्थापयता अनार्येणा-संस्कृतेन मनसिजेन कामेन किमिदम्, असदृशमनुचितमारब्धम् ।

एवमिति । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण । 'नाम' इति प्रकाश्ये कोमलामन्त्रणे वा । अङ्गनाजनस्य स्त्रीजनस्य हृदयं चित्तमतिमूढमत्यन्तं विचाराक्षमम्, यद् यस्मात् कारणाद् अनुरागविषयस्य योग्यतामपि, अस्मिन् स्थानेऽनुरागो युक्तः, अस्मिन्न युक्तः, इति विषयविभागमपि, विचारयितुं नालं न समर्थम् । अत्राप्रकृतात् स्त्री-हृदयसामान्यात् प्रकृतस्यात्महृदयरूपविशेषस्यावगमादप्रस्तुतप्रशंसा ।

क्वेदमिति । तेजसां तपसां चातिभास्वरमत्यन्तं प्रोद्भासमानम्, इदं तापस-कुमारस्वरूपं धाम आश्रयः क्व, तथा प्राकृतजनैः साधारणमनुष्यैरभिनन्दितानि वन्द्यमानानि मन्मथस्य कामस्य परिस्पन्दितानि चेष्टितानि क्व । क्वाविति महदन्तरं सूचयतः । विसदृशयोः संयोजनाद् विषमालंकारः ।

नियतमिति । अयं तापसकुमारः, मकरलाञ्छनेन कामेनानेन प्रकारेण विडम्ब्यमानां प्रतार्यमाणां मां महाश्वेतां नियतं निश्चितमेव मनसा चेतसा उपहसति ।

चित्रमिति । इदं चित्रमाश्चर्यकरम् । यद् यस्मात् कारणाद्, अहमेवं पूर्वोक्त-प्रकारेणावगच्छन्त्यपि जानन्त्यपि, आत्मनः स्वस्य विकारं विकृतमुपसंहर्तुं दूरीकर्तुं न शक्नोमि न समर्था भवामि ।

अन्या इति । अन्या मद्व्यतिरिक्ता अपि कन्यका दारिकाः त्रपां लज्जां विहाय परित्यज्य पतीन् स्वामिन उपयाता उपगताः । अन्या अपि याः काश्चन्नातिकामुका नोपयातास्ताः नार्योऽनेन दुर्विनीतेन दुराचारेणानेन मन्मथेन कामेनोन्मत्ततां सविकारतां नीताः प्रापिताः, न पुनरहमेका अत एव नात्मधिक्कारो युक्तः ।

कथमिति । अनेन क्षणेन समयेन, अस्य तापसकुमारस्याकारमात्रस्य केवला-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृतेरालोकनेनाकुलीभूतं विह्वलीभूतमन्तःकरणं हृदयमेवम्, अस्वतन्त्रतां पराधीनतामुपैति ।

काल इति । हि यस्मात् कालो वसन्तादिरथवा परिचयावधिर्विवेककाले वा । गुणा आभिजात्यविद्यासौन्दर्यादयः च । मदनस्य कामस्य सर्वथा दुर्निवारतामारोपयन्ति स्थापयन्ति । अत्राप्रकृतात् सामान्यात् प्रकृतस्य विशेषस्य बोधनादप्रस्तुतप्रशंसा ।

यावदिति । यावदेव यावत्समयमहं सचेतना चैतन्यसहितास्मि । यावदेव यावत्कालमनेन कुमारेण मे ममैतत् मदनदुश्चेष्टितलाघवं कामविकृतिजन्यलघुत्वं परिस्फुटं न विभाव्यते ज्ञायते । तावदेव तावत्कालमस्मात् स्थानादपसर्पणं दूरीभवनं श्रेयः कल्याणकृत् ।

कदाचिदिति । अयं कुमारः अनभिमतस्यानभीष्टस्य स्मरविकारस्य कामविकृतेः दर्शनेन कुपितः सन् मां शापस्याभिज्ञामाद्यज्ञानविषयाम् । 'अभिज्ञा ज्ञानमाद्यं स्यात् ।' हि यतो मुनिजनानां तापसलोकानां प्रकृतिः स्वभावोऽदूरे समीपे कोपो यस्या एवंविधा भवतीति शेषः । अत एव शापाय विशेषापराधं नाकाङ्क्षते । इति, अवधार्य निश्चयं विधायाहमपसर्पणेऽभिलाषः स्पृहा यस्याः एवंभूताभवम् ।

अशेषेति । इयं जातिः तापसजातिः, अशेषैः समग्रैर्जनैः पूजनीया वन्दनार्हा न तु कोपनीया, इति मनसि कृत्वा तस्य मुनिकुमारस्य वदनात् मुखादाकृष्टः आकर्षितो दृष्टिप्रसरो यस्मिंस्तत् । 'क्रियाविशेषणं वा अनेन भावातिशयो द्योतितः' इति भानुः । अचलिता व्यापारशून्या पक्ष्ममाला नयनरोमरेखा यस्मिन् । अदृष्टमनवलोकितं भूतलं यस्मिन् । उल्लसिता उल्लासं प्राप्ताः कर्णपल्लवाः श्रवणकिसलयानि तैरुन्मुक्तं परित्यक्तं कपोलमण्डलं यस्मिन् । आलोला चञ्चलालकलता केशराजिस्तस्यां लसन् शोभमानः कुसुमावतंसः पुष्पभूषणं यस्मिन् । अंसदेशे स्कन्धप्रदेशे दोलायिते चलिते मणिकुण्डले यत्र तत् । अस्मै मुनिकुमाराय प्रणाममकरवम् । स्वभावोक्तिः ।

(१४) अथेति । कृतः प्रणामो नमस्कारो यदा तस्यामपि मनोभुवः कामस्य दुर्लङ्घ्यं दुर्लङ्घनीयं शासनमाज्ञा यस्य तस्य भावस्तत्ता तया । कुसुममासस्य वसन्तस्य चैत्रमासस्य वा मदजननतया मदोत्पादकतया च । तस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वोक्तस्य प्रदेशस्यातिरमणीयतयातिमनोहरतया। अभिनवयौवनस्य नवतारुण्यस्याविनयवहुलतया च। इन्द्रियाणां नयनादिकरणानां चञ्चलप्रकृतितया चपलस्वभावतया च। विषया इन्द्रियार्थाः कामादयस्तेषामभिलाषा अध्यवसायास्तेषां दुर्निवारतया दुःखेन दूरीकर्त्तुं शक्यतया च। मनोवृत्तेश्चित्तश्चपलतया चञ्चलतया च। तस्य तस्य वस्तुनः सुख-दुःखादेस्तथा तेन प्रकारेण भवितव्यतया भावितया च। चकारः सर्वत्र समुच्चयार्थः। किं वहुना वहूक्तेन मन्दभाग्यस्य दुरदृष्टस्य दौरात्म्यात् दुष्टत्वेन हेतोः, ईदृशस्यैवंविधस्य क्लेशस्य विहितत्वात्। पवनो वातः प्रदीपमिव। अनङ्गः कामः। मम विकारदर्शनेनापहृतं दूरीभूतं धैर्यं यस्य तम्। तमपि मुनिकुमारकं तरलतां चपलतामनयत् प्रापितवान्। उपमा।

तदेति। तदा तस्मिन् काले तस्य मुनिकुमारस्यापि। अभिनवो नूतन आगतो यो मदनः कामस्तं प्रत्युद्गच्छन्निव, सम्मुखं व्रजन्निव, रोमोद्गमो रोमाञ्चो प्रादुरभवत् प्रकटीबभूव।

मदिति। मत्सकाशं मत्समीपमभिप्रस्थितस्य सम्मुखं चलितस्य मनसो हृदयस्य मार्गं पन्थानम्, उपदिशद्भिरिवादेशं ददद्भिरिव श्वासैः निश्वासपवनैः पुरोऽग्रे प्रवृत्तं प्रस्थितम्। उत्प्रेक्षा।

वेपथ्विति। वेपथुः कम्पस्तेन गृहीता करतलगता हस्तगताक्षमाला जपमाला व्रतस्य नियमस्य भङ्गः खण्डनं तेन। कामेन विकृतचित्तत्वाद् व्रतभङ्गः। भीता त्रस्तेव सती, अकम्पताचलत्। उत्प्रेक्षा।

द्वितीयेति। द्वितीया, अपरा कर्णावसक्ता श्रवणसंलग्ना कुसुममञ्जरीव कपोलतलासङ्गिनी गल्लात् परप्रदेशाश्लेषिणी स्वेदसलिलस्य श्रमजलस्य सीकराः कणास्तेषां जालिकाः समदृश्यन्त समालोक्यन्त। उत्प्रेक्षा।

मदिति। अपि च मद्दर्शनमालोकनं तस्मात् प्रीतिः स्नेहस्तेन विस्तारितस्य प्रसारितस्य, उत्ताने ऊर्ध्वगते तारके कनीनिके यस्य तस्य। समुद्देशं तं वनैकदेशं पुण्डरीकमयं सिताम्भोजनिर्मितमिव। तस्मिन् प्रदेशे लोचनधवलभागस्यैव प्राधान्येन स्फुरणात् पुण्डरीकमयमिति। उपदर्शयतः प्रदर्शयतो लोचनयुगलस्य नेत्रयुग्मस्य विसर्पिभिः प्रसरणशीलैरंशुसंतानैः किरणसमूहैः। यदृच्छया स्वेच्छया, अच्छोदस्य तत्संज्ञकसरसः सलिलं जलमपहाय परित्यज्य गगनतलम्, उत्पतितैरुद्गतैः, विक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चानि विकसितानि यानि कुवलयानि नीलोत्पलवनानि तैरिव विद्यमानैः, तेषां रश्मीनां तु नीलकनीनिकजन्यत्वेन नीलत्वात्। दशो दिशोऽरुध्यन्ताच्छाद्यन्त।

अत्रोत्प्रेक्षा। दशदिशामाच्छादनासम्बन्धेऽपि तत् सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिः।

तयेति। तस्य मुनिकुमारस्यातिप्रकट्या वाहुल्येन प्रकाशितया विकृत्या मदनविकारेण द्विगुणीकृतो मदनस्य कामस्यावेशो यस्या एवंभूताहं तत्क्षणं तत्कालमवर्णनयोग्यामकथनीयां दशामवस्थामन्वभवम्।

इदमिति। मनसि चित्त इदमकरवमप्रणयम्। अनेकानिऽसंख्यानि सुरतानि मैथुनानि तेषां समागमाः सम्बन्धाः स एव लास्यलीला नृत्यक्रीडा तासूपदेशास्त्रोपाध्यायो गुरुरेवंविधो मकरकेतुरेव काम एव विलासान् लीलाकटाक्षविभ्रमान्, उपदिशति शिक्षयति। अन्यथा कामद्वारा शिक्षणाभावे, विविधा अनेकप्रकारा रस्यन्त आस्वद्यन्त इति रसा विषयास्वादास्तेषामासङ्गेनाश्लेषेण ललितेषु रमणीयेषु ईदृशेषु, एवंविधेषु व्यतिकरेषु विलाससहितदृष्टिपातसंयोगेषु, अप्रविष्टा मुनिभावतया तदनववोधत्वादलब्धप्रवेशा बुद्धिर्यस्य तस्य, अस्य जनस्य मुनिकुमारस्य कुत इवेयं दृष्टिः स्यात्—इति भावः। अनभ्यस्तापरिचिताकृतिराकारो यया सा। रतिरसस्य सम्भोगायानुरागस्य निष्यन्दं निर्यासप्रवाहं क्षरन्तीव स्रवन्तीव, अमृतं वर्षन्तीव वृष्टिं कुर्वन्तीव, मद्विधानां रमणीनां नितान्ततृप्तिदायकत्वादित्यर्थः। मदेन काममत्ततया मुकुलिता किञ्चित् प्रकाशितेव। खेदालसा परिश्रममन्थरेव। निद्रया जडा कुण्ठितेव। आनन्दभरेण हर्षातिरेकेण मन्थरं मन्दं यथा स्यात्तथा तरन्ती विस्तारं प्राप्नुवन्ती तारा कनीनिका यत्र कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा सञ्चरितुं भ्रमितुं शीलं यस्याः सा। तथा अनिभृतं स्फुटं भ्रूलते लम्बमानभ्रूद्वन्द्वमुल्लासयितुं नर्त्तयितुं शीलं यस्या सा। उत्प्रेक्षा।

कुत इति। चक्षुषैव निरीक्षणविशेषेणैव, एवमनेन प्रकारेण अन्तर्गतो हृदयाभिलाषश्चित्ताभिप्रायोऽनक्षरं वचनरहितं यथा स्यात्तथा यत् कथ्यते उक्तिवत् स्फुटं ज्ञाप्यते। इदं प्रत्यक्षतो विद्यमानमतिनैपुण्यं कुतः स्यात्। अतएव कामोपदेशादेवंविधा दृष्टिः इदञ्चातिनैपुण्यमित्याशयः।

प्राप्तेति। प्राप्तः प्रसरोऽवकाशो यथा सैवंविधेवोपसृत्य, अस्य मुनिकुमारस्य तं द्वितीयं सहचरं सखायं मुनिबालकं तपस्विकुमारकं प्रणामपूर्वकं नमस्कारपूर्वकमपृच्छं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृष्टवती । भगवन् ! किमभिधानः किं नामायं तपस्विकुमारः, किं नाम्नो वा तपोधनस्यायं युवा सुत इति शेषः । किं नाम्नः किमभिधानस्य तरोर्वृक्षस्येयं विलोक्यमाना कुसुममञ्जरी, अवतंसीकृता कर्णभूषणीकृता ? हि यतोऽस्याः कुसुममञ्जर्याः समुत्सर्पन् प्रसरन् असाधारणसौरभ असामान्यघ्राणतृप्तिदायकगन्धः, अनाघ्रातपूर्वो नासिकयाऽगृहीतपूर्वोऽयं गन्धो मे मम मनसि महत् कौतुकमाश्चर्यं जनयति समुत्पादयति ।

स इति । स मुनिकुमारो मामीषत् किंचिद् विहस्याब्रवीत्—बाले ! अनेन पृष्टेन किं प्रयोजनं किं तवार्थोऽस्ति । अथ यदि तव कौतुकं कुतूहलं विद्यते तदावेदयामि कथयामि, श्रूयताम्—

(१५) अस्तीति । सकले समस्ते त्रिभुवने प्रख्याता प्रकृष्टतया प्रसिद्धा कीर्त्तिर्यस्य सः । अत्युदारमत्युदात्तं तपो यस्य सः । सुरा देवाः, असुराः दैत्याः, सिद्धाः योगसिद्धिमन्त्रादिक्षमदेवयोनिविशेषास्तेषां वृन्दः समूहस्तेन वन्दितं नमस्कृतं चरणयुगलं यस्य सः । दिव्यलोकनिवासी स्वर्गलोकनिवसनशीलो महामुनिः श्वेतकेतुर्नामास्ति विद्यते ।

तस्येति । तस्य भगवतः श्वेतकेतोः, सुरासुरलोकयोः देवदानवलोकयोर्याः सुन्दर्यो रमण्यस्तासां हृदयानि तेषामानन्दकरं प्रमोदोत्पादकम् । अशेषे समग्रे त्रिभुवने सुन्दरम् । अतिशयितोऽतिक्रान्तो नलकूबरस्तत्संज्ञको कुवेरसुतस्तदीयरूपं येन तत्तथोक्तम् । 'आसीत्' इति भूतकालनिरूपणेन जगद्वयसि न तथाविधं सौन्दर्यमिति व्यज्यते ।

स इति । स श्वेतकेतुः कदाचिद् देवतानां सुराणामर्चनाय पूजनाय कमलानि, उद्धर्तुमुत्तोलयितुम् । ऐरावतो हस्तिमल्लस्तस्य मदजलस्य दानवारेः बिन्दुभिः कणैः बद्धमुत्पादितं यत् चन्द्रकशतमनेकविधं वर्तुलाकृतिचिन्हवृन्दं तेन खचितं व्याप्तं जलं यस्याः सा ताम् । तथा हरहसितवत् महेशहास्यवत् सितं श्वेतं स्रोतः प्रवाहो यस्यास्ताम् । मन्दाकिनीमवततारावतीर्णवान् । अत्र हरेत्यादौ लुप्तोपमा छेकानुप्रासश्च ।

अवतरन्तमिति । यदा तस्मिन् कालेऽवतरन्तमाकाशादायान्तं तं श्वेतकेतुं मुनिं कमलवनेषु नलिनखण्डेषु सततं निरन्तरं सन्निहिता निकटवर्त्तिनी । विक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

-चानि प्रफुल्लानि सहस्रं पत्राणि यस्यं तादृशं पुण्डरीकं तस्मिन्नुपविष्टा स्थिता लक्ष्मीर्देवी ददर्श ।

तस्या इति । तं मुनिमालोकयन्त्याः पश्यन्त्याः तस्याः लक्ष्म्याः प्रेम्णा प्रीत्या मन्दमुकुलितेन किंचित् कुड्मिलितेन, आनन्दबाष्पभरस्य हर्षनेत्राम्बुसमूहस्य तरङ्गेण कल्लोलेन तरला चपला तारा यस्त तेन । लोचनयुगलेन रूपं सौन्दर्य-मास्वादयन्त्याः, सादरमवलोकयन्त्याः, जृम्भिकायाः कामवेशजनितशरीरमङ्गस्य आरम्भेण मन्थरं सालसं यन् मुखं तस्मिन् विन्यस्तः स्थापितो हस्तपल्लवो कर-किसलयं यया सा तस्याः । मन्मथः कामस्तेन विकृतं विकलं मन आसीत् ।

आलोकनेति । आलोकनमात्रेण केवलं निरीक्षणेनैव समासादितं प्राप्तं सुरं सम्भोगे यः समागमस्तस्य सुखं यया सा तस्याः । तस्मिन्नेवासनीकृते पुण्डरीके धवलकमले कृतार्थता सुरतसफलतासीत् । तस्मात् पुण्डरीकात् कुमारोऽयं युवा समुपादि समुत्पन्नः ।

तत इति । ततः कुमारोत्पत्तेरनन्तरं कुमारकमुत्सङ्गे क्रोडे आदाय गृहीत्वा सा लक्ष्मीः, हे भगवन् ! हे स्वामिन् ! गृहाण स्वीकुरु, अयं तवात्मजस्त्वदङ्गज इत्युक्त्वा प्रतिपाद्य तस्मै श्वेतकेतवे तं कुमारकं ददौ दत्तवती ।

असाविति । असावपि श्वेतकेतुरति बालजनोचिताः शिशुजनयोग्याः सर्वाः क्रियाः जातकर्मसंस्कारान् कृत्वा तस्य कुमारस्य पुण्डरीकं धवलकमलं तस्मात् सम्भव उत्पत्तिस्तस्य भावस्तत्ता तया 'पुण्डरीक' इति नाम इत्यन्वर्थाभिधानं चक्रे कृतवान् । पुण्डं सुन्दरेषु तिलकभावं मुख्यत्वं रिणाति व्रजति लभत इति पुण्डरीकं ततः स्वार्थिककप्रत्ययः ।

प्रतीति । प्रतिपादितं सम्पादितं व्रतं यज्ञोपवीतं यस्य तम् । तथा आगृहीत पाठितः सकलानां निखिलानां विद्यानां कलापः समूहो येन तम्, तं पुण्डरीकम् कार्षीत् कृतवान् श्वेतकेतुरिति सम्बन्धः । अयं सः युवा ।

(१६) इयमिति । इयमित्यस्य 'तस्य च मञ्जरी' इत्यत्रान्वयः । सुरासुरैः देवराक्षसैः मथ्यमानात् विलोड्यमानात् क्षीरसागराद् दुग्धाम्बुधेः पारिजातनामा मन्दारसंज्ञकः पादपो वृक्ष । पारमस्यास्तीति पारी समुद्रस्तत्र जातः, पारि-जातशब्दव्युत्पत्तिः । उद्गतो निःसृतः, तस्य तरोरियं कर्णावतंसीकृता मंजरी एषा कुसुममंजरी च व्रतविरुद्धं विलाससामग्रीत्वेन ब्रह्मचर्यप्रतीपं यथा स्यात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा अस्य पुण्डरीकस्य श्रवणसंसर्गं कर्णसंयोगं यथा येन प्रकारेणासादितवती प्राप्तवती तदपि वृत्तं कथयामि। गौतमधर्मसूत्रे 'वर्जयेन्मधुमांसगन्धमाल्याभरण-दिवास्वप्नाभ्यञ्जनयानोपानच्छत्र···। इत्यादिना व्रतविरुद्धत्वं ज्ञेयम्।

अद्येति। अद्य अस्मिन्नहनि चतुर्दशी तिथिरिति हेतोः।

"उपासना हरेरुक्ता चैकादश्यां महामुने।
चतुर्दश्यां शिवस्येति महापुण्यफलप्रदा॥"

इत्युक्त्या शिवोपासनायां चतुर्दशीतिथेरधिकमाहात्म्यादित्याशयः। कैलासगतं रजताद्रिस्थं भगवन्तं माहात्म्यवन्तमम्बिकापतिं महेशमुपासितुं सेवितुमयं पुण्डरीको मया कपिञ्जलेन सहामरलोकात् स्वर्गात् नन्दनवनसमीपेन सुरेशो-पवनन्विकटेनानुसरन् कैलासपर्वतमागच्छन्, निर्गत्य सुरेशोपवनाद् वहिर्निःसृत्य साक्षान्नन्दनवनदेवतया प्रत्यक्षभूतया देव्या प्रणम्य नमस्कृत्याभिहित उक्त इति सम्बन्धः। तृतीयाया एकवचनान्तानि पदानि 'नन्दनवनदेवतया' इत्यस्य विशेषणानि। मधुमासलक्ष्म्या वसन्तमासश्रिया दत्तोऽर्पितो ललितहस्तस्य स्वस्य सुन्दरकरस्यावलम्ब आश्रयो यस्याः तया। वकुलः केसरस्तस्य मालिका स्रक् सैव मेखला रशना यस्याः सा तया। कुसुमैश्च पल्लवैश्च ग्रथिताभिर्गुम्फिताभिराजानु आनालकीलं' यावल्लम्बिनीभिः कण्ठमालिकाभिर्निगरणस्रग्भिर्निरन्तरमाच्छात आवृतो विग्रहो यस्याः सा तया। नवा नूतनाश्च चूताङ्कुरा आम्रमुकुला कर्णपूरा कर्णावतंसा यस्याः तया। पुष्पासवस्य प्रसूनमधुमद्यस्य पानेन मत्ता तया।

भगवन्निति। भगवान्! स्वामिन्! सकलं यत् त्रिभुवनं तस्य दर्शनेऽवलोकने-ऽभिरामयाः सर्वतो मनोहारिण्याः, अस्या अवलोक्यमानायास्तवाकृतेः तव स्वरू-पस्य सुसदृशोऽनुरूपोऽयमलङ्कारो भूषणं प्रसादीक्रियताम्, विधीयताम्।

इयमिति। अवतंसे भूषणस्थाने कर्णे यो विलासो विभ्रमस्तत्र दुर्ललितं क्रीडितं यस्याः सैवंविधा मञ्जरी श्रवणशिखरं कर्णोर्ध्वप्रदेशं समारोप्यतां संस्थाप्यताम्। पारिजातस्य मन्दारस्य जन्म उत्पत्तिः सफलतां सार्थकतां व्रजतु गच्छतु।

इतीति : इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेणाभिदधानां कथयन्तीमयं पुण्डरीकः, आत्मो यद्रूपं सौन्दर्यं तस्य स्तुतिवादः प्रशंसनं तस्माद् या त्रपा लज्जा तयानवमिते नम्री-कृते लोचने नेत्रे येनैवंभूतस्तामनादृत्यैव, अनादरं कृत्यैव गन्तुं प्रवृत्तो गमनायो-द्यतोऽभूत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मवेति। तां वनदेवतामनुव्रजन्तीम्, आलोक्य दृष्ट्वा 'हे सखे! मित्र! को दोषः अस्या वनदेवताया अनुरोधस्वीकारे मञ्जरीग्रहण इत्यर्थः। प्रणयस्य स्नेहस्य परिग्रहः विधियताम् स्वीक्रियताम्, इत्यभिधाय इत्युक्त्वा, इयं कुसुममञ्जरी, अनिच्छतोऽपि कर्णोपरिस्थापनमनोभिलषितस्यऽपि, अस्य पुण्डरीकस्य, बलात् हठात् कर्णपूरीकृता श्रवणाभरणीकृता। तत् तस्मात् कारणात्, जिज्ञासाविषयीभूतमेतत् कार्त्स्न्येन साकल्येन, यश्चायं तपोधनयुवा, यस्य चायं सुतः, या चेयं कुसुममञ्जरी, यथा येन प्रकारेण चास्य पुण्डरीकस्य श्रवणशिखरं कर्णस्थलं समारूढा प्राप्ता तत् सर्वमावेदितं कथितम्। कार्त्स्न्येनेत्यत्र दुःश्रवत्व-दोषः।

(१७) इतीति। तस्मिन् सहचरे कपिञ्जले, इत्युक्तवति सति स तपोधनयुवा पुण्डरीकः, किञ्चिद्, ईषद्, उपदर्शितं प्रकटितं स्मितं येन स तथोक्तःसन् मामवादीदवोचत्। 'अयि कुतुहलिनि! कौतुकवति! अनेन प्रश्नस्य पृच्छाया आयासेन परिश्रमेण किम्? यदि रुचितो रुचिविषयीभूतः सुरभिपरिमलो यस्याः सा, इयं मञ्जरी तदा गृह्यताम्। इत्युक्त्वा समुपसृत्य, आत्मीयात् स्वकीयात् श्रवणात् श्रोत्राद् अपनीय, उन्मुच्य, तां कुसुममञ्जरीम्, कलैर्मधुरैः अलीनां भ्रमराणां यत् कुलं तस्य क्वणितानि ध्वनयस्तैः प्रारब्धा प्रस्तुता रतिसमागमस्य सम्भोगसंसर्गस्य प्रार्थना यया तामिव सतीं मदीये श्रवणपुटेऽकरोत्। उत्प्रेक्षा।

ममेति। मम महाश्वेतायास्तु तस्य यत् करतलं तत् स्पर्शलोभेन पुण्डरीक-पाणितलस्पर्शतृष्णया तत्क्षणं तत्काले अवतंसस्थाने कर्णप्रदेशे, अपरं द्वितीयं पारिजातकुसुममिव मन्दारपुष्पमिव पुलकं रोमाञ्चं आसीदभवत्। उत्प्रेक्षा।

स इति। स पुण्डरीको मम कपोलयोः स्पर्शसुखेन तरलीकृतं कम्पितम्, अङ्गुलीनां जालकं समूहो यस्य तस्मात् करतलात् पाणितलात् लज्जया त्रपया सह गलितामपि पतितामपि, अक्षमालां जपमालां नाज्ञासीत् न ज्ञातवान्। सहोक्तिरलङ्कारः।

अथेति। अथानन्तरम्, अहं भूतलं पृथ्वीतलम्, असम्प्राप्तामेव, अपतितामेव तामक्षमालां जपमालां गृहीत्वा, तस्य पुण्डरीकस्य भुजपाशेन बाहुपाशेन संदानितः संयतो यः कण्ठग्रहः कण्ठालिङ्गनं तज्जनितं यत् सुखं तत् सदृशमिव सुखमनुभवन्तीव साक्षात् कुर्वन्तीव, दर्शिता प्रकटिता, अपूर्वायाः हारलतायाः मुक्ता-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वल्याः लीला शोभा यया तां तादृशीं सतीम्, सलीलं यथा स्यात्तथा कण्ठस्याभरणतां भूषणतामनयम्। अत्रेवशब्दः सादृश्यार्थः। तदुक्तमलङ्कारशेखरे—'भवन्तीवानिशब्दाश्च सादृशप्रतिपत्तये'। इति भानुचन्द्रः। उत्प्रेक्षा निदर्शना च।

इत्थमिति। इत्थंभूते एतादृशे व्यतिकरे परस्परानुरागातिशये जाते सति छत्रग्राहिणी मामवोचदब्रवीत्—'भर्तृदारिके! राजपुत्रि! स्नाता कृतस्नाना देवी त्वन्माता वर्तते। अथ च गृहे गमनस्य कालः प्रत्यासीदति विघ्नितो भवति। तत् तस्मात् मज्जनविधिः स्नानकर्म क्रियताम् इति।

अहमिति। तु परन्तु, अहं प्रथमोऽङ्कुशस्य पातस्तेन नवो ग्रहो ग्रहणं यस्याः सा तथोक्ता करिणी हस्तिनीव कथं कथमपि महता कष्टेनानिच्छया समाकृष्यमाणा सती, लावण्यं तस्य सौन्दर्यमेव पङ्कः कर्दमस्तत्र मग्नां लीनामिव। तस्य कपोलयोः ये पुलका एव कण्टकास्तेषां जालं तत्र लग्नामिव। 'कण्टकः क्षुद्रशत्रौ च' इति विश्वः। मदनस्य कामस्य ये शराः बाणास्तेषां शलाका इषिकास्ताभिः कीलितामिव यन्त्रितामिव। सौभाग्यमेव गुणस्तन्तुस्तेन स्यूतां कृतसीवनामिव। तन्मुखात् तदाननादतिकृच्छ्रेणातिक्लेशेन दृष्टिं चक्षुः समाकृष्य परावर्त्य स्नातुं मज्जितुमुदचलमुदव्रजम्। अत्र 'नवग्रहा करिणी' इत्यत्र उपमा। 'लावण्यपङ्कमग्नामिव' इत्यत्र निरङ्गरूपकमुत्प्रेक्षा च, तयोः सङ्करः। 'कपोलपुलके'त्यत्र 'सौभाग्यस्यूतामिवे'त्यत्रोत्प्रेक्षा निरङ्गरूपकं च। 'मदनशरशलाकाकीलितामिव' उत्प्रेक्षा।

उच्चलितेति। उच्चलितायां प्रोद्व्रजितायां मयि द्वितीयो मुनिदारकस्तापसकुमारः, तस्य पुण्डरीकस्य धैर्यस्खलितं मदनस्य कामस्य विकारेण धृतेर्भङ्गस्तमालोक्य वीक्ष्य किञ्चित् प्रकटित आविष्कृतः प्रणयकोषः स्नेहक्रोधो येन तत्सदृश इव सन् अवादीत्—

(१८) सख इति। सखे! मित्र! पुण्डरीक! एतद् विधीयमानं भवतस्तव नानुरूपं नोचितम्। एष मार्गः रमणीदर्शने कामभावः क्षुद्रजनैः प्राकृतजनैः क्षुण्ण आचरितः। हि यतः साधवः सत्पुरुषाः धैर्यमेव धनं येषां ते एवंविधा भवन्ति। यः कश्चनानिर्दिष्टाभिधानः प्राकृतः पामरस्तद्वदिव विक्लवीभवन्तं विह्वलीभवन्तमात्मानं किं न रुणत्सि किं न निरोधं करोषि। तव भवतोऽयमपूर्वं अनुत्पन्नपूर्वः कुतः कस्माद् इन्द्रियाणामुपप्लवः पर्याकुलीभावः। येनोपप्लवेनैवं कृतोऽसि। ते तव धैर्यं धीरता क्व? तथेन्द्रियाणां करणानामसौ जयो निरोधः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क ? तथा चेतसो मनसस्तद् वशित्वं स्वतन्त्रत्वं क ? चेतसः क साऽलोकसामान्या प्रशान्तिः ? कुलक्रमेणागतं वंशपरम्परासमधिगतं तद् ब्रह्मचर्यं क ? सर्वेषु विषयेषु समस्तेन्द्रियार्थेषु निरुत्सुकता निरभिलाषिता क ? गुरूणां हिताहितोपदेष्टाणाम्, उपदेशाः शिक्षाः क ? गुरुत्वं च 'गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद् रुशब्दस्तन्निवर्तकः' इत्याकारकम् । तानि प्रसिद्धानि श्रुतानि शास्त्राणि क ? ताः समुदात्ताः वैराग्य-बुद्धयः विरक्तमतयः क ? तासां रमणीनामुपभोगः पुनः पुनः सेवनं तस्मिन् विद्वेषित्वं वैरित्वं क ? सुखात् पराङ्मुखता व्यावृत्तता क ? तपसि तपस्यायामसौ, अभिनिवेश आग्रहः क ? भोगानां विषयाणामुपरि सा रुचिरस्पृहा क ? तद् यौवनस्यानुशासनं नियमनं क ?

सर्वथेति । सर्वथा सर्वतोभावेन प्रज्ञा प्रकृष्टा बुद्धिः निष्फला निःप्रयोजना । धर्मशास्त्राणामभ्यासः पौनःपुन्येनावर्त्तनं निर्गुणो गुणशून्यः, अभिमतफलानुत्पादनात् । संस्कारो विनयशिक्षा शास्त्राभ्यासजन्या, अन्तःकरणशुद्धिर्वा निरर्थकोऽर्थरहितः गुरूणामुपदेशाद् यो विवेकः सदसद्विचारक्षमता निरुपकारको निरर्थकः । प्रबुद्धता बुद्धेः प्रगल्भता निःप्रयोजना निर्हेतुका । ज्ञानं श्रुतादिः निःकारणम् । यदिति हेत्वर्थे, अत्रास्मिन् अवसरे रागो विषयाभिलाषस्तत्राभिषङ्ग आसक्तिस्तैः, भवादृशा अपि कलुषीक्रियन्ते मलिनीक्रियन्ते । प्रमादैर्विषयादिभिः । 'प्रमादोऽनवधानता' इत्यमरः । अभिभूयन्ते पराभूयन्ते ।

कथमिति । करतलाद् हस्ततलात् गलितां च्युतां तया अपहृतां स्वायत्तीकृतामक्षमालामपि कथं कस्मात् कारणात् न लक्षयसि जानासि । अहो आश्चर्यम् । विगतचेतनत्वं संज्ञाराहित्यम् ।

अपेति । अनया पुरतो विलोक्यमानया, अनार्यया, असंस्कृतया, इयमक्षमाला, अपहृता बलाल्लुण्ठिता नाम । सम्प्रति, इदं तावद्, अपह्रियमाणं समाकृष्यमाणहृदयं चित्तमपि निवार्यताम्' ।

इतीति । इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण तेन कपिञ्जलेनाभिधीयमानः कथ्यमानः किंचिदुपजाता लज्जा यस्य सः, तादृश इव प्रत्यवादीत्—सख इति । 'सखे ! मित्र कपिञ्जल ! किं कथं मामन्यथा तया हृतचेतस्कं सम्भावयसि । नाहं तथेत्यर्थः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाहमिति। अहम्, एवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया इममक्षमालाग्रहणापराधं जपमालस्वीकरणागसं न मर्षयामि क्षमे।

अत्र द्योतिताया अपि कामविकारजनिताया अधीरतायाः कोपजनितत्व-व्याजेन गोपनाद् व्याजोक्तिरलङ्कृतिः।

(१९) इतीति। इत्यभिधाय, इत्युक्त्वा, अलीको मिथ्या न तु वास्तवः। एवंविधो यः कोपस्तेन कान्तेन मनोहरेण, प्रयत्नेन प्रयासेन विरचिता भीषणा भयङ्करा भ्रुकुटिरेव भूषणमलङ्कारो यस्य तेन तादृशेन, चुम्बनस्याभिलाषस्तेन स्फुरितः कम्पितोऽधर ओष्ठो यस्मिन्। मुखमिन्दुश्चन्द्र इव मामवदत्—चपले! चञ्चले इमामक्षमालां जपमालामदत्वा, असमर्प्य अस्मात् प्रदेशात् स्थानात् पदात् पदमपि, एकपादमपि न गन्तव्यम्'।

अत्र त्रासकारणीभूतभ्रुकुटितोऽलङ्कारगुणशोभाभाजनाद् विषमालङ्कारः। 'मुखेन्दुना' इत्यत्र लुप्तोपमा।

तच्चेति। तत् पूर्वोक्तं श्रुत्वा, आत्मकण्ठात् स्वकीयगलात्, अहमुन्मुच्य मकरध्वजस्य कामस्य लास्यारम्भो नृत्यप्रारम्भस्तत्र लीलापुष्पाञ्जलिं क्रीडाप्रसूनाञ्जलिं तद्रूपाम्, एकावलीमेकपंक्तिकं हारं 'भगवन्! तपोनिधे! गृह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखे आसक्ता निबद्धा दृष्टिर्यस्य तस्य, शून्यं विषयान्तरज्ञानविर्वाजतं हृदयं यस्य तस्य, अस्य पुण्डरीकस्य प्रसारिते विस्तारिते तेपाणौ हस्ते निधाय स्थापयित्वा स्वेदसलिलेन धर्मजलेन स्नातापि पुनः स्नातुमवातरमवतीर्णवती।

उत्थायेति। अहमुत्थाय सरोवरादच्छोदादुत्थानं कृत्वा सखीजनेन प्रयत्नेन निम्नगा सरिदिव कथमपि कष्टेन, प्रतीपं प्रतिकूलं नीयमाना प्राप्यमाणा तमेव मुनिकुमारं चिन्तयन्ती ध्यायती सती, अम्बया मात्रा सह स्वभवनं निजगृहमया-सिषमागतवती 'निम्नगेव' इत्यत्रोपमा।

गत्वेति। गत्वा स्वभवनं कन्यान्तपुरं कन्यावरोधं प्रविश्य ततःप्रभृति तत्क्षणादारम्य तस्य पुण्डरीकस्य विरहेण वियोगेन विधुरा विकला सत्यहमिति सर्वं नावगच्छमिति दूरेण सम्बन्धः। किम्, आगता गृहमायातास्मि? किं तत्रैव, अच्छोदतीरे स्थितास्मि? किम्, एकाकिनी, असहायास्मि? किं परिवृता जनैः परिवेष्टितास्मि? किं तूष्णीं मौनमस्मि? किं प्रस्तुतालापा सहचरीभिरारब्ध-वार्तास्मि? किं जागर्मि प्रबुद्धास्मि? किं सुप्ता निद्रितास्मि? किं रोदिमि रोदनं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करोमि? किं न रोदिमि न विलपामि? किं दुःखमिदम्? किं सुखमिदम्? किम्, उत्कण्ठा, उत्सुका, इयम्? किं व्याधिरयम्? किं व्यसनं विपदिदम्? किम्, उत्सवः समारोहोऽयम्? किमेष दिवसो वासरः? किमियं निशा रात्रिः? कानि रम्याणि रमणीयानि कानि चारम्याणि अमनोहराणि, इति सर्वं नावगच्छम्, न ज्ञातवती।

अविज्ञातेति। अविज्ञातोऽविदितो मदनस्य वृत्तान्तो यया सा, एवंभूता क्व गच्छामि व्रजामि? किं करोमि? किं शृणोमि? किं पश्यामि? किमालपामि वदामि? किं कथयामि निवेदयामि, अस्य कः प्रतीकारः प्रतिक्रिया, इति सर्वं समग्रं च नाज्ञासिषं न ज्ञातवती।

केवलमिति। केवलमितरवस्तुनिरपेक्षं कुमारीपुरस्य कन्यानगरस्य प्रासाद-मारुह्य आरोहणं विधाय च पुनः सखीजनं सहचरीसमूहं विसर्ज्य स्वस्थानाय प्रेष्य, द्वारि निवारितः प्रतिषिद्ध अशेषाणां निखिलानां परिजनानां भृत्यानां प्रवेश अभ्य-न्तरागमनं यस्य सा। सर्वव्यापारान् निखिलकृत्यान्, उत्सृज्य विमुच्य, एका-किनी, अद्वितीया मणीनां जालं समूहो यस्मिस्तादृशे गवाक्षे वातायने निक्षिप्तं मुखं यया सा। तेन तापसदारकेण सनाथतया समन्विततया प्रसाधितां भूषि-तामिव। कुसुमान्यस्याः सञ्जातान्यसौ कुसुमिता तामिव। महान्ति रत्नानि यत्र तेन निधानेनाधिष्ठिता आश्रिता तामिव। अमृतरसस्य यः सागरः समुद्रस्तस्य पूरेण प्लवेन प्लावितां पूरितामिव। पूर्णो यश्चन्द्रोदयस्तेनालंकृतां भूषितामिव। दर्शने सुभगां मनोहराम्। तामेव तापसदारकशोभितां दिशं केवलमीक्षमाणा सती, निष्पन्दं निश्चेष्टमतिष्ठमिति दूरेणान्वयः।

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः।

तस्मादिति। तस्माद् दिगन्तरात् तेन तापसकुमारेणाश्रिताद् दिग्विशेषात् आगच्छन्तमायान्तम्, अनिलं पवनमपि, वनस्य कुसुमानां परिमलं गन्धमपि, शकुनिध्वनिमपि तादृशं पक्षिनिनादमपि, तस्य तापसदारकस्य वार्त्तां प्रष्टुमीह-मानाभिलषन्ती सती।

तदिति। तस्य पुण्डरीकस्य वल्लभतया प्रियतया तपःक्लेशाय तपस्या-दुःखायापि स्पृहयन्ती स्पृहां कुर्वन्ती, तस्य तापसबालकस्य प्रीत्येव गृहीतं मौनव्रतं यया सा तादृशी। स्मरेण कामेन जनितः समुत्पादितः पक्षपातोऽङ्गीकारस्तादृश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुमारे प्रेम यस्याः सा चाहम् । तेन पुण्डरीकेण परिग्रहात् स्वीकारादेव मुनिवेषस्याग्राम्यतां निर्दोषताम् । स एवास्पदं प्रतिष्ठा यस्य तस्य भावस्तत्ता तया यौवनस्य चारुतां रमणीयताम् । तस्य मुनेर्यः श्रवणसम्पर्कः कर्णसंयोगस्तस्मात् पारिजातकुसुमस्य मनोहरतां मनोरमताम् । तस्य मुनिकुमारस्य निवासस्तस्मात् सुरलोकस्य रम्यतां चारुताम् । तस्य मुनिपुत्रस्य रूपसंपदा सौन्दर्यसम्पत्त्या कुसुमायुधस्य कामस्य दुर्जयतां दुर्जेयतामध्यारोपयन्ती सती, सर्वत्र कामकृतपक्षपातादित्यर्थः ।

अत्र 'अध्यारोपयन्ती' इत्येकया क्रियया 'अग्राम्यतामि' इत्यादीनामनेकेषां कर्मत्वेनाभिसम्बन्धात् तुल्ययोगितालङ्कारः ।

दूरेति । दूरस्थस्यापि सवितुः सूर्यस्य कमलिनीव नलिनीव, दूरस्थस्यापि चन्द्रमसः शशिनः सागरवेलेव समुद्रजलोच्छ्वास इव, दूरस्थस्यापि जलधरस्य पयोदस्य मयूरीव, दूरस्थस्यापि तस्यैव मुनिकुमारस्यैवाभिमुखी संमुखी सती । अत्र मालोपमा ।

तथैवेति । तस्य तापसदारकस्य विरहेण वियोगेनातुरं पीडितं यज्जीवितं प्राणितं तस्योद्गमे शरीरान्निष्क्रमणविषये रक्षावलीं निष्क्रमतो जीवस्य रक्षार्थमभिमन्त्रितां मालामिव तामक्षावलीं जपमालां तथैव पूर्ववदेव कण्ठेनोद्वहन्ती धारयन्ती सती । उत्प्रेक्षा ।

तथैवेति । वस्तुतः प्रक्रान्तस्तस्य पुण्डरीकस्य सम्बन्धे रहस्यालापः गोपनीयवार्त्ता यया तयेव, तथैव तेनैव प्रकारेण कर्णे लग्नया संसक्तया । अपरोऽपि । रहस्यं वक्तुं कर्णे लगति । पारिजातमञ्जर्या, उपलक्षिता । उत्प्रेक्षा ।

तथैवेति । तस्य यः करतलस्पर्शस्तस्माद् यत् सुखं तेन जन्म समुत्पत्तिर्यस्य तेन, कदम्बस्य मुकुलं कुड्मलं तस्य कर्णपूरायमाणेन कर्णपूरवादाचरमाणेन रोमाञ्चजालेन तथैव कण्टकितं समुद्भूतकण्टकमेकम्, अद्वितीयं कपोलफलकं यस्याः सा तथोक्ता निष्पन्दं निश्चलम्, अतिष्ठं स्थितवती । उपमा ।

(२०) अथेति । अथानन्तरं ताम्बूलकरङ्कवाहिनी ताम्बूलपात्रधारिणी मदीया तरलिका, मयैव सह स्नातुं मज्जितुं गतासीत् । सा ताम्बूलकरङ्कवाहिनी तरलिका च पश्चात् मद्गृहगमनानन्तरं चिरादिव बहुकालादिव, आगत्य तथा तेन प्रकारेणावस्थितां मां शनैः शनैरवादीत् । भर्तृदारिके ! यौ तौ तापसकुमारकौ मुनि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दारकौ कपिञ्जलपुण्डरीकनामानौ दिव्याकारौ मनोहराकृती, अस्माभिरच्छोदसरस्तीरे दृष्टौ, तयोर्द्वयोर्मध्ये एकः पुण्डरीक इत्यर्थः। येन भर्तृदुहितुर्भवत्या इवं पुरतो वर्तमाना सुरतरोः पारिजातस्य कुसुममञ्जरी अवतंसीकृता कर्णाभरणीकृता स मुनिः पुण्डरीकः, तस्माद् द्वितीयात् कपिञ्जलाद्, आत्मनः स्वस्य दर्शनं रक्षन् गोपयन्, अतिनिभृतानि, अतिनिश्चलानि, पदानि यस्यैवंभूतः कुसुमितं लतानां संतानं परम्परा यत्र तस्य गहनस्य अन्तरेण मध्येन, आगच्छन्तीमायान्तीं मां पृष्ठतः पश्चाद्भागत आगत्य भर्तृदारिकामुद्दिश्य संलक्ष्य अप्राक्षीत् पृष्टवान्—

बालिक इति। 'बालिके! कन्यके! का इयं कन्यका? कस्य महात्मनः अपत्यं पुत्री? किमभिधाना किं नामिका? क्व वा गच्छति व्रजति? मया तरलिकया उक्तम्—भगवतः श्वेतभानोश्चन्द्रस्य, अंशुसंभूतायां रश्मिसमुत्पन्नायां गौर्यां गौर्यभिधानायामप्सरसि समुत्पन्ना सञ्जाता एषा कन्यका, सकलानां निखिलानां गन्धर्वाणां मुकुटेषु या मणिशलाकास्तासां शिखरैः अग्रैः उल्लेखेन घर्षणेन मसृणितं चिक्कणितं चरणयोः पादयोः नखानां चक्रं समूहो यस्य तस्य। एतेन तस्य चक्रवर्तित्वं व्यज्यते। प्रणयेन स्नेहेन प्रसुप्ताः गन्धर्वकामिन्यः गन्धर्वरमण्यस्तासां कपोलेषु या पत्रलताः पत्रकाराश्चित्रविशेषाः ताभिर्लाञ्छिते चित्रिते भुजौ तरू इव तयोः शिखरे शीर्ष देषे यस्य तस्य। अनेन कलाकौशलं ध्वनितम्। पादपीठीकृतं पादासनीकृतं लक्ष्म्याः श्रियः करकमलं यस्य स तथा तस्य। एतेन दानशौण्डत्वं सूच्यते समृद्धेः पाराकाष्ठा च। देवस्य पूज्यस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता सुता महाश्वेता नाम गन्धर्वाणामधिवासं निवासस्थानं हेमकूटाचलं हेमकूटगिरिमभिप्रस्थिता। अत्र हंसस्य मुख्यप्रतिपादनकार्यं प्रति हेतुत्रयम् दर्शनाद् समुच्चयः।

इतीति। इति मया कथिते सति, किमपि अनाकलनीयं चिन्तयन् ध्यायन् मुहूर्त्तमिव तूष्णीं मौनं स्थित्वा विगतनिमेषेणोन्मेषविहीनेन चक्षुषा चिरम् अभिवीक्षमाणो विलोकयमानो मां प्रति सानुनयं सप्रणयम्, अर्थिता याचकतां दर्शयन् प्रकटयन्निव पुनराह। 'बालिके! कल्याणं श्रेयो विद्यते यस्याः सा शुभा, अविसंवादिनी, अव्यभिचारिणी बालभावेऽप्रौढत्वेऽपि, अचपला, अचञ्चला तव इयमाकृतिरवलोक्यत इति शेषः। तत्तस्माद्धेतोः अभ्यर्थ्यमाना अनुरुध्यमाना त्वम्, एकं वचनं मम करोषि विधास्यसि किमिति काकुः। भविष्यदर्थे लट्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत इति । ततस्तदनन्तरं सविनयं सप्रश्रयं यथा स्यात्तथा उपरचितं बद्धमञ्जलिपुटं यया तया मया तरलिकया दर्शित आदरो यत्र कर्मणि तद् यथास्यात्तथा अभिहितः—'भगवन् ! कस्मात् कारणाद्, एवमभिधत्से कथयसि । अहं का बालव्यजनधारिणी पामरीति भावः । सकले त्रिभुवने पूजनीया वन्दनीया महात्मानो महाशयास्त्वादृशाः पुण्यैर्विना पूर्वजन्मकृतसुकृताभावेऽस्मद्विधेषु क्षुद्रेषु निखिलं समस्तं यत् कल्मषं दुरितं तदपहरणशीलां दृष्टिं न पातयन्ति, किं पुनराज्ञाम्, सा तु दूरादेवापास्ता । तत् तस्मात् विश्रब्धं सविश्वासं तथा स्यात्तथा कर्त्तव्यं मया करणीयं कृत्यमादिश्यताम् । अयं मल्लक्षणो जनोऽनुगृह्यताम् ।

एवमिति । मया एवमुक्तः पूर्वोक्तप्रकारेण निगदितः स पुण्डरीकः 'पत्रिकामर्पितवान्' इति सम्बन्धः । सस्नेहया सप्रेम्णा दृष्ट्या वीक्षणेन, सखीमिव, उपकारिणीमिव, उपकर्त्रीमिव, प्राणप्रदामिव जीवितदात्रीमिव च माम्, अभिनन्द्य प्रमोदमुत्पाद्य निकटवर्तिनः समीपस्थायिनः तमालपादपात् तापिच्छतरोः पल्लवं किसलयमादाय गृहीत्वा, तटशिलातले तीरस्थप्रस्तरोपरि निष्पीड्य संमर्द्य, गन्धगजस्य गन्धहस्तिनः । 'यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः' । स गन्धगजः । मदो दानं तद्वत् सुरभिः सुगन्धः परिमलो यस्यैवंविधेन रसेनोत्तरीयं यद् वल्कलं तस्यैकदेशाद्, एकप्रदेशात् पट्टिकां विपाट्य द्वैधीकृत्य स्वकीय आत्मीयो यो हस्तः पाणिः स एव कमलं तस्य कनिष्ठिका तस्याः नखशिखरेण इयं पत्रिकाभिलिख्य त्वया भवत्या एकाकिन्यै, अद्वितीयायै प्रच्छन्नं गुप्तं यथा स्यात्तथा देया । इत्यभिधायार्पितवान् दत्तवान् । इत्युक्त्वा च सा ताम्बूलकरङ्कवाहिनी तरलिका ताम्बूलभाजनात् ताम्बूलपात्रात् तां पत्रिकामाकृष्य निष्कास्य अदर्शयत् दर्शितवती । अत्र सर्वत्र उत्प्रेक्षा ।

अहमिति । शब्दमयेनापि शब्दात्मकेनापि तेन पत्रेण अन्तरन्तःकरणे स्पर्शसदृशं सुखं जनयता समुत्पादयतेव, श्रोत्रविषयेणापि कर्णगोचरेणापि रोमोद्गमैः-समस्तावयवेषु रोमाञ्चैः, अनुमितः सर्वाङ्गेषु अनुप्रवेशो यस्य तथोक्तेनेव; सर्वावयवेषु प्रवेशाभावे समस्तेष्वेव तेषु रोमोद्गमासम्भवात् । मदनस्य कामस्यावेशोऽनुप्रवेशस्तदर्थो मन्तस्तेनेव तस्य पुण्डरीकस्य सम्बन्धिना सम्बन्धेनालापेन संलापेन, आवेश्यमाना अभिनीयमाना सती, तस्याः तरलिकाया तां वल्कलैकदेशमादाय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गृहीत्वा, तस्यां पत्रिकायामभिलिखिताम्, इमाम्, आर्यां छन्दोबद्धार्याक्षरमालाम्, अपश्यम् । उत्प्रेक्षा ।

दूरमिति । हे सुन्दरी ! त्वया विसं मृणालं तद्वत् सिततया शुभ्ररूपतया मुक्तालतया विप्रलोभ्यमानः प्रतार्यमाणः, निजसङ्गमलोभं प्राप्यमाणः, मां लक्ष्यीकृत्यात्मन्यपि कामावेशेनैव तथाविधकौशलविधानात् । अतएव दर्शिता आशा फलप्राप्त्याशा यस्यैवंभूतः, मे मम मानसात् जन्म उत्पत्तिर्यस्य स एवंविधो मानसजन्मा कामः, हंस इव त्वया दूरं नीतः । कामुकेषु कामिनीद्वाराप्रलोभमानस्यात्यन्तोद्दीपकत्वादिति भावः । हंसपक्षे—मानसे तन्नामकसरोवरे जन्म यस्यैवंभूतो हंसो विससितया मुक्तालतया विप्रलोभ्यमानः दर्शिताशो दूरं नीतः । भक्षणलोभेन हंसस्य नीयमानमृणालानुसरणात् । 'दर्शिताशा गमनार्थं दिग् यस्यैवंभूतोऽन्यत्र नीयते ।' इति भानुचन्द्रः । पूर्णोपमा । आर्या जातिः । स्वल्पं विससितमिति विससिता, अत्र स्त्रीत्वं तु 'स्त्री स्यात् काचिन्मृणाल्यर्विवक्षापचये यदि ।' इत्यमरोक्तदिशेत्यवधेयम् । हंसपक्षे सितपदस्य परनिपातस्तु अग्निस्तोकवदिति मनीषिणः ।

(२१) अनयेति । अनया पत्रिकया आर्यया वा मे मया दृष्टया सत्या, स्मरेणातुरस्य पीडितस्य मे मम मनसः सुतरां बहुलतया दोषाणां विकारस्योपचयः वृद्धिरक्रियत इत्यन्वयः । केन कस्येवेत्याह दिङ्मोहस्य दिग्भ्रमस्य भ्रान्त्या प्रनष्टं विलुप्तं वर्त्म मार्गो यस्य तस्य पुरुषस्येव । दोषोऽत्र मार्गात् परिभ्रंशरूपः । एवं सर्वं योज्यम् । बहुलनिशया कृष्णपक्षरजन्यान्धस्येव गताक्षस्येव । जिह्वायाः उच्छित्त्या कर्त्तनेन मूकस्येव । इन्द्रजालिकस्य मायिकस्य या पिच्छिका यया लोकानां दृग्बन्धः क्रियते अतत्त्वदर्शिनः प्रकृत्या भ्रान्तस्येव । ज्वरप्रलापस्य प्रवृत्तिः प्रवर्त्तनं तस्यासम्बन्धभाषिण इव कद्वदस्येव । दुष्टनिद्रया दोषजनकस्वापेन विषविह्वलस्य विषव्यग्रस्येव । लोकायतेन निखिलेष्वेव भुवनेषु निश्चितेन प्रत्यक्षप्रमाणवादेन संसृष्ट इति लोकायतिको चार्वाको नास्तिकः, तेषां विद्यया शास्त्रेणाधर्मरुचितस्य । चार्वाकमतं च—

'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् ।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ।
जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥'

मदिरया मद्यपानेन उन्मत्तस्येव मत्तस्येव । दुष्टो य आवेश पापादिग्रहानुप्रवेश-स्तस्य क्रिया कर्म तया पिशाचग्रहस्येव पिशाचपराभूतपुरुषस्येव । दोषविकारो-पचयः, इत्यादिवचनं व्याख्यातम् । येन दोषविकारोपचयेन, आकुलीक्रियमाणा व्यग्रीक्रियमाणाहं पूरेण प्रवाहेन सरिदिव नदीव विह्वलतां विकलयाभ्यगमं प्रापम् । उपमा ।

तामिति । द्वितीयवारं तापसकुमारस्य दर्शनेन, तां तरलिकां कृतं महत् पुण्यं सुकृतं ययैतादृशी तामिव । अनुभूतोऽनुभवविषयीकृतः सुरलोकवासः स्वर्गे निवासो यया तादृशीमिव । देवतया अधिष्ठितामाश्रितामिव । लब्धो वरो देवप्रसादो यया तादृशीमिव । पीतमास्वादितममृतं यया सा तामिव । समासादितः प्राप्तस्त्रैलोक्यस्य राज्यमाधिपत्यं तस्याभिषेकोऽभिषिञ्चनं यया सा तामिव मन्यमाना चित्ते जाना-नाहं पुनः पुनर्भूयो भूय अपृच्छम्, इति दूरेणान्वयः । उत्प्रेक्षा, स्वस्याप्यतिशया पुनस्तन्निरीक्षणाभिलाषा प्रतीयत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ।

सततेति । सततं निरन्तरं सन्निहितामपि समीपस्थामपि दुर्लभमलभ्यं दर्शनं यस्या एवंविधामिव । अतिपरिचितामपि, अपूर्वामिवाभिनवामिव सादरमादर-सहितमाभाषमाणा जल्पमाना । पार्श्वे समीपेऽवस्थितामपि, आसीनामपि सर्वलोकस्य समग्रविश्वस्योपरि, ऊर्ध्वेऽवस्थितामिव पश्यन्ती कपोलयोः, अलकलतायाः भङ्गेषु कुटिलकेशसमूहेषु सोपग्रहं सानुकूलं यथा स्यात्तथा स्पृशन्ती । 'उपग्रहः पुमान् वन्द्यामुपयोगेऽनुकूलने' इति मेदिनी । परिजनस्वामिसम्बन्धं सेवकसेव्यभावमुप-दर्शयन्ती । मत् समभीष्टकरणात् त्वं तु स्वामिनी, अहं तु तव परिजनः, इति विपरीतः सम्बन्धः । 'तरलिके ! कथय कथं केन प्रकारेण त्वया स पुण्डरीकः दृष्टः । तेन पुण्डरीकेण किमभिहितोक्तासि ? तत्र तस्मिन् प्रदेशे कियन्तं कालं कियत्समयपर्यन्तमवस्थितासि ? असौ पुण्डरीकोऽनुसरन् पश्चादनुगच्छन् आगतः ? इति पुनः पुनः पर्यपृच्छम् । अनयैव च कथया वार्तया तया सह तरलिकया सह अस्मिन्नेव प्रासादे प्रतिषिद्धो निषिद्धोऽशेषाणां समस्तानां परिजनानां सेवकानां प्रवेश आगमनं ययैवंभूता सती दिवसं दिनमत्यवाहयमक्रामम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(२२) अथेति । अथानन्तरं । सा छत्रग्राहिण्यागत्याकथयदित्यग्रेणान्वयः। रविविम्बे सूर्यमण्डले, मदीयेनैव हृदयेन कृतो रागस्य लौहित्यस्यानुरागस्य च संविभागो यस्यैवंभूते लोहितायति लोहितवदाचरति गगनतलं व्योमतलं तत्रावलम्बिनि लम्बायमाने पतनोन्मुखे च सति । अत्रानुरागलौहित्ययोर्व्यतिरेकेऽपि रागपदश्लेषेणाव्यतिरेकाध्यवसायादतिशयोक्तिरलङ्कारः । उत्प्रेक्षा च ।

सरागेति । राग आरुण्यं रतिश्च तेन सह यो दिवसकरः सूर्यस्तस्य दर्शनेन वीक्षणेन तत्र वानुरक्तायां लोहितायामनुरागवत्यां च सत्याम्, अतएव कृतं कमलानां कमलेषु वा शयनं स्थितिः स्वापश्च यया तस्याम्, अतएव अनङ्गातुरायां कामपीडितायामिव वर्तमानायां पाण्डुतां श्वेततां व्रजन्त्यामातपस्य सूर्यप्रकाशस्य लक्ष्यायाम् ।

अत्र विभिन्नलिङ्गाभ्यां श्लिष्टविशेषणसादृश्याच्च प्रकाशश्रीसूर्ययोः स्त्रीपुरुषव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिः, पदार्थहेतुके काव्यलिङ्गे गुणोत्प्रेक्षा च । अनयोः सङ्करः ।

गैरिकेति । गैरिको धातुमयो गिरिः पर्वतस्तस्य सलिलमम्भस्तस्मिन् प्रपातः पतनं तेन पाटलेषु श्वेतरक्तेषु, भास्करस्य किरणेषु रश्मिषु वनगजयूथेष्विव काननहस्तिसमूहेष्विव कमलवनेभ्यो नलिनखण्डेभ्य उत्थायोत्थानं कृत्वा पुञ्जीभवत्सु सत्सु। वनगजा अपि गैरिकसलिलप्रपातेन पाटलाः सन्तः सायङ्काले पुञ्जीभवति । सूर्यकिरणा अपि श्वेतरक्ताः सन्तः सायं संकुचितावस्थयैकत्रीभवन्ति । उपमा ।

गगनेति । वासरे दिवसे गगन आकाशेऽवतारः परिभ्रमणं तस्माद् यो विश्रामः विश्रान्तिस्तस्मिल्लालसानां सस्पृहाणां रविरथस्य वाजिनामश्वानां हर्षः प्रमोदस्तेन हेषारवस्तस्य प्रतिशब्दः प्रतिध्वनिस्तेन सह मेरुगिरिगह्वरं सुमेरुपर्वतगुहां विशति प्रविशति सति । उत्प्रेक्षा सहोक्तिश्च । अनयोः सङ्करः ।

मुकुलितेति । मुकुलितानि कुड्मलितानि यानि रक्तपङ्कजानि कोकनदानि तेषां पुटानि तत्र प्रविष्टाः, कृतप्रवेशा मधुकरावली भ्रमरपंक्तिः यास्वेवंविधासु पद्मिनीषु नलिनीषु, रवेः सूर्यस्य विरहेण वियोगेन या मूर्च्छा तयान्धकारितं हृदयं यासामेवंविधास्विव तादृशीष्विव विद्यमानासु । अतएव प्रारब्धं निमीलनं मुकुलभावं जडताप्राप्तिश्च याभिस्तासु तादृशीषु सतीषु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्र कार्येण लिङ्गेन च सूर्यकमलिन्योः स्त्रीपुरुषव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिः। उत्प्रेक्षा, पदार्थहेतुके काव्यलिङ्गे च। अनयोः सङ्करः।

ग्रासीति। रथाङ्गनानां चक्रवाकसंज्ञकानां युगलेषु द्वन्द्वेषु सस्त्रीकेषु तेष्वित्यर्थः। ग्रासीकृतया, कवलीकृतया, अर्धभक्षितया सामान्यया साधारणया मृणाललतया विसवल्या, विवरेण निजच्छिद्रमार्गेण संक्रामितानि परस्परं सञ्चारितानीव परस्परहृदयानि आदाय गृहीत्वा विघटमानेषु वियोगं प्राप्यमाणेषु सत्सु। उत्प्रेक्षा।

सेति। सा छत्रग्राहिणी आगत्य समागत्याकथयत् निवेदितवती। 'भर्तृदारिके! राजकन्यके! तयोः पूर्वमवलोकितयोः मुनिकुमारकयोः अन्यतर एकः कश्चिद् द्वारि द्वारप्रदेशे तिष्ठति। अक्षमालां जपमालामुपयाचितुं प्रार्थितुमागतः प्राप्तोऽस्मि इति च कथयति निवेदयति।

(२३) अहमिति। मुनिकुमारस्य नामग्रहणदेवाभिधानश्रवणादेव स्थाने तस्मिन् स्थले स्थितापि द्वारदेशं गतेव। समुपजाता समुत्पन्ना तस्य पुण्डरीकस्यागमने आशङ्का यस्या एवंभूता सती, अन्यतमं कञ्चुकिनं समाहूयाह्वानं कृत्वा 'गच्छ, व्रज स मुनिकुमारः प्रवेश्यतां मध्ये गृहे प्रवेशं कार्यताम्, इति, आदिश्य, आज्ञां दत्त्वा प्राहिणवम्। प्रेषितवती।

अथेति। अथ तत्प्रेषणानन्तरं मुहूर्त्तादिव क्षणादिव, रूपस्य सौन्दर्यस्य यौवनमिव तारुण्यमिव। यौवनस्य मकरकेतनं काममिव। मकरकेतनस्य वसन्तसमयमिव सुरभिकालमिव। वसन्तसमयस्य दक्षिणानिलं दक्षिणवातमिव। तस्य पुण्डरीकस्य अनुरूपं निजतुल्यं सखायं मित्रं चन्द्रातपस्य प्रातःकालीनचन्द्रप्रकाशस्य अनुमार्गेण पश्चात् यथा आगच्छन्तमायान्तं बालातपं नवरविप्रकाशमिव, जराधवलितस्य वृद्धावस्थया शुभ्रदेहस्य कञ्चुकिनः अनुमार्गेणागच्छन्तं कपिञ्जलनामानं कपिञ्जलसंज्ञकं तं मुनिकुमारकं तापसबालकमपश्यम्।

अत्र 'रूपस्य यौवनमिव' इत्यारभ्य 'वसन्तसमयस्य दक्षिणानिलमिव' इति पर्यन्तं रशनोपमालङ्कारः। 'बालातपमिव' इत्यत्र उपमा। अनयोः सङ्करः।

'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते।
जरावैक्लव्ययुक्तेन विशेद् गात्रेण कञ्चुकी॥'

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मातृगुप्तः—

ये नित्यं सत्त्वसंपन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥

अन्तिकमिति। अन्तिकम् समीपम्, उपागतस्य प्राप्तस्य, अस्य कपिञ्जलस्य पर्याकुलमिव अत्यन्ताकुलमिव। सविषादमिव खेदयुक्तमिव। शून्यमिव सकलव्यापाररहितमिव। अर्थिनमिव याचकमिव। अन्तर्गतमभ्यन्तरे स्थितमाकूतमभिप्रायविशेषो यस्य तम्। अनुपरतमपरिपूर्णमभिप्रेतं वाञ्छितं यस्मिन्नेतादृशमाकारम्, आलक्षयम्, आकलयम्।

उत्थायेति। उत्थायादरार्थमुत्थानं कृत्वा कृतः प्रणामो ययैवंभूता सती सादरं सबहुमानं स्वयमात्मनैव आसनम्, उपाहरत्, उपवेशनार्थं दत्तवती।

उपविष्टस्येति। उपविष्टस्यासीनस्य, अनिच्छतोऽनभिलषितस्यापि तस्य कपिञ्जलस्य चरणौ वलात् प्रक्षाल्य उत्तरीयांशुकमुपसंव्यानवस्त्रं तस्य पल्लवेनैकदेशेनोपमृज्य मार्जनं कृत्वा तस्यान्तिके तत्समीपेऽव्यवधानायां विष्टरविहितव्यवधानरहितायां केवलायां भूमावैव समुपविशमतिष्ठम्।

अथेति। अथानन्तरं किमपि विवक्षुरिव वक्तुमिच्छुरिव सन् स कपिञ्जलः मुहूर्त्तमिव स्थित्वा मत्समीपे निकटे उपविष्टायामासीनायां तस्यां पूर्ववर्णितायां तरलिकायां चक्षुर्नयनमपातयत्।

अहमिति। दृष्ट्वैव तरलिकां प्रति तद्वीक्षणेनैव विदितो ज्ञातोऽभिप्राय आशयो यया सैवंभूताहं, भगवन्! अस्मच्छरीराद्, अव्यतिरिक्ता अभिन्ना इयम्, अशङ्कितं निःसंदिग्धं यथा स्यात्तथा अभिधीयताम्, इति, अवोचम्।

(२४) एवमिति। मया महाश्वेतया एवं पूर्वोक्तप्रकारेण उक्त अभिहितः कपिञ्जलः प्रत्यवादीत्—'राजपुत्रि! नृपसुते! किं ब्रवीमि कथयामि? त्रपया लज्जया मे मन वागेव वचनमेव अभिधेयविषयं वाच्यविषयं नावतरति न प्रवर्त्तते।

क्वेति। कन्दं मूलश्च फलं च अश्नाति भुंक्ते, इति सः, शान्तः वनवासेऽरण्यनिवासे निरत आसक्तः मुनिजनः क्व? अशान्तस्योचितो योग्यः, विषयाणां स्रग्वनिताचन्दनादीनां उपभोगाभिलाषेण भूयो भूयस्तत् सेवनकलुषो मलिनः मन्मथस्य कामस्य विविधैरनेकैर्विलासैर्व्यापारैः ... तथा राग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुखानुशयिता जागतिकसुखस्पृहैव प्रायेणाधिक्येन यत्र सः, अयं प्रपञ्चः संसारो वा क्व कुत्र ? एवंविधे संसारे कथमपि न संभाव्यते तपस्विजनानामनुरागः ।

अत्र विरूपयोः सङ्घटनाद् विषमालङ्कारः । अतएव च कश्चित्तपस्वी ह्येवंविधसंसारे समासक्त इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिरिति धीराः ।

सर्वमिति । सर्वमेव, एतत् समस्तमेव, अनुपपन्नं नितान्तप्रतिकूलत्वादसाम्प्रतम्, आरब्धं दैवेनेति, आलोकय पश्य त्वमिति शेषः ।

अयत्नेति । अयत्नेनैव निजोद्योगाभावेनैव खलु निश्चयेन ईश्वरो भगवान् जनमुपहासास्पदां परिहासधामतां नयति प्रापयति । इदं वक्ष्यमाणं कर्म किं वल्कलानां सदृशमुचितम् । इति न जाने । उताहो किं वा जटानां समुचितं योग्यम् ? किं तपसो नियमविशेषस्यानुरूपं योग्यम् ? आहोस्विदिति वितर्के । इदं धर्मोपदेशस्याङ्गम्, कारणम् ?

(२५) केवलमपूर्वा अभिनवा, इयं विडम्बना कदर्थना ? इदं वृत्तं वृत्तान्त अवश्यमेव निश्चयेन कथनीयम् । अपरोऽन्य उपायः प्रतीकारो न दृश्यते । अन्याऽपरा प्रतिक्रिया प्रतीकारविधानं नोपलभ्यते न प्राप्यते । अन्यद् एतद् व्यतिरिक्तं शरणमाश्रयस्थलं नालोक्यते न दृश्यते । अनयैतद्भिन्ना गतिरुपायान्तरं नास्ति । अकथ्यमाने कथनाभावे महतोऽनर्थस्योपनिपातोऽकस्मात् पतनं जायते निष्पाद्यते । प्राणस्य परित्यागेनापि सुहृदां मित्राणामसवः प्राणा रक्षणीया इति हेतोः कथयामि ।

अस्तीति । उपदर्शितः कोपो येनैवंभूतेन प्रकटितक्रोधेन मया भवत्याः तव समक्षं प्रत्यक्षमेव स पुण्डरीकस्तथा निष्ठुरं रूक्षमभिहित उक्तोऽस्तीति सम्बन्धः । तथा तेन प्रकारेणाभिधाय कथयित्वा तं पुण्डरीकं परित्यज्य उपजातः उत्पन्नः मन्युः क्रोधो यस्य सः । उत्सृष्टं परित्यक्तं कुसुमानां पुष्पाणामवचयश्चयनं येन सः । तस्मात् प्रदेशादन्यदेशमगमम् । भवत्यां त्वयि अपयातायां गतायां मुहूर्त्तमिव क्षणमिव स्थित्वा, इदानीमधुना, एकाकी अद्वितीयोऽयं पुण्डरीकः किमाचरति इति सञ्जातो वितर्को विकल्पो यस्य सः । प्रतिनिवृत्य परावर्त्य विटपैस्तरुभिरन्तरित आच्छादितो विग्रहो देहं यस्य सः । अहं तं प्रदेशं स्थानं व्यलोकयम् ।

यावदिति । यावत् यावत्समयं तत्र तस्मिन् स्थले तं पुण्डरीकं नाद्राक्षं न व्यलोकयम् । मे मम मनस्येवमासीत् 'मदनस्य कामस्य परायत्ता पराधीना चित्तवृत्तिर्यस्य सः ... तामेव कन्यकामनुसरन् गतो भवेत् । तस्यां कन्यकायां गतायां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयातायां सत्यां च, लब्धा प्राप्ता चेतना चैतन्यं येन सः लज्जा त्रपया मे मम दर्शनपथं विलोकनमार्गम्, उपगन्तुं प्राप्तुं न शक्नोति न समर्थो भवति। आहोस्विदथवा कुपितः क्रोधयुक्तः सन् मां परित्यज्य गतः, कुत्रापि गतवान्। उताथवा मामेवान्वेषमाणो वीक्षमाणः 'इतोऽस्माद् अन्यमपरं प्रदेशं समाश्रितः स्यात्' इत्येवं विकल्पयन् नानाविधां कल्पनां कुर्वन् कंचित् कालमतिष्ठं स्थितवान्।

तेनेति। जन्मनः प्रभृतिसमुत्पत्तिदिनमारभ्य, अनभ्यस्तेनापरिचितेन क्षणमपि तस्य पुण्डरीकस्य तेनादर्शनेन दूयमानः क्लिश्यमानः पुनरचिन्तयम्। 'स पुण्डरीकः, धैर्यस्य स्खलनं च्युतिस्तेन विलक्षो लज्जितः। कदाचित् किंचिदनिष्टमपि समुद्बन्धनादिकममङ्गलमपि समाचरेत् व्यवहरेत्। ह्रिया लज्जया न क्रियते एवं किंचित् किमपि नहि विद्यते, अपि तु समग्रं विधीयते। सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः। तत् तस्मात् कारणाद्, एकाकिनं कर्त्तुं न युक्तमुचितम्' इत्यवधार्य विनिश्चित्य अन्वेष्टुं मार्गयितुमादरमुद्योगमकरवम्।

अन्वेषेति। अन्वेषमाणश्च यथा यथा तं पुण्डरीकं नापश्यम् न व्यलोकयम्, तथा तथा सुहृन् मित्रं तस्य स्नेहः प्रीतिस्तेन कातरेण भीरुणा मनसा तत्तद् अशोभनममङ्गलमाशङ्कमानः सन्दिह्यमानः तरुलतानां वृक्षवल्लीनां गहनानि वनानि, चन्दनवीथिकाः चन्दनवृक्षराजिः, लतामण्डपान्, सरसस्तडाकस्य कूलानि तटानि च निपुणं यथा स्यात्तथा वीक्षमाणो विलोक्यमानः इतस्ततः समन्ताद् दत्ता निक्षिप्ता दृष्टिर्येन सः, सुचिरं बहुकालं व्यचरम्, अभ्रमम्।

(२६) अथेति। अथानन्तरं सरः समीपवर्तिनि निरंतरतया कुसुमानां सघनतया कुसुममये प्रसूनैर्विरचिते इव, मधुकरमये भ्रमरमये इव, कोकिलैर्निरन्तरतया परभृतमये कोकिलमये इव, तथा मयूराणामधिकतया मयूरमये इव, अतिमनोहरेऽत्यन्तरमणीये वसन्तस्य मधुसमयस्य जन्मभूमिभूते उत्पत्तिस्थानस्वरूपे, एकस्मिन् लतागहने लताकुञ्जे, कृतमवस्थानं स्थितिर्येन स तम्। तमहमद्राक्षमित्युत्तरेणान्वयः। अत्र कुसुमानामतिसौरभत्वं, भ्रमराणां बाहुल्यं, सहाकाराणामुद्रेकत्वं, परमरमणीयता च लताकुञ्जस्य सूच्यते। वसन्तजन्मभूमितया वसन्तश्रीसमृद्धिर्ध्वनिता। उत्प्रेक्षा।

उत्सृष्टेति। उत्सृष्टास्त्वदायत्तत्वात् सकलाः व्यापाराः येन तस्य भावस्तयां कारणेन, लिखितमिव चित्रितमिव, उत्कीर्णमिवोत्कीलितमिव, स्तम्भितमिव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जडीकृतमिव, केनचित्, उपरतमिव मृतमिव, प्रसुप्तं शयितमिव, योगस्य चित्तवृत्तिनिरोधस्वरूपस्य यः समाधिरर्थमात्रावभासनरूपस्तत्रस्थमिव। समाधौ तिष्ठति, इति समाधिस्थस्तम्। उत्प्रेक्षा।

समाधि—योग-दर्शनके अनुसार समाधि अष्टाङ्गोंमें अन्तिम अंग है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योगके आठ अङ्ग हैं। चित्तवृत्तियोंको स्व-स्व-व्यापारसे रोक लेना ही योग है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' योगसूत्र। योगके आचार्य पंतजलि हैं। योगका सम्बन्ध व्यवहारतः यद्यपि सांख्ययोगसे है, पर यह स्वतन्त्र रूप से विख्यात है। सैंधव संस्कृतिके युगसे योगका इतिहास होनेसे भारतका यह सर्वाधिक प्राचीन दर्शन प्रतीत होता है। योगमें अन्य अङ्गोंकी भाँति समाधि ईश्वर-साक्षात्कारमें साहाय्य प्रदान करती है।

निश्चलमिति। निश्चलं स्थिरमपि स्ववृत्तात् स्वचाराच्चलितमिति विरोधः। प्रभ्रष्टमिति तत्परिहारः। एकाकिनमसहायमपि मन्मथेन कामेनाधिष्ठितमाश्रितमिति विरोधः। कामोपहतमिति तत्परिहारः। अनुरागो रक्तिमा रक्तत्वं तेन सहितमपि पाण्डुतां धवलतामावहन्तं धारयन्तमिति विरोधः। अनुरागवत्वात् परिहारः। शून्यमन्यकार्यकामनारहितमन्तःकरणं यस्यैवंविधमपि हृदये निवासिनी दयिता प्रिया यस्येति विरोधः। 'रिक्तान्तःकरणत्वेऽपि प्रियाक्रान्तहृदयत्वाद् विरोधः' इति बाल०। परिहारस्तु प्रियैकचिन्तनाद् विषयान्तरग्रहणाभावात्। तूष्णीकमपि मौनावलम्बिनमपि कथितो मदनवेदनायाः कामपीडाया अतिशय उत्कर्षो येनेति विरोधः। कथितः शरीरजडतादिना बोधित इति परिहारः। शिलातल उपविष्टमासीनमपि मरणे व्यवस्थितं स्थितमिति विरोधः। कृतनिश्चयमिति परिहारः। अत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः। 'विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः'।

शापेति। शापप्रदानस्य यद् भयं तस्मात्, इवादत्तं स्वस्य दर्शनं तेनैवंभूतेन कुसुमायुधेन कामेन संताप्यमानं पीड्यमानम्। उत्प्रेक्षा।

अतीति। अतिशयेन यो निष्पन्दः निष्क्रियत्वं तस्य भावस्तत्ता तया हृदये निवासिनीं निवसनशीलां प्रियां द्रष्टुमवलोकयितुम्, अन्तःप्रविष्टैरिवान्तर्गतैरिव, असह्यो दुःसह्यो यो संतापस्तस्माद् यः संत्रासो भीतिस्तेन प्रलीनैरिव नष्टैरिव, मनसः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षोभेण संचलनेन प्रकुपितैरिव, अतएवोन्मुच्य परित्यज्य गतैरिन्द्रियैः शून्यीकृतं शरीरं यस्य तम्। अन्यथा निष्पन्दतैवंविधा कथं स्यात्। उत्प्रेक्षा।

निष्पन्देति। निष्पन्दं निश्चलं यथा स्यात्तथा निमीलितेन मुद्रितेन अतएव अन्तराभ्यन्तरे ज्वलन् प्रज्वलन् यो मदनदहनः कामाग्निस्तस्य धूमस्तेनाकुलितं व्याप्तमन्तरं यस्य तेनेव विद्यमानेन, ईक्षणयुगलेन नेत्रद्वयेन पक्ष्मणां नेत्ररोम्णां यानि विवराणि छिद्राणि तेभ्यो वान्ता उद्गीर्णा अनेका धारा यस्मिंस्तत्, अनवरतं निरन्तरं वाष्पजलदुर्दिनमश्रुसलिलवृष्टिमुत्सृजन्तं वर्षन्तम्। अत्र 'मदन एव दहनः' इत्यत्र निरङ्गं केवलरूपकम्, पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्, उत्प्रेक्षा। तेषां सङ्करः।

आलोहिनीमिति। हृदयं मानसं प्रदहतः प्रज्वलतोऽनङ्गाग्नेः कामाग्नेः, ऊर्ध्वसंसर्पिणीमुपरिगामिनीम्, शिखां ज्वालामिव, आलोहिनीमारक्ताम्, अधरप्रभां दन्तच्छदरुचम्, आदाय, निष्पतद्भिर्निःसरद्भिः, उच्छ्वासैः, तरलीकृता चपलीकृता, आसन्नलतानां कुसुमकेसराः पुष्पकिंजल्का येन तम्।

अत्र 'अनङ्गाग्नेः' इत्यत्र निरङ्गं केवलरूपकम्, 'शिखामिव' इत्यत्र उपमा, अथवा उत्प्रेक्षा।

वामेति। वामकपोलस्य शयनीकृतं यत् तल्पीकृतं करतलं हस्ततलं तस्य भावस्तत्ता तया। विस्तारितवामकरतले वामकपोलस्थित्या वामकरनखकिरणानां भाले सञ्चरणात्। समुत्सर्पद्भिर्भाले समुद्गच्छद्भिः, अमलैः निर्मलैः, नखांशुभिः नखकिरणैः, विमलीकृतं धवलीकृतम्, अतएव अच्छाच्छेनातिस्वच्छेन चन्दनरसेन रचिता ललाटिका तिलकविशेषो यस्मिंस्तमिव ललाटदेशं भालमुद्वहन्तं धारयन्तम्। 'पत्रपाश्या ललाटिका।' इत्यमरः। उत्प्रेक्षा।

अचिरेति। अचिरं सद्यः अपनीतः महाश्वेतायै समर्पणायापसारितः पारिजातकुसुममेव कर्णपूरः श्रवणभूषणं यस्य तस्य भावस्तत्ता तया। सशेषः तत्समयेऽप्यवशिष्टो यः परिमलो विमर्दोत्थो गन्धः स एवातिमनोहर आमोदोऽतिनिर्हारी गन्धस्तस्य लोभेन लिप्सया उपसर्पिणा निकटस्थायिना। अथवा सशेषौ समग्रौ यो परिमलामोदौ तयोर्लोभेन उपसर्पिणी, इति योजनीयम्। 'स आमोदो विदूरगः। विमार्गस्थः परिमलः' इति कोशः। इति भानुचन्द्रः। विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे'। इति बालबोधिनी। "विदूरगः सुरभिरामोदो विमर्दोत्थः पृथुः सुरभिः परिमलः।" "स आमोदो विदूरगः विमर्दोत्थः परिमलः।" इति कोशः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आमोदः सोऽतिनिर्हारी' । इत्यमरः । कलं मधुरं यद् विरुतं शब्दस्तस्यच्छलेन व्याजेन, मदनस्य कामस्य संमोहनमन्त्रं वशीकरणमन्त्रं जपता मधुकरकुलेन भ्रमर-समूहेन सनीलोत्पलमिव सेन्दीवरमिव, सतमालपल्लवमिव विद्यमानं श्रवणप्रदेशं कर्णदेशं दधानं धारयन्तम् । 'अत्र कलविरुतच्छलेन मदनसंमोहनमन्त्रमिव' इत्यत्र सापह्नवोत्प्रेक्षा । अन्यत्र उत्प्रेक्षा ।

संमोहनमन्त्रम्—इस पदसे कामके संमोहन नामक बाणका संकेत उपलब्ध होता है । कामके संमोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन नामक पांच बाण हैं ।

'संमोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा ।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्त्तिताः ॥'

अन्य मतसे कामके अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलकमलके फूल बाण हैं, इसीलिए उसे कुसुमायुध, कुसुमशर आदि कहते हैं ।

'अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलं च पंचैते पंचबाणस्य सायकाः' ॥

अन्य मतसे कामके पाँच बाण हैं :—अशोक, केतक, सिन्दुवार, अतिमुक्त और मदयन्तिका ।

तुलनीय :

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम् ।
नासाभ्यैति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥

—गीतगोविन्दम् १०

उत्कण्ठेति । उत्कण्ठयोत्कलिकया यो ज्वरः कामसंतापस्तेन यो रोमाञ्चो रोमोद्गमस्तस्य व्याजेन प्रतिरोमकूपं प्रतिरोमस्थानं निपतितानां लग्नानां मदनस्य कामस्य शराणां बाणानां मध्ये ये कुसुमशराः पुष्पबाणास्तेषां शल्यशकलानि त्रुटित-बाणखण्डानि । 'मध्ये प्रविष्टानि किंचिद्बहिर्दृश्यमानानि' । तेषां निकरं समूहमि-वाङ्गलग्नं बिभ्राणं दधानम् । नायं रोमाञ्चोऽपि तु प्रतिरोमस्थलं पपिताः कामबाणा निर्गता परं लग्नोऽग्रखण्डस्तु तत्रैव संसक्त इत्याशयः । सापह्नवोत्प्रेक्षा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दक्षिणेति । दक्षिणकरेण, उरसि वक्षसि, स्फुरितः प्रदीप्तः किरणानां निकरः समूहो यस्यास्ताम्, अतएव करतलस्य यत् स्पर्शसुखं तेन कण्टकितां रोमाञ्चितामिव स्थितां तथा अविनयस्य कामावेशदुर्व्यवहारस्य पताकां वैजयन्तीमिव स्थितां मुक्तावलीं भवत्या समर्पितं हारं धारयन्तं बिभ्राणम् ।

अत्र काव्यलिङ्गम्, उत्प्रेक्षा ।

मदनेति । तरुभिः वृक्षैः, मदनस्य कामस्य वशीकरणचूर्णेनेव लोकसंमोहकचूर्णेनेव कुसुमरेणुना पुष्पधूलिना करणेन, आहन्यमानं शरीरोपरि निक्षेपात् ताड्यमानमिव । उत्प्रेक्षा ।

आत्मेति । आसन्नैः समीपवर्त्तिभिः, अनिलेन पवनेन चलितैरान्दोलितैः, आत्मरागं स्वकीयलौहित्यम् रागमनुरागं संक्रामयद्भिः, पुण्डरीके सञ्चारयद्भिरिव विद्यमानैः अशोकपल्लवैः स्पृश्यमानं सङ्घट्यमानम् ।

अत्र लौहित्यरागयोर्व्यतिरेकेऽपि श्लेषेणाभेदारोपादतिशयोक्तिः । उत्प्रेक्षा । अनयोः सङ्करः ।

सुरतेति । वनश्रिया काननलक्ष्म्या सुरतरूपं यद्राज्यं तदर्थं योऽभिषेकजलैरिव । अभिनवाः नवाः ये पुष्पाणां स्तवकाः गुच्छास्तस्य मधु रसस्तस्य शीकरैः कणैरभिषिच्यमानमिव । उत्प्रेक्षा ।

अलीति । कुसुमशरेण कामेन, सधूमैः धूमसहितैः तप्तानि सोष्णानि यानि शराणां शल्यकान्ययोमयानि बाणाग्राणि तैरिव । चम्पककुड्मलानां पीततावोधनाय तप्तेति पदम् । अलीनां भ्रमराणां निवहैः समूहैर्निपीयमान आस्वाद्यमानः परिमलो विमर्दोत्थो गन्धो येषां तैः । पुण्डरीकस्योपरि पतद्भिश्चम्पकानां कुड्मलैः कोरकैस्ताड्यमानमिव । उत्प्रेक्षा ।

अतीति । दक्षिणानिलेन मलयपवनेन, हुङ्कारैरिव भर्त्सनाज्ञापकनिजहुंशब्दैरिव, अतिबहलोऽतिनिबिडो यो वनस्यामोदोऽतिमनोहारी गन्धस्तेन मत्तस्य मधुकराणां निकरस्य समूहस्य झंकारलक्षणाः निस्वनाः शब्दास्तैः करणैः, निर्भर्त्स्यमानमिव सतिरस्कारं भाष्यमाणमिव । उत्प्रेक्षा ।

मदेति । मदेन मधुमासकृतहर्षेण कलाः मनोहरा ये कोकिलास्तेषां कुलं तस्य कोलाहलैः कलकलैः कृत्वा मधुमासेन चैत्रमासेन वसन्तमासेन वा, आकुलीक्रियमाणं व्याकुलीक्रियमाणम् । उत्प्रेक्षा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रभातेति । प्रभातस्य प्रातःकालस्य यश्चन्द्रस्तमिव पाण्डुतया पाण्डुरवर्णेन निस्तेजस्कतया च परिगृहीतं स्वीकृतम् । पूर्णोपमा ।

निदाघेति । निदाघो ग्रीष्मसमयस्तस्य यो गङ्गायाः प्रवाहस्तमिव कृशिमानं कृशतां तनूभावं चागतम् प्राप्तम् । पूर्णोपमा ।

अन्तरिति । अन्तर्गतोऽनलोऽग्निः कामाग्निश्च यस्य तं चन्दनस्य विटपं वृक्षमिव म्लायन्तं मलिनतां गच्छन्तम् । पूर्णोपमा ।

अन्यमिवेति । अन्यमिव पूर्वस्माद्भिन्नमिव, अदृष्टपूर्वमिव, अपरिचितमिव, जन्मान्तरमन्यज्जन्म उपगतमिव प्राप्तमिव, रूपान्तरेण प्रशमलक्षणं परित्यज्य सानुरागलक्षणेन परिणतमिव तन्मयतां गतमिव । उत्प्रेक्षा ।

आविष्टमिति । आविष्टं डाकिन्यादिभिरन्तःप्रविष्टमिव, महाभूतैर्वेतालैरधिष्ठितमाश्रितमिव, ग्रहाः पिशाचपूतनादयस्तैर्गृहीतमिवाधिष्ठितमिव, उन्मत्तमुन्मादरोगाक्रान्तमिव, छलितं छलनां प्राप्तमिव । प्रतारितमित्यर्थः । अन्धमिव नयनरहितमिव, वधिरं कर्णविहीनमिव, मूकं वाग्विलासरहितमिव, विलासमयं विभ्रमभरितमिव, मदनमयं कामव्याप्तमिव, परस्यामन्यस्यां महाश्वेतायामायत्ता लग्ना चित्तस्य वृत्तिर्व्यापारो यस्य तम्, मन्मथस्य कामस्यावेशोऽभिनिवेशस्तस्य परामन्तिमां कोटिं दशामधिरूढम्, अनभिज्ञेयः प्रत्यभिज्ञातुमशक्यः पूर्वाकार आद्यस्वरूपं यस्य तम्, तं पुण्डरीकमहं कपिञ्जलोऽद्राक्षमपश्यम् । उत्प्रेक्षा ।

(२७) अपगतेति । अपगतो निमेषो निमीलनं यस्यैवंभूतेन चक्षुषा नेत्रेण, सा पूर्ववर्णितावस्था यस्य तं चिरं बहुकालमुद्वीक्ष्य समीक्ष्य समुपजातः समुत्पन्नो विषादो खेदो यस्य सः, वेपमानेन भयात् कम्पमानेन हृदयेन चेतसाचिन्तयम्—'एवममुना प्रकारेण । नामेति कोमलामन्त्रणे । अयमतिशयेन दुर्विषहो दुःसह्यो वेगो यस्य तादृशो मकरकेतुः कामः, येन हेतुना, अनेन कामेन क्षणेनैव क्षणकालेनैव, अयं पुण्डरीकः, ईदृशमेवंविधमवस्थान्तरं दशान्तरमुपनीतः प्रापितः ।

कथमिति । एवंविध एतादृशो ज्ञानराशिः पुण्डरीकरूप एकपदे सहसा, एवमनेन प्रकारेण कथं व्यर्थीभवेत् ? अहो इत्याश्चर्ये । बत इति खेदे । महत् चित्रमाश्चर्यम् । तथा नाम तेन प्रकारेण, अयं पुण्डरीक आशैशवादाबाल्याद् धीरी स्थिरा प्रकृतिः स्वभावो यस्य सः, अस्खलिता अच्युता, अखण्डिता वृत्तिश्चरित्रं यस्य सः मम कपिञ्जलस्य, अन्येषां मुनिकुमाराणां च स्पृहणीयमभिलषणीयं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरितं यस्यैवंविध आसीत्। अद्य तु इतर इव प्राकृतपुरुषवद् ज्ञानं परिभूय विजित्य, तपसस्तपस्यायाः प्रभावं माहात्म्यम्, अवगणय्य अवज्ञाय, गाम्भीर्यं गम्भीरतामुन्मूल्योच्छेद्य मन्मथेन कामेन जडीकृतः जडतां नीतः। सर्वथा सर्वप्रकारेण, अस्खलितमच्युतमखण्डितं च यौवनं तारुण्यं संसारे दुर्लभं दुष्प्राप-मस्तीति शेषः।

अर्थान्तरन्यासः, स च सामान्येन विशेषसमर्थनरूपः।

उपसृत्येति। उपसृत्य समीपमागत्य तस्मिन्नेव पूर्ववर्णिते शिलातलस्य पुण्डरीकाधिष्ठितप्रस्तरस्यैकपार्श्वे एकदेशे समुपविश्य समवस्थाय, अंसे स्कन्धदेशेऽ-सक्तो निहितः पाणिर्यस्य स, अनुन्मीलिते मुद्रिते लोचने नयने यस्य तथोक्तं, तं पुण्डरीकं 'सखे पुण्डरीक! मित्र पुण्डरीक! इदं तव दृश्यमानरूपं किम्? कथय' इत्येवमपृच्छम्।

अथेति। सुचिरं चिरकालं यत् संमीलनं निमीलनं तेन लग्नं संपृक्तमिव। अनवरतं निरन्तरं यद्रोदनमश्रुपातस्तद्वशात् समुपजातः समुत्पन्नोऽरुणभावो रक्तता यस्मिन् यस्य तत्, अश्रुजलस्य पूरेण प्लावितं व्याप्तम्, उत्कुपितं कुपित-दोषमिव, सवेदनमिव सव्यथमिव। स्वच्छममलं यदंशुकं तेनान्तरितं व्यवहितं यद् रक्तकमलवनं तस्य छाया इव छाया कान्तिर्यस्य यस्मिन् वा तत्तादृशम्। चक्षुर्नयनं कथमपि प्रयत्नेन, उन्मील्य विमुद्य, मन्थरमन्थरयातिस्तिमितया दृष्ट्या सुचिरं मां विलोक्य निश्वस्य लज्जया विशीर्यमाणानि विदीर्यमाणानि, अक्षराणि यत्र तत्, यथा स्यात्तथा। सखे कपिञ्जल! विदितो ज्ञातः वृत्तान्तो येन स एवंविधोऽपि त्वं किं मां पृच्छसि किं प्रश्नं करोषि, इति एवं शनैः शनैर्मन्दं कृच्छ्रेण कृष्टेनावदत्।

अत्र 'लग्नमिव', 'उत्कुपितमिव', 'सव्यथमिव' इत्यत्र उत्प्रेक्षा। 'स्वच्छांशु' इत्यत्र लुप्तोपमा।

अहमिति। तु परन्तु, अहं कपिञ्जलः, तत् पूर्वोक्तं पुण्डरीकवचनमाकर्ण्य श्रुत्वा, अयं पुण्डरीको, यद्यपीति शेषः, तदवस्थयैव ममोपदेशमात्रेणैव, अप्रतीकारः प्रतिक्रियारहितो विकारो मदनविकृतिर्यस्य स तादृशः सञ्जातः। तथापि सुहृदा मित्रेण, असन्मार्गेऽसाधुपथि प्रवृत्तः सुहृद् यावच्छक्तितः यथाशक्ति, सर्वात्मना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वप्रयत्नेन निवारणीयः प्रतिषेधनीयः, इत्येवं मनसा अवधार्य विनिश्चित्य, अब्रुवमकथयम् । आत्मा कलेवरे यत्ने स्वभाव परमात्मनि । चित्ते धृतौ च बुद्धौ च परव्यावर्त्तनेऽपि च ।' इति धरणिः ।

(१८) सख इति । सखे पुण्डरीक ! एतन् मम सुविदितं सम्यग् ज्ञातम् । इदं वक्ष्यमाणमेव केवलं पृच्छामि । भवता पुण्डरीकेण यदेतदारब्धं प्रस्तुतम्, तत् किमिदं गुरुभिर्हिताहितोपदेशकैरुपदिष्टं कथितम्, उताथवा धर्मशास्त्रेषु गौतमादिधर्मग्रन्थेषु पठितम्, उत धर्मस्यार्जनमुपार्जनं तस्योपायो युक्तिः, उत तपसामपरोऽन्यः प्रकारो विधिः उत स्वर्गगमनस्यायं मार्गः पन्थाः, उतेदं व्रतस्य रहस्यं सुगुप्ततत्त्वम् । उतेयं मोक्षस्य मुक्तेः प्राप्तौ लाभे युक्तिविशेषः, आहोस्विदथवान्योऽपरो नियमप्रकारो व्रतचर्याभेदः । एतत् रामानुरागाचरणं मनसापि चिन्तयितुं विचारयितुं भवतस्तव कथमुचितं युक्तम्, आख्यातुं कथयितुमीक्षितुं विलोकयितुं वा किं पुनर्भण्यते । अप्रबुद्धोऽज्ञानोपहतजन इव मन्मथहतकेन पापिना कामेनात्मानं स्वमुपहासास्पदतां परिहासक्षमतां नीयमानं प्राप्यमानं नावबुध्यसे न जानासि । हीति निश्चयेन मूढो मन्दो मदनेन कामेन, आयास्यते पीड्यते ।

केति । साधवश्च ते जना पुरुषास्तैर्निन्दितेषु तिरस्कृतेषु प्राकृताः साधरणा ये जनास्तैर्बहुमतेषु संमानितेषु एवंविधेषु विषयेषु भवतस्तव का सुखाशा । न कापीत्यर्थः । यो मूढोऽज्ञानी, अनिष्टानां दुःखानामनुबन्धः परम्परा विद्यते येषु, एवंविधेषु, विषयाणां स्रग्वनितादीनामुपभोगेषु सुखबुद्धिमारोपयति करोति, स मोहग्रस्तः खलु निश्चयेन धर्मबुद्धया पुण्यमिति कृत्वा विषलतां सिञ्चति जलेनेति शेषः कुवलयानां नीलकमलानां माला, इति बुद्धया, निस्त्रिंशः खड्गः स लतेव तामालिङ्ग्याश्लिषति । कृष्णागुरुः काकतुण्डस्तस्य धूमलेखा, इति कृत्वा कृष्णसर्पं भयङ्करं सर्पमवगूहते, आलिङ्गति । रत्नमिति ज्वलन्तं देदीप्यमानमङ्गारं स्पृशति स्पर्शं करोति । मृणालं कमलकन्दमिति कृत्वा दुष्टो यो वारणो गजस्तस्य दन्तमुसलं दशनायोग्रमुन्मूलयत्युच्छिनत्ति । अधीति । अधिगतं ज्ञातं विषयतत्त्वं येन सः, एवं सन्नपि त्वम्, कस्मात् कारणात् खद्योतो ज्योतिरिङ्गण इव "ज्योतिस्तत्त्वज्ञानं प्रकाशश्च ते निवार्यं दूरीकरणार्हं ज्ञानमुद्वहसि धारयसि ।" इति भानुचन्द्रः । "निर्वीर्यं मनोविकारनियमनासमर्थम् ।" निवार्यम् इति बहुषु पुस्तकेषु पाठः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु सोऽर्थतया न सम्यक् संगच्छते। अस्यार्थः—निवार्यं प्रबलमनोविकारविनाश्यं न तु तेषां निवारकम्। यथा खद्योततेजोऽन्यतेजसोपहतमेव भवति न तु तदभिभवति तथा। अस्य भानुचन्द्रव्याख्या तु चिन्त्या'। इति बालबोधिनी। यतो यस्मात् कारणात् प्रबलो यो रजसः रजोगुणस्य कामस्य प्रसरो वेगस्तेन कलुषितानि दूषितानि। तथा च गीतायाम्—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः'।

पक्षान्तरे प्रबलस्य रजसो रेणोः प्रसरेण विस्तारेण कलुषितानि मलिनीकृतानि, स्वतोऽम्भःप्रसरणानि स्रोतांसि तानीव, उन्मार्गे उत्पथे प्रस्थितानि प्रवृत्तानि, इन्द्रियाणि नेत्रादीनि न निवारयसि न निवारणं करोषि। तव ज्ञानं शक्तिविहीनमिति भावो यतो त्वं न समर्थ इन्द्रियनिरोधव्यापारे। पूर्णोपमा। क्षुभितं कामविकारविक्लवं मनो न नियमयसि निरोद्धुं न समर्थो भवसि। नामेति कोमलामन्त्रणे। कोऽयमनङ्गः कामः वराकोऽतितुच्छश्च कामस्तस्य विकारं मनसोऽपसारयेति भावः। धैर्यं धीरतामवलम्ब्य आश्रित्य दुराचारो दुरिताचरणो निर्भर्त्स्यताम्, तिरस्क्रियताम्'। इयेवं वदतः कथयत एव मे मम वचनं वाणीमाक्षिप्यावधीर्य। वाक्यसमापनात् पूर्वमेव तं निजवचनेन विच्छिद्य। प्रति प्रत्येकं यत् पक्ष्मणोऽन्तरालं मध्यं तत्र प्रवृत्ता चलिता वाष्पाणां नयनजलानां वेणिकाः धाराः यस्मिन्, तच्चक्षुर्नेत्रं प्रमृज्य मार्जनं विधाय करतलेन मामवलम्ब्य धृत्वा, अवोचत्। 'वेणी धारा रयश्च सः' इति कोशः। इति भानुचन्द्रः। तु० 'जलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः'। रघु० ६/४३।

सख इति। सखे बहूक्तेन बहुवदनेन किम्? सर्वथा त्वं स्वस्थोऽसि, एतदनुभवशून्योऽसि। आशिषि तालुगतदंष्ट्रायां विषमस्येति आशीविषो विजातीयो भीषणः सर्पः। 'आशीस्तालुगता दंष्ट्रा तया विद्धो न जीवति'। इति भानुचन्द्रदीक्षितोऽमरकोषटीकायां सुधायाम्। तस्य विषवेगो गरलविस्तारस्तद्वद् विषमाणां कठिनानामेतेषां कुसुमचापस्य कामस्य सायकानां बाणानां गोचरे विषये न पतितोऽसि, तेन त्वया परस्यान्यस्य जनस्य सुखं सुखपूर्वकमुपदिश्यते उपदेशं दातुं शक्यते। परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्। अस्मिन् संसारे चतुर्विधा दशाः भवन्ति प्राणिनाम्। तत्र केचिद् समर्थेन्द्रियसम्पन्नाः, केचित् सांसारिकभावप्रतीयतया रोगादिभिर्वा विकलकरणाः, केचित् संशयदोला-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूढाः केचिच्चाक्षमेन्द्रियाः । उपरि निगदितेषु पुरुषेषु त्रयाणामेवोपदेशो युज्यते । चरमस्तु सर्वथैव नुपदेष्टव्यः । एवं विभागं मनसि निधाय बाणो निरूपयति । यस्य जनस्येन्द्रियाणि स्वस्वव्यापारयोग्यानि सन्ति । चकारः समुच्चयार्थकः । वेति सर्वत्र विकल्पार्थम् । मनो वा निरुपद्रवमस्तीति शेषः । यः पश्यति, केनचित् कारणेन नयने विकले जातेऽपि येन केन प्रकारेण विलोकनक्षमः । वा । शृणोति वा कर्णशूलादिरोगेऽपि श्रवणं करोति । श्रुतं शास्त्रमवधारयति शास्त्रावधारणे समर्थो भवति । यो वाथवा इदं शुभं कल्याणकरमिदमशुभमिति विवेक्तुं विवेचन-कर्त्तुमलं समर्थः, स जनः खलु निश्चयेनोपदेशमर्हति । मम तु सर्वमेवेदं निखिलं पूर्वोक्तं दूरापेतं दूरापास्तम् । अवष्टम्भश्चित्तवृत्तिनिरोधः, ज्ञानं सदसद्विवेकः । धैर्यं बाह्येन्द्रियनिरोधः, प्रतिसंख्यानमध्यात्मज्ञानमित्येषा कथाऽस्तमिता, अस्तं प्रापिता । एवमयत्नविधृता रक्षणाभावेऽपि स्वयमवस्थिताः । असवः प्राणाः कथमपि तिष्ठन्ति । उपदेशस्य शिक्षायाः उपदेशकालः शिक्षासमयो दुरातीतो दूरङ्गतः । धैर्यस्य धीरताया अवसरः समयः समतिक्रान्तो व्यतीतः । प्रतिसङ्ख्यानस्य वेला-ध्यात्मज्ञानं गता दूरीभूता । ज्ञानेन कृत्वा योऽवष्टम्भश्चित्तवृत्तिनिरोधः, तस्य समयो ऽवसरः दूरमतीतो व्यतिक्रान्तः । प्रतिसंख्यानस्य मोक्षविषयकज्ञानस्य वेलाऽवसरः गतापसारिता । ज्ञानेन कृत्वावष्टम्भसमयश्चित्तवृत्तिनिरोधकालोऽतीतः । अस्मिन् समये भवन्तमपहायान्येन केनोपदेष्टव्यं शिक्षितव्यम् । वाथवोन्मार्गोऽसाधुमार्गे या प्रवृत्तिश्चरः ानुकूलता तस्य निवारणं करणीयं कर्त्तव्यम् । अन्यस्य त्वदतिरिक्तस्य कस्य वचसि वचने मया स्थातव्यम् । न कस्यापीत्याशयः । अपरः को वा त्वत्-समो मे मम जगति संसारे स्नेहेन बध्नातीति बन्धुर्भ्राता । किं करोमि किं कुर्वे । यदिति हेतौ आत्मानं स्वं निवारयितुं दुष्टप्रवृत्तेर्दूरीकर्त्तुं न शक्नोमि न समर्थो भवामि । अनेनैव क्षणेन समयेनेयं दृश्यमाना दुष्टा दुरन्ता अवस्था भवता दृष्टा । इदानीमधुना, उपदेशस्य शिक्षादानस्य कालः समयः गतः । यावत् यावत्कालमहं पुण्डरीकः प्राणिमि जीवनं धारयामि, तावत् तावत्कालपर्यन्त कल्पान्ते प्रलयकाल उदिता उदयं प्राप्ताः ये द्वादशदिनकराः द्वादशसूर्यास्तेषां किरणानां य आतपः प्रकाशस्तद्वत् तीव्रस्य कठोरस्य दुःसहस्येति भावः । मदनस्य संतापः संज्वरस्तस्य प्रीतिक्रियामुपशान्ति क्रियमाणां विधीयमानामिच्छामि अत्र 'किरणातपतीव्रस्ये'ति लुप्तोपमा । मे मम अङ्गानि शरीरसंस्थानानि पच्यन्त इव पाकविषयीक्रियन्त इव ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदयं मन उत्क्वथ्यत इव क्वाथं नीयत इव। दृष्टिर्नयनं प्लुष्यत इव दह्यत इव। शरीरं देहं ज्वलति भस्मीभवतीव। अत्र यत्प्राप्तकालं यत्समयोचितम्। महाश्वेतया सह संगमरूपमित्यर्थः। भवान् तत् करोतु। तदनुसृत्यैव कर्त्तव्यं भवता यदत्र करणीयमिति भावः। इत्याभिधाय तूष्णीमभवत् मौनं धृतवान्।

(२९) एवमिति। एवमित्थमुक्तेऽपि, कथितेऽपि, अहं कपिञ्जलः, एनं पुण्डरीकं पुनः पुनः प्राबोधयं प्रबोधं कृतवान्। पुनः पुनः शास्त्रस्य मनुगौतमादिधर्मप्रतिपादकग्रन्थस्योपदेशः शिक्षादानं तेन विशदैर्निर्मलैः, सनिदर्शनैः सदृष्टान्तैः सेतिहासैः पुरावृत्तसहितैः। इतिहासलक्षणं च—"इति ह एवमर्थे प्रत्यक्षनिर्देशं द्योतयति। हः इह शब्दः आगमः (परम्परा) आसनमासः। एवम्प्रकाराः प्रत्यक्षपरिदृश्यमाना आगमिकार्थाः कर्मफलसम्बन्धस्वभावा यत्रासते स इतिहासः"। भरतकोश उद्धृतः, अभिनवगुप्तपादः। वचोभिः सानुनयं सप्रणयम्। प्रणतिः प्रणिपातेऽनुनये, इति कोशः। इति भानुचन्द्रः। सोपाग्रहं सानुकूलनम्। उपग्रहोऽनुकूलने'। इति विश्वः। 'उपग्रहः पुमान् वन्द्यामुपयोगेऽनुकूलने'। इति च मेदिनी। अभिधीयमानोऽपि कथ्यमानोऽपि कर्णे नाकरोत्, तदा तस्मिन् कालेऽहमचिन्तयमध्यायम्। 'अयं पुण्डरीकः, अतिभूमिं परां कोटिं कामस्यान्त्यावस्थायां गतः प्राप्तः निवर्त्तयितुं ततो व्यावर्त्तयितुं न शक्यते। उपदेशाः शिक्षासमन्वितवचनानि, खलु, इदानीं साम्प्रतं निरर्थकाः व्यर्थाः, प्रयोजनरहिताः। तत् तावद् सर्वप्रथमम्, अस्य पुण्डरीकस्य प्राणानां परिरक्षणे परित्राणेऽपि यत्नमुपायमाचरामि करोमि, इत्येवं कृता मतिः बुद्धिर्येन सः, उत्थाय गत्वा च तस्माद्, अच्छोदात् सरसस्तडाकात् सरसाः रसपूर्णाः मृणालिकाः कमलिनीरुद्धृत्य, उत्पाट्य, ताभ्यो जललवेन सलिलकणेन लाञ्छितानि, रञ्जितानि अतएवात्यन्तशिशिराणि, कमलिनीपलाशानि नलिनीपत्राणि चादाय गृहीत्वा, गर्भे पुष्पाभ्यन्तरे या धूलयः परागास्तासां यः कषायः सुरभिः परिमलो गन्धस्तेन मनोहराणि शोभनानि कुमुदानि श्वेतकमलानि कुवलयानि नीलपद्मानि कमलानि पङ्कजान्तराणि गृहीत्वागत्य च तस्मिन्नेव शिलातले पुण्डरीकाधिष्ठितलताकुञ्जप्रस्तरे अस्य पुण्डरीकस्य शयनं शय्यामकल्पयमकरवम्।

तत्रेति। तत्र तस्मिन्नेव स्थले सुखेन निषण्णस्योपविष्टस्य प्रत्यासन्नवर्तिनां समीपस्थानां चन्दनविटपिनां चन्दनतरूणां मृदूनि कोमलानि किसलयानि निष्पीड्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मर्दयित्वा तेनालोकसाधारणेन स्वभावेनैव प्रकृत्या सुरभिणा सौरभवता, तुषारो हिमं तद्वत् शिशिरेण शीतलेन रसेन ललाटिकां तिलकविशेषमकल्पयम्। आचरणात् पादादारभ्य, अङ्कचर्यां शरीरलेपनं चारचयमकरवम्। अत्र तुषारशिशिरयोः समानार्थतया पौनरुक्त्यप्रतीतिरनन्तरं तुषारवत् शिशिर इत्यर्थकरणात् पुनरुक्तवदाभासोऽलंकारः।

अभ्यर्णेति। अभ्यर्णा आसन्ना ये पादपास्तरवस्तेषां प्रस्फुटितानि समुद्भिन्नानि यानि वल्कलानि त्वचस्तेषां विवराणि छिद्राणि तेभ्यः शीर्णेन निर्गतेन, तथा कराभ्यां संचूर्णितेन क्षोदीकृतेन निष्पिष्टेनेति यावत् कर्पूररेणुना कर्पूरधूलिना स्वेदस्य धर्मजलस्य प्रतिक्रियां चिकित्सामकरवम्।

स्वेद—काव्य के आठ सात्त्विक भावोंमें स्वेदकी गणना की गयी है। अनुभावोंके भेदोंमें सात्त्विक भाव भी होता है :

"स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः॥"

उर इति। उरसि वक्षःस्थले निहितं स्थापितं चन्दनस्य द्रवेण रसेनार्द्रं क्लिन्नं वल्कलं यस्य तस्य पुण्डरीकस्य स्वच्छाः निर्मलाः ये सलिलस्य सीकराः कणास्तेषां निकरः समूहस्तस्य स्राविणा वर्षकेण कदलीदलेन रम्भापत्रेण व्यजन-क्रिया तालवृन्तकर्मान्वितिष्ठमकरवम्। एवमनेन प्रकारेण। चकारः किञ्चार्थः। मुहुर्मुहुः वारम्वारम् अन्यदन्यद्, नलिनीदलानां कमलिनीपत्राणां शयनं शय्यामुपकल्पयतः कुर्वतः मुहुर्मुहुः, भूयो भूयश्चन्दनस्य चर्चामुपमर्दनमारचयतः, मुहुर्मुहुश्च स्वेदस्य धर्मसलिलस्य प्रतिक्रियां प्रतिविधानं कुर्वतः, कदलीदलेन रम्भापत्रेण चानवरतं निरन्तरं वीजयतः बालव्यजनं कुर्वतो मे मम मनसि चिन्ता समभूत—भगवतः षडैश्वर्यशालिनो मनोभुवः मानसजन्मनः कामस्य, किमपि, असाध्यं दुष्करं नास्ति न विद्यते। नामेति कोमलामन्त्रणे। खलु निश्चयार्थकः। हरिणो मृग इव वनवासे निरतस्तत्परः स्वभावेन मुग्धो मूढोऽविदग्धो जनोऽयं पुण्डरीकः क्व? विविधा नानाप्रकारा ये विलासाः विभ्रमास्तेषां रसास्तेषां राशिः समूहो यत्र सा महाश्वेता च। द्वौ क्वाविति महदन्तरं सूचयतः।

अत्र विषमयोः संयोजनाद् बिषमालङ्कारः। उपमा च। अनयोः सङ्करः।

सर्वथेति। अस्य कामस्य जगति संसारे, सर्वथा सर्वप्रकारेण दुर्घटं दुःसाध्यं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुष्करं कठिनमनायत्तमनधीनमकर्त्तव्यं कर्त्तव्यविरोधि वा नहि किंचिदस्ति। अयं कामः दुरुपपादेषु दुर्घटेषु, अर्थेषु, विषयेषु, अवज्ञयावहेलया विचरति प्रवर्तते। स्वसामर्थ्यं जानन्तद्घटनाविषये वीतचिन्तस्तिष्ठतीति भावः। अयं च प्रतिकूलयितुं प्रतिरोद्धुं न शक्यते केनापि पुंसेति शेषः। यदि, अस्मै कामाय रोचते, तदा, अपगतापसृता चेतना चैतन्यं येषां तानि, अपि परस्परविरुद्धान्यपीत्यर्थः। संघट्टयितुं संयोजयितुमलं समर्थः। काम इति शेषः। तस्य कामस्य सचेतनेषु चैतन्यसमन्वितेषु मानवादिषु का गणना? कुमुदिनी कैरविण्यपि यच्छशिकरप्रणयिनी, दिनकरस्य सूर्यस्य कराः किरणाः तत्कार्यकारित्वाद् दिनकरत्वं चन्द्रस्य, तस्मिन्ननुरागो रतिर्विद्यते यस्यैवंविधा भवति। एवमस्य कामस्य दुर्घटघटनासामर्थ्यं यच्चन्द्रानुरागिणी कुमुदिनी दिनकरकिरणे भावं बध्नीयात्। तदुक्तम्—

"चन्द्रश्चण्डकरायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते, माल्यं सूचिकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते।" कमलिनी नलिन्यपि शशिनश्चन्द्रस्य करेषु किरणेषु यो द्वेषस्तमुज्झति त्यजति। शशिकरकारित्वात् सूर्यकिरणानां शशिकरत्वम्। तदुक्तम्— 'आतपे धृतमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन। सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम्'॥ इति भानुचन्द्रः॥

निशापि रात्रिरपि दिवसकार्यकारित्वाद् वासरेण दिनेन सह मिश्रतामैक्यमेति प्राप्नोति। यथा—'चित्रन्यस्तादपि विषधराद् भीतिभाजो निशायाम्।

किं तद्ब्रूमस्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः॥'

ज्योत्स्ना कौमुद्यपि तमोऽन्धकारम्, अन्धकारकार्यकारित्वादनुवर्तते तद्रूपतां भजति। यथा—'ज्योत्स्ना श्यामलतामुपैत्ययम्'। छायापि प्रदीपस्य गृहमणेरभिमुखं सम्मुखमवतिष्ठते संतिष्ठति। अत्र प्रदीपाधोभागे छायायाः सत्त्वाच्चित्रमित्यभिमुखग्रहणम्। तदुक्तम्—'आलोकस्तिमिरायते विधिवशात् प्राणोऽपि भारायते। हा हन्त प्रमदा वियोगसमये किं किं न दुःखायते।' तडिदपि विद्युदपि जलदे मेघे स्थिरतां स्थैर्यं व्रजति गच्छति। जरापि वृद्धतापि यौवनेन तारुण्येन सह सञ्चारिणी भवति। 'अत्र तडित उद्दीपकत्वाद् विरहदुःखितस्य यस्या निमेषावस्थानमपि कल्पकल्पमित्यभिसन्धिः।' 'जराया अपि तत्कार्यकारित्वात् तदनुगामित्वमित्यर्थः।' अत्रापिशब्दः सर्वत्र विरोधं द्योतयति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ टीकाकारोंने दिनकरका चन्द्रके अर्थमें और चन्द्रका सूर्यके अर्थमें व्याख्यान किया है। तदनुसार कुमुदिनी चन्द्रकिरणों से प्रीति करती है और कमलिनी रविरश्मियोंसे घृणा करती है। सन्दर्भके परिसरमें यह व्याख्या अयुक्ति-संगत प्रतीत होती है। इस वाक्यका सम्बन्ध 'का वा गणना.......रोचते'से है। इस व्याख्यानका संकेत कामकी उस शक्तिकी ओर है जो परस्पर विरोधी पदार्थोंका सम्मिलन करा देती है। 'निशा' और 'वासर', 'ज्योत्स्ना' और 'अन्धकार', 'तडित्' और 'जलद', 'छाया' और 'प्रदीप' तथा 'जरा' और 'यौवन' उपर्युक्त विरोधी भावके सुन्दर उदाहरण हैं। यही विचारसरणि 'कुमुदिनी'' भवति' और 'कमलिनी''''उज्झति'में है। और तब वाक्यांश इस प्रकार होंगे 'कुमुदिन्यपि''''भवति—(१) दिनकरस्य सूर्यस्य किरणैः अनुरागिणी भवति—यहाँ किरणसे अस्त होते हुए सूर्यकी किरणको संकेतिक करती है। यही किरणें कुमुदिनी और उसके प्रियका संयोग करती हैं। कुमुदिनी अस्तंगत सूर्यकी किरणोंके साथ-साथ चन्द्रके लिए भावातुर हो उठती है। अतः अप्रत्यक्षरूपसे यह कहा जा सकता है कि वह सूर्य किरणोंके प्रति उदार है। (२) दिनकरस्य किरणान् अनु पश्चाद् रागिणी भवति—काणेके अनुसार अस्त होते हुए सूर्यकी किरणोंके पश्चात् कुमुदिनी चन्द्रके प्रति प्रेमातुर हो उठती है। परन्तु यह व्याख्या न्यूनाधिक-रूपमें प्रथम व्याख्यानके समकक्ष ही है। काणेके दूसरे व्याख्यानके अनुसार 'दिन-करस्य किरणः यस्मिन् स चन्द्रः' स्वरूपक विग्रह होगा। परन्तु यह व्याख्यान भी अन्य व्याख्याओंकी भाँति त्रुटिपूर्ण है। 'शशिकरः''''उज्झति। शशिनः करास्तेभ्यो यो दोषस्तम्—यहाँ संकेतित रश्मियाँ प्रातःकालिक चन्द्र-किरणोंका ज्ञापन करती हैं। प्रभातमें कमलिनी खिलती है, यद्यपि चन्द्र-किरणें उसकी पंखुरियोंका स्पर्श करती हैं। अतः काव्यदृष्टिसे कमलिनीको चन्द्रके प्रति घृणा करती हुई कहा जा सकता है। यह प्रीतिका प्रभाव है कि सूर्यके प्रति कमलिनी प्रेमातुर हो जाती है। प्रेमकी भावना इतनी शक्तिमती है कि वह चन्द्रके प्रति अपनी सहज घृणाका विस्मरण कर प्रफुल्ल होने लगती है और इस प्रकार अपने प्रियका स्वागत करनेके लिए समुद्यत होने लगती है। काणे वाक्यका साहित्यिक अर्थ करते हुए उसमें निहित भावको इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—'कमलीनि चन्द्रकिरणोंसे घृणा करनेवाले अन्धकारका परित्याग कर देती है—शशिकरेषु द्वेषः यस्य स अन्धकारस्तं त्यजति। कमलिनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रात्रिमें विकसित नहीं होती। वह सूर्यास्तके समय ही संकुचित हो जाती है।' परन्तु इस व्याख्यामें हमें 'शशिकरद्विषम्' और 'द्वेषम्' का ज्ञान करना चाहिए। उपर्युक्त व्याख्यानोंपर विचार करते समय हमें इस बातका ध्यान रखना पड़ेगा कि बाण यहाँ किसी आश्चर्यजनक प्रकृतिचित्रकी प्रतिष्ठापना नहीं कर रहे हैं। यहाँ चन्द्रोदय और सूर्योदयके समय कुमुदिनी तथा कमलिनीके खिलनेका वर्णन मात्र किया गया है। बाण ने वाक्यमें शब्दोंकी स्थापना करनेमें सूक्ष्म निपुणताका आश्रय लिया है। वस्तुतः शब्द संगुम्फनमें ही वैशिष्ट्य है, भावमें नहीं। केवल अर्थ ही नहीं, शब्द भी काम की अपराजेय शक्तिको द्योतित करते हैं, जो नितान्त परस्परविरोधी पदार्थोंका सम्मिश्रण करानेमें सक्षम है। 'निशापि''''मिश्रतामेति'— निशा रात्रिका अनुगमन करती है। यह चक्र निरंतर चलता रहता है। यह दिवा-रात्रिका चंक्रमण उनके प्रेम-संयोगको अभिव्यंजित करता है। यद्यपि दिवस रजनीका सहज विरोध है, तथापि दोनों संयुक्त हुआ करते हैं। इस संयोगका हेतु केवल प्रेमकी शक्ति है। इसी भावको ध्यानमें रखते हुए व्याख्याकार— कार्यकारित्व—'निशापि रात्रिरपि दिवसकार्यकारित्वाद् वासरेण मिश्रतामैक्य-मेति। यथा—'चित्रन्यस्तदापि०' इति ज्योत्स्नापि''''वर्तते। ।—चन्द्रिका स्वयं अंधकारको स्वीकार करती है। चन्द्र रात्रिमें प्रकाशित होता है। साहित्यिक दृष्टिसे ज्योत्स्ना और अन्धकार परस्पर विवाहसूत्रमें आबद्ध हैं। 'छायापि'''' तिष्ठते—छाया प्रकाशके संमुख जाती है। जहाँ प्रकाश है ठीक उसीके नीचे छाया भी है। इन विभिन्न ऐकान्तिक विषम पदार्थोंका संयोजन प्रेमशक्तिपर ही आधृत है। छाया और प्रकाश परस्पर विरोधी हैं। तडिदपि''''एति—मेघोंके अन्तरमें विद्युत् चपलता भूल जाती है। यहाँ जलदको तडित्का प्रेमी बतलाया गया है। तडित् प्रकृति-चञ्चला है। जरापि''''भवति—वृद्धावस्था यौवनके साथ चलती है। इसका तीन प्रकारसे अर्थ प्रस्तुत किया जा सकता है—(१) यौवनका अनुगमन जरा करती है। शरीरविज्ञानके अनुसार यह कहा जा सकता है कि वृद्धता यौवनकी प्रतीक्षा प्रेमके कारण करती है। (२) जो मनुष्य प्रेम-व्यापारमें पड़ जाता है वह सहसा ही वृद्ध हो उठता है। (३) वृद्धा नारी (जरावार्धक्य-युक्ता नारी) युवाकी कामना करती है, क्योंकि प्रेमकी शक्ति अनिवार्य होती है। वासर, अंधकार, प्रदीप और जलद सभी शब्द पुल्लिङ्गमें हैं। केवल यौवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दका नपुंसक प्रयोग किया है, जो आपत्तिजनक प्रतीत होता है। इस आपत्तिको दूर करनेके लिए 'यौवन' को विशेषण रूपमें स्वीकार करना चाहिए, और यौवनका प्रयोग 'यौवनयुक्तेन पुरुषेण' के लिए मानना चाहिए। यहाँ शब्दोंका चयन अति मनोरम ढंगसे किया गया है, इस बातकी ओर ध्यान देना चाहिए। इस वाक्यसे कतिपय नायिकाओंका भी अभिव्यंजन होता है: कमलिनी शशिकर = निशाभिसारिका, कुमुदिनी-दिनकर = दिवाभिसारिका, निशा-वासर = काली नायिका गौरवर्णनायक, ज्योत्स्ना-अंधकार = गौरवर्णा नायिका—कृष्णवर्ण नायक, छाया-प्रदीप = दुबली-पतली नायिका—तेजस्वी नायक, तडित्-जलद = चंचल नायिका—गम्भीर नायक एवं जरा-यौवन = वृद्धा नायिका—युवा नायक।

किमित। येन कामेन, एवंविध एतादृशोऽगाधमलब्धतलं गाम्भीर्यं तस्य सागरः समुद्रोऽयं पुण्डरीकः तृणवत्, लघुतां लघिमानं नीतः प्रापितस्तस्य कामस्यापरं किं दुःसाध्यमसाध्यम्। न किमपि कामस्य दुष्करम्। अर्थापत्तिरलङ्कारः। तद्-निर्वचनीयं तपः क्व तथा, इयं परिदृश्यमाना प्राकृतजनानामिवावस्था क्व। द्वौ क्वाविति महदन्तरं सूचयतः। सर्वथा सर्वप्रकारेण निष्प्रतीकारा प्रतिक्रियारहिता, इयम्। आपद् विपत्तिः, उपस्थिता समुपागता। इदानीमधुना किं कर्त्तव्यं करणीयम्। वाथवा किं चेष्टितव्यं चरितव्यम्? कं देशं स्थानं प्रतिगन्तव्यं गमनीयम्। किं वा शरणं त्राणम्। को वा, उपायो युक्तिः। कः सहायः सहायताकारी। कः प्रकारो विधिः। का युक्तिः प्रतीकारसाधनायोपपत्तिः। कः समाश्रयोऽवलम्बनम्। येन कर्त्तव्येन। अस्य पुण्डरीकस्य, असवः प्राणाः धार्यन्तेऽवस्थाप्यन्ते। केन वा कौशलेन चातुर्येण, कतमया वा युक्त्योपपत्त्या, कतरेण वा प्रकारेण विधानेन, केन वा, अवष्टम्भेन प्रारम्भेण, 'अवष्टम्भः सुवर्णेऽपि प्रारम्भस्तम्भयोरपि'! इति विश्वः। कया वा प्रज्ञया बुद्धया। 'प्रज्ञा त्रैकालिकी मता' इति सम्प्रदायप्रकाशिनी टीका काव्यप्रकाशस्य। कतमेन वा समाश्वासनेन सान्त्वनेन वाऽयं जीवेत्। इत्येते, अन्ये च संकल्पविकल्पाः विषण्णं खिन्नं हृदयं यस्य तस्य मे मम कपिञ्जलस्य प्रादुरासन्, प्रकटीबभूवुः। पुनश्च भूयश्च। अचिन्तयम्—अनया निष्प्रयोजनया निरर्थकया चिन्तया ध्यातया किम्। तावत्प्रथममस्य पुण्डरीकस्य प्राणाः येन केन-चिद्, अशुभेनाकुशलेन शुभेन कल्याणैकपरेण वा, उपायेनोद्योगेन रक्षणीया पाल-

CC-0. Jangamwadi Math, Bhagwan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीयाः मयेति शेषः। तेषां पुण्डरीकप्राणानामेकं केवलं तस्याः महाश्वेतायाः समागमः सम्मिलनं तमपहायापरोऽन्यः संरक्षणस्य रक्षाया उपायो युक्तिर्नास्ति। एक एव, उच्छ्वासो निश्वासोऽवशेषोऽवशिष्टो यस्यैवंविधं जीवितं जीवनं यस्यैवंभूतोऽपि, अयं पुण्डरीकः, बालभावात्, अपरिचितत्वात् शिशुस्वभावात्, अप्रगल्भतया, अप्रतिभान्वितया च मदनस्य कामस्य व्यतिकरं वृत्तान्तं तपसी विरुद्धं विपरीतम्, आत्मनः स्वस्योपहासं परिहासमिव मन्यमानः सन्, तस्याः महाश्वेतायाः स्वयमभिगमनेनागमनेन मनोरथं चित्ताभिलाषं न पूरयति न पूरयिष्यति, इति नियतं निश्चितमेव। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भविष्यदर्थे लट्। अस्य पुण्डरीकस्यायं मदनस्य कामस्य विकारो विकृतिस्तज्जनितापीडा न कालान्तरं क्षमते, इति, अकालान्तरक्षमः, अथवा न कालान्तरस्य क्षम, इति। चिरकालं न तिष्ठतीत्यर्थः। एवं शाकुन्तले—तु०—दूरगतमन्मथा अक्षमेयं कालहरणस्य'। सततं निरन्तरम्, अतिगर्हितेनापि, अतिनिन्दितेनापि कृत्येन कार्येण साधवः सन्तः सुहृदो मित्रस्यासून् प्राणान् रक्षणीयान् पालनीयान् मन्यन्ते जानन्ति। तत् तस्मात् कारणात्, अतिह्रेपणमतिलज्जाकरम्, अकर्त्तव्यमकरणीयमपि। तापसत्वात् मेऽयोग्यम्। एतद्, अस्माकम्, अवश्यकर्त्तव्यतां नियतविधेयतामापतितमुपस्थितम्। किं चैतद्व्यतिरिक्तम् अन्यत् क्रियते कर्त्तुं पार्यते। का चान्यापरा गतिरुपायः। सर्वथा सर्वप्रकारेण तस्याः महाश्वेतायाः सकाशं समीपं प्रयामि गच्छामि। एतामवस्थां पुण्डरीकस्य वर्तमानां दशामावेदयामि निवेदयामि। इत्येवं चिन्तयित्वा चिन्तनं कृत्वा, कदाचित्, अनुचितव्यापारेऽयुक्तकर्मणि प्रवृत्तं सोद्योगं मां विज्ञाय ज्ञात्वा संजाता समुत्पन्ना लज्जा यस्य स एवंभूतः पुण्डरीकः मां निवारयेत, इति तस्मै पुण्डरीकाय, अनिवेद्य अकथयित्वैव तत्प्रदेशात् पुण्डरीकाधिष्ठितस्थलात्, सव्याजं सापदेशं यथा स्यात्तथा, उत्थायाहमागतः, भवत्याः समीपे। तत् तस्मात् कारणात्, एवमनेन प्रकारेणावस्थिते सति, यदत्रास्तिन् कर्मणि, अवसरप्राप्तं समयानुरूपम्। ईदृशस्यैवंविधस्यानुरागस्य प्रीतेः सदृशं योग्यम्। अस्मदागमनस्य मदागमनस्य चानुरूपं योग्यम्, आत्मनः स्वस्य वा समुचितं सदृशम्, अत्रभवती प्रभवती समर्था भवति, इत्यभिधायोक्त्वा, इयं महाश्वेता किं वक्ष्यति किं कथयिष्यति, इति मन्मुखे आसक्ता संलग्ना दृष्टिर्यस्य स तूष्णीं मौनमासीत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(३०) अहमिति । अहं तु तदाकर्ण्य पूर्वोक्तं कपिञ्जलप्रतिपादितं श्रुत्वा, सुखमेवामृतं सुधा तन्मये तद्भरिते ह्रदेऽगाधजलपूर्णतडाके । 'तत्रागाधजलो ह्रदः' इत्यमरः । निमग्ना ब्रुडितेव, रतिरनुराग एव रसो जलं तन्मयं शृङ्गाररसमयं वा, उदधिं समुद्रमवतीर्णा तन्मध्यप्रविष्टेव; सर्वानन्दानां सर्वप्रमोदानामुपरि वर्तमाना स्थिता, सर्वे च ते मनोरथा अभिलाषास्तेषामग्रं धुरमधिरूढाश्रितेव, सर्वे च त उत्सवाः समारोहास्तेषामतिभूमिं परां काष्ठामधिशयाना प्रसुप्तेव, तस्मिन् काल उपजातोत्पन्ना या लज्जा तया, किंचिदीपदवनम्यमानं प्रह्वीभूयमानं वदनं मुखं यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्, अतएव न स्पृष्टं कपोलयोरुदरं मध्यभागं यैस्ते तैः, ग्रथितैरिव गुम्फितैरिव, उपर्युपरि यत् पतनं तस्य योऽनुबन्धः परम्परा तेन दर्शितो मालाक्रमः स्रग्विभ्रमो यैस्ते तैः, न प्राप्तोऽमिलितो यः पक्ष्मणां नेत्ररोम्णां संश्लेषः सम्बन्धस्तस्य भावस्तत्ता तया, उपजातः समुत्पन्नो यो प्रथिम्नः पृथुतायाः भरोऽतिशयो येषां तैः, अमलैरञ्जनाभावान्निर्मलैः, स्रवद्भिः क्षरद्भिः, आनन्दोत्थानां वाष्पजलानां नयनसलिलानां बिन्दुभिः कणैः, आवेद्यमानः कथ्यमानः प्रहर्षस्यानन्दातिशयस्य प्रसरः प्रसङ्गो यस्यां सैवंविधाहं तत्क्षणं तत्कालमचिन्तयम् ।

अत्र 'सुखामृतमये' रतिरसमयमि' इत्यत्र च निरंगं केवलरूपकम् । अन्यत्रोत्प्रेक्षा । अनयो शङ्करः ।

दिष्ट्येति । दिष्टया भाग्येन तावत् प्रथममयमनङ्गः कामो मामिव तं पुण्डरीकमपि, अनुवध्नाति सततं पीडयति । 'यद्वा 'दृष्टया' इत्यव्ययमानन्दे । अतएव मां महाश्वेतां संतापयता पीडयतापि, कामेन मे मम, अंशेन यत्सत्यमनुकूलता दर्शिता । यदि सत्यमेव तस्य पुण्डरीकस्य, ईदृशी यथा कपिञ्जलेन वर्णिता तादृशी दशा वर्तते, ततस्तदा, अनेन कामेन किमिव नोपकृतम्, किमुपकारो न कृतः, सर्वथैव कृत इति भावः । किं वा नोपपादितं न प्रतिपादितम् । अनेन कामेन समानः सदृशोऽपरोऽन्यो कः बन्धुः । बध्नाति मनः स्नेहादिना इति वन्धुः । प्रशान्ता शमैकभावा भव्या चाकृतिराकारो यस्य तस्य कपिञ्जलस्य, अस्माद् वदनात् मुखात् स्वप्नेऽपि कथं केन प्रकारेण वितथा, असत्या भारती वाणी निष्क्रामति निःसरति । बाण प्रायः इसकी ओर संकेत करते हुए दिखाई पड़ते हैं कि आकार चरित्रका द्योतक होता है—'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ।' इस प्रकारके बाणके समान विचारोंके लिए तुलना कीजिए :—'बालिके कल्याणिनि तव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अविसंवादिनी अचपला बालभावेऽप्याकृतिरियम् ।' 'प्रायेण चैवंविधाः दिव्याः स्वप्नेऽपि अविसंवादिन्यो भवन्त्याकृतयः ।' तुलनीयः 'न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिन्यो भवन्ति'। शाकुन्तलाम् ४। इत्थंभूते मयापि किं प्रतिपत्तव्यं स्वीकर्त्तव्यम्। तस्य पुण्डरीकस्य वा पुरोऽग्रे किमभिधातव्यं किमु कथनीयम्। इत्येवं विचारयन्त्या चिन्तयन्त्यैव ससंभ्रमा सभया सती प्रतीहारी प्रविश्य मामकथयत्। प्रतीहारीलक्षणं तु नाट्यशास्त्रे भरतेनोक्तम्—

'सन्धिविग्रहसंवद्धनानाकार्यसमुत्थितम् ।
निवेदयन्ति कार्यं याः प्रतीहार्यस्तु ताः स्मृताः' ॥

२४।४४

'भर्तृदारिके ! राजपुत्रि ! त्वमस्वस्थं शरीरं यस्याः सेति परिजनात् सेवकादुपलभ्य प्राप्य महादेवी गौरीति नाम्ना राजमहिषी भवत्या माता प्राप्ता'। तत् प्रतीहारीनिवेदनं श्रुत्वा, महान् यो जनानां संमर्दः परस्परसंघर्षस्तस्मान् भीरुर्भयालुकः स कपिञ्जलः सत्वरं शीघ्रमुत्थाय—राजपुत्रि ! अयं महान् भूयान् कालातिपातो वेलातिक्रमः समयविलम्ब इति यावत्। उपस्थितः प्राप्तः। भुवनत्रयस्य त्रिलोकस्य चूडामणिरिव चूडामणिः शोभाधायकत्वात् भगवान् दिवसकरः सूर्योऽस्तमस्तमनमुपगच्छति प्रयाति। तत् तस्मात् कारणाद् गच्छामि। सर्वथा सर्वात्मनैवाभिमतो वाञ्छितो यः सुहृन् मित्रं तस्य प्राणा असवस्तेषां रक्षा त्राणं सैव दक्षिणा मदागमनपूजा तदर्थमयमञ्जलिः मुकुलितहस्तरूप उपरचितो विहितः, एषोऽञ्जलिबन्धरूपो मे परमो विभवः प्रकृष्टं सामर्थ्यम्। नातः परं किमपि कर्त्तुं क्षम इति भावः। इत्यभिधाय कथयित्वा प्रतिवचनकालं प्रत्युत्तरसमयम्, अप्रतीक्ष्यैव प्रतीक्षामकृत्वैव, अम्बायाः जनन्याः पुरोऽनुयायिनाग्रगामिना प्रविशता प्रवेशं कुर्वता कनकस्य सुवर्णस्य वेत्रलता यष्टिविशेषः करे हस्ते यस्य तेन, प्रतीहारिजनेन कञ्चुकिलोकेन गृहीताः ताम्बूलं नागवल्लीदलं, कुसुमं पुष्पं, पटवासः पिष्टातकोऽङ्गरागो विलेपनद्रव्यञ्च येन स तेन, चामरैर्बालव्यजनैर्व्यग्र आसक्तः पाणिर्हस्तो यस्य तेन। कुब्जाः वक्रशरीराः खर्वाश्च, किराताः कृशतनवः बधिराः श्रवण क्षमाः वामनाः खर्वाकाराः; वर्षवरा नपुंसकाः, कलमूकाः, अवाक्श्रुतयः। 'कलमूकोऽवाक्श्रुतिः।' इति हलायुधः। तैरनुगतेनानुयातेन परिजनेन सर्वतः समन्ततः संरुद्धे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आवृते द्वारदेशे सति कथमपि केन प्रकारेणापि कष्टेनेतिभावः। अवाप्तो लब्धो निर्गमो निष्क्रमणमार्गो येन स कपिञ्जलः प्रययौ जगाम। निष्क्रमन्तमपि कपिञ्जलं न कोऽपि ज्ञातुं क्षमोऽभवत् महासंमर्दतयेति ध्वनितम्। अम्बा तु मदीया जननी गौरी तु मत्समीपमागत्य सुचिरं चिरकालं स्थित्वा स्वभवनमयासीत्, अगात्। तत्र मदीयभवने, आगत्य तु तया जनन्या किं कृतं किमभिहितं कथितं किमाचेष्टितमाचरितमिति सर्वं शून्यं रिक्तं यस्याः सैवंभूताहं नालक्षयमज्ञातवती। पुण्डरीकविषयकचिन्तनैकहृदयत्वात् विषयान्तरबोधविहीनचित्तासीत् महाश्वेतेति भावः।

(३१) तस्यामम्बायां गतायां सत्याम्, हारीतो हरिद्वर्णपक्षिविशेषः। 'हारिल' इति हिन्दीभाषायाम्। तद्वद् हरिता नीला वाजिनोऽश्वा यस्य तस्मिन्। भारतीय परम्परामें सूर्यके घोड़े हरे रंगके माने जाते हैं। सम्भवतः यह विश्वास 'भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य' ऋग्वेदे १।११५।३ के ऊपर आधृत है। तुलनीयः 'अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः'। शाकुन्तलम्।

सरोजिनी कमलिनी तस्याः जीवितस्य जीवनस्येश्वरः स्वामी तस्मिन्। चक्रवाकानां रथाङ्गानां सुहृन् मित्रं तस्मिन्। भगवति सवितरि सूर्येऽस्तमुपगतेऽस्ताचलं प्राप्ते सति। पश्चिमाशामुखे पश्चिमदिङ्मुखे लोहितायमानेऽरुणायमाने सति। सन्ध्यारागादित्याशयः। कमलानां वनेषु हरितायमानेषु नीलायमानेषु सत्सु। कमलानां मुद्रणात् तद्दलप्रभामात्रस्थितत्वाद्। पूर्वदिग्भागे नीलायमाने हरितायमाने सति। अन्धकारागमनादिति भावः। पातालस्य यः पङ्कः कर्दमस्तेन कलुषेण मलिनेन। पङ्कस्य कालुष्यातिशयद्योतनार्थं पातालपदम्। महाप्रलयस्य यो जलधिः समुद्रस्तस्य पयांसि जलानि तेषां पूर ओघस्तेनैव सर्वाच्छादकेन तिमिरेणान्धकारेण जीवलोके संसारेऽवष्टभ्यमाने व्याप्यमाने सति। किंकर्त्तव्यता करणीयाकरणीयसंदिग्धता तया मूढाहं तां पूर्वोक्तामेव तरलिकामपृच्छम्। 'अयि तरलिके! अयीति कोमलामन्त्रणे। मे मम दृढमत्यर्थमाकुलं विकलं हृदयं कथं न पश्यसि? अप्रतिपत्तिः कर्त्तव्यतानिश्चयशून्यता तया विह्वलानि व्याकुलानि चेन्द्रियाणि सन्ति, अतोऽस्मिन् विषये पुण्डरीकविषयेऽपि स्वल्पमपि कर्त्तव्यं करणीयं स्वयं ज्ञातुमहं नालं न समर्था। 'अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इति कोशः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यतोऽयं कपिञ्जलस्त्वत्समक्षमेव त्वत्प्रत्यक्षमेव, एवममुना प्रकारेणाभिधाय कथयित्वा गतः । अतोऽस्मिन्नर्थे यत् साम्प्रतमुचितं तद् भवति, उपदिशतु कथयतु। यदि तावत्, इतरा नीचकुलोत्पन्ना कन्यका कुमारिकेव लज्जां विहाय परित्यज्य। लज्जापरित्यागे सर्वं भवितुं शक्नोति । तदुक्तं च—'एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयी भवेत्' । तुच्छकुलोत्पन्ना कन्या तु लज्जा त्यजति न महनीयकुलजाता तथा लज्जा नाम नारीणाममाभूषणम्, तत्परित्यागे नारीत्वपरित्याग एव स्यात । धैर्यं धीरतामुत्सृज्य दूरीकृत्य। धैर्यमप्युदात्तकुलानामेव शोभा न त्वनुदात्तजातानाम्। विनयं विनीतभावमवमुच्य विहाय । जनापवादं लोकनिन्दां कौलीनं वा, अचिन्तयित्वाविचार्य । सतां साधूनामाचार आचरणं तमतिक्रम्योल्लंघ्य, शीलं परपुरुषेष्वनभिरतिस्वभावम्, उल्लङ्घ्य । कुलमवगणय्यात्रधीर्य । अयशो दुष्कीर्तिमङ्गीकृत्य । कीर्तिरहितं जीवितं मरणमेव तथा च निगदितं गीतायाम्—'संभावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते' । रागेण विषयाभिलाषेणान्धा वृत्तिर्वर्त्तनं यस्याः सा। पित्रा जनकेनाननुज्ञातानुमोदिता । मात्राननुमोदिता । स्वयमहं महाश्वेतैवोपगम्य पुण्डरीकसमीपं गत्वा पाणि हस्तं ग्राहयामि । अयमेको मार्गो यस्तु प्रथितो नीचजनसार्थेषु, अहं तु सत्कुलाभिजाता कथं कर्त्तुं प्रभवाम्येवम् । यद्यप्यग्रे महाश्वेतयायमेव पन्था स्वीकृतः, परन्तु तत् कामस्यापराजेयतया दुर्घटघटनाघटयितुर्दैवस्य दुर्ललितविलासतया चाभवदिति सुधीभिर्विभावनीयम् । एवममुना प्रकारेण गुरुजनाः पूज्यजनास्तेषामतिक्रमादुल्लङ्घनान्महानधर्मः स्यात् । अथानन्तरं धर्मानुरोधाद् धर्ममार्गपरिग्रहाद्, इतरपक्षस्याननुसरणेन स्वगृहावस्थानपक्षस्यावलम्बनद्वारेणाश्रयद्वारेण मृत्युं प्राणवियोगम्, अङ्गीकरोमि स्वीकरोमि । अनेन पुण्डरीकाननुगमनात् पाणिग्रहणाभावे मम प्राणवियोगः स्यादिति व्यज्यते। एवमपि प्राणविमोचनेऽपि प्रथमं तावद् दूषणमिति शेषः । स्वयमागतस्य प्रथमः प्रणयो याच्ञाऽस्यास्तीति तस्य, तत्रभवतः पूज्यस्य कपिञ्जलस्य, प्रणयस्य याचनायाः यः प्रसरो वृद्धिस्तस्य भङ्गो नाशः स्यात् । पाणिग्रहाभावे पुनरपरमिदं दूषणमितिदोषः, यदि कदाचित् तस्य जनस्य पुण्डरीकस्य, मत्कृतादाशाभङ्गात्, मत्समागमरूपाशाविनाशात् प्राणानां विपत्तिर्जीवितनाश उपजायते भवेत्, तदपि तदापि मुनिजनस्य वधो मारणं ते जनितमुत्पन्नं महद्, एनः पातकं भवेत् ।' 'ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः' इत्यादि मनुवचनात् । इत्येव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुच्चारयन्त्यां वदन्त्यामेव मयि महाश्वेतायां सत्यां वासवस्येन्द्रस्य इयमिति वासवी प्राची दिक्, कुसुमानां पुष्पाणां रजसा परागेण वसन्तस्य मधुमासस्य वनानां राजिर्लेखेव आसन्नो निकटो यश्चन्द्रस्तस्योदयस्तस्याज्जन्म समुत्पत्तिर्यस्य तेन विरला-दप्यल्पादपि विरलेनाल्पेन आलोकेन प्रकाशेन धूसरतामीषत्पाण्डुताम्, अयासीद्, अगच्छत् । 'ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः' इत्यमरः । उपमा । वासवी—पूर्वदिशाके दिक्पाल इन्द्र हैं, इसलिए उसे वासवी, ऐन्द्री नामों से द्योतित किया जाता है । इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं के क्रमशः यम, वरुण और कुबेर दिक्पाल हैं ।

(३२) तत इति । ततो दिङ्मुखधूसरणानन्तरम् । इन्दुधाम्ना पाण्डुतामापद्य-मानं पश्चिमेतरं दिगन्तरमदृश्यत, इति सम्बन्धः । शशी चन्द्र एव केसरी सिंहः । विदारणकर्तृत्वसाम्यात् । तेन विदार्यमाणौ भिद्यमानौ तमोऽन्धकार एव करी गजः । कृष्णत्वसाम्यात् । तस्य कुम्भौ शिरसः पिण्डौ ताभ्यां संभवः समुत्पत्तिर्यस्य तेन । मुक्ताफलानां मौक्तिकानां क्षोदेन चूर्णेनेव धवलतां शुभ्रतामुपनीयमानं प्राप्यमाणम् । उत्तमजातिगजा हि मुक्ताकरा भवन्ति इति गजशास्त्रकारा आमनन्ति—

'करीन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि ।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषां तु शुक्त्युद्भवमेव भूरि ॥'

बृहत्संहितायां वराहमिहिरेणापि भणितम्—

'द्विपभुजगशुक्तिशङ्खाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि मुक्ताफलानि तेषां बहु साधु च शुक्तिजं भवन्ति ।'

उदयगिरौ याः सिद्धानां देवयोनिविशेषाणां विद्यासिद्धानां वा सुन्दर्यस्तासां कुचास्तेभ्यश्च्युतेन गलितेन चन्दनस्य चूर्णं तस्य राशिना समूहेनेव पाण्डुरीक्रिय-माणं शुभ्रतामापद्यमानम् । चलितं वेल्लितं कम्पितमिति यावद्, यज्जलधेः समु-द्रस्य जलं तस्य ये कल्लोलाः महत्तरङ्गास्तेषामनिलेन समीरेणोल्लासितेनोल्लासं प्रापितेन, वेलाम्भसो वृद्धिस्तस्याः पुलिनं जलोज्झितं तटं तस्य सिकता वालुका तस्या उद्गमेनैव प्रकटनेनैव, इन्दुधाम्ना चन्द्रकिरणेन पश्चिमस्याः इतरदन्यत् पश्चिमेतरं दिगन्तरं प्राची, अदृश्यत, आलोक्यत जनैरिति शेषः । अत्र साङ्ग-रूपकम् । उत्प्रेक्षा च । चन्द्रदर्शनात् निजप्राणनाथविलोकनात्, मन्दं मन्दं स्मितं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशो हास्यं च यस्याः, तस्याः निशायाः रात्रेः दशनप्रभा दन्तच्छविरिव शनैः शनैः, मन्दं मदं निष्पतन्ती निःसरन्ती ज्योत्सना चन्द्रिका निशायाः मुखशोभामकरोत्। अत्र इन्दुनिशयोः स्त्रीपुरुषव्यवहारात् समासोक्तिः।

तदन्विति। तदनु तत्पश्चात्, अवनीं पृथिवीम्, अवदीर्य भित्वा रसातलान्नागलोकात्, उद्गच्छता प्रादुर्भवता, शेषस्य श्वेतवर्णानन्तनागस्य फणामण्डलेनेव फणासमूहेनेव धवलेन वर्त्तुलाकारेण चेत्याशयः। रजनिकरस्य चन्द्रस्य बिम्बेन मण्डलेन, रजनी रात्रिः, अराजताशोभत। उत्प्रेक्षा। "अत्र रजनिकरबिम्बमात्रग्रहणेन चन्द्रस्य बालभावप्रकटीकरणात् समुपारूढरागिणेति पूरणीयम्। ततश्च चन्द्रोदयकालेऽतीवारुण्यं बालत्वात्। तदनन्तरं च तरुणावस्थायामारुण्यमात्रम्। अत एव समुपारूढरागेणेत्येवाग्रे विशेषणम्। तथा शेषफणेत्यत्रानवरतकमलाकरकमलतललालितहरिपदाम्बुजप्रभारुणाभेति पूरणीयम्। तेन सर्वं साम्यमुत्पद्यते।" इति भानुचन्द्रः।

क्रमेणेति। सकलो निखिलो यो जीवलोको मनुष्यलोकस्तस्यानन्दकेन प्रहर्षसमुत्पादकेन, कामिनीजनः स्त्रीलोकस्तस्य वल्लभेन प्रियेण। किंचिदुन्मुक्त ईषत्परित्यक्तो बालभावः शिशुता येन स तेन, मकरध्वजस्य कामस्य बन्धुभूतेन-स्वजनभूतेन, समुपारूढः संजातोऽनुरागो लौहित्यं च यत्र तेन, सुरतोत्सवो रतिक्षणस्तस्योपभोगस्तत्रैकयोग्येन सर्वथोचितेन, अमृतमयेन आनन्दातिरेकण पीयूषात्मकेन च। यौवनेनेव तारुण्येनेव आरोहता देहमाकाशञ्च, अधिरोहता शशिना चन्द्रेण यामिनी रात्रिः रमणीयतां शोभनीयतामनीयत प्रापिताभूत्। अत्र चन्द्रस्य यौवनौपम्यं शाब्दं यामिन्याः सौन्दर्यौपम्यरवार्थमिति श्लेषानुप्राणिता एकदेशविवर्त्तिन्युपमेति धीराः।

(३२) अथेति। अथानन्तरम्, अभिनवो नूतनो यो रागस्तेन लोहितं रक्तमत एव प्रत्यासन्नः निकटवर्त्ती यः समुद्रस्तस्मिन् विद्रुमा प्रवालास्तेषां प्रभा दीप्तिस्तया पाटलितम्, आरक्तीकृतमिव, उदयगिरौ यः सिंहस्तस्य करतलेनाहतो यो हरिणः स्वमण्डलवर्त्ती तस्य शोणितेन रुधिरेण शोणीकृतं रक्तीकृतमिव, रतिकलहे प्रणयप्रसङ्गेन कुपिता क्रुद्धा या रोहिणी चन्द्रपत्नी तस्याश्चरणौ पादौ तयोर्य अलक्तकरसो यावकद्रवस्तेन लाञ्छितमिव चिह्नितमिव। उदितं तं रजनीकरं चन्द्रं विलोक्य दृष्ट्वा (यहाँ बाण ने 'पाटलित' (श्वेतरक्त) 'शोणीकृत' (गहरा लाल) और 'अलक्तरसलाञ्छित' (चमकीला लाल) विशेषणों के द्वारा बढ़ते हुए चन्द्र की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीन विभिन्न दशाओंकी ओर संकेत किया है। कविका सूक्ष्म निरीक्षण ध्यान देने योग्य है।)

अन्तर्मध्ये ज्वलितो मदनानलः कामाग्निर्यस्याः सा, एवंविधापि, अन्धकारितं मोहाच्छन्नं हृदयं चित्तं यस्याः सा। 'अत्र सर्वत्रापि शब्दो विरोधालङ्कारद्योतकः'। इति बाल०। तरलिकाया उत्सङ्गे क्रोडे विधृतं निहितं शरीरं यया सैवंभूतापि मन्मथस्य हस्ते वर्त्तितुं शीलमस्याः, चन्द्रे गते नयने नेत्रे यस्याः सैवंविधापि मृत्युं मरणमालोकयन्ती पश्यन्ती, अहिमिति शेषः। तत्क्षणमचिन्तयम्। अत्र क्रमंश आनन्दशून्यचित्ता, कामवशीभूता, दयितप्राप्त्यभावे मदनसंतापात् संमुखीनं मरणं संभावयन्तीति परिहाराः। काव्यलिङ्गम्, उत्प्रेक्षा, विरोधाभासश्च।

एकत्रेति। एकस्मिन् पक्षे पापकारी पापी चन्द्र एव हतको घातकः सोढुं न शक्यते पार्यते। 'अनेन चन्द्रस्य कामादीनामपेक्षयोद्दीपकत्वप्रकर्षः सूचितः'। इति बालबोधिनी। तेन चेदं मम हृदयम्, अतिदुःखेन विषहन्त इति, अतिदुर्विषहाश्च ता मदनवेदनाः कामपीडास्ताभिः, आतुरं विकलं जातमिति शेषः। अस्य चन्द्रस्येदम्, उद्गमनमुदयः, दाहज्वरो दहनसंतापस्तेन सहितः सदाहज्वरस्तेना-ग्रस्तस्य अथवा सदाहेन सोष्मया वर्तमानो यो ज्वरस्तापतेन ग्रस्तस्य पीडितस्य लोकस्य, अङ्गारवर्षोऽग्निस्फुलिङ्गवृष्टिः। शीतेनार्त्तस्य पीडितस्य तुषारो हिमे तस्य पातः पतनस्वरूपम्। विषं गरलं तस्य स्फोटस्तजनितो विस्फोटस्तेन मूर्च्छितस्य, कृष्णसर्पस्य दंशः अत्र निरङ्गमालारूपकम्। इत्येवं चिन्तयन्तीं ध्यायन्तीमेव मां महाश्वेतां चन्द्रस्योदय उद्गमस्तेनोपनीता प्रापिता कमलवनस्य ग्लानिः संकोचः एव निद्रा तत्सदृशी मूर्छा निमीलिते मुद्रिते लोचने यस्याः सैवंविधामकार्षीत्। उपमा।

अचिरेणेति। सम्भ्रान्ता सत्वराऽतिव्याकुला या तरलिका तयोपनीताभिः दत्ताभिः, चन्दनस्य चर्चाभिर्विलेपनैः, तरलिकाव्यजितैस्तालवृन्तस्य बालव्यजन-स्यानिलैः पवनैश्च, अचिरेण शीघ्रमेव, उपलब्धा समाधिगता संज्ञा चेतना यस्याः साहम्, आकुलाकुलां मदावस्थां वीक्ष्य विकलतां गताम्, मूर्तेनेव विषादेन दुःखेना-धिष्ठितामधिकृताम्, मल्ललाटे मम भाले विधृता स्थापिता स्रवन्ती जलं क्षरन्तीं चन्द्रकान्तमणिशलाका यया सा ताम्, अविच्छिन्ना संतता या वाष्पजलस्याश्रु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सलिलस्य धारा तयान्धकारितं विच्छायितं मुखं यस्याः सा ताम्, रुदन्तीं तरलिका-मपश्यम् । उत्प्रेक्षा ।

उन्मीलितेति । उन्मीलिते विकसिते लोचने यस्याः सा ताम्, मां कृतः पादयोः प्रणामो नतिर्यया सा तरलिका चन्दनस्य पङ्कः कर्दमस्तेनार्द्रेण क्लिन्नेन करयुगलेन, बद्धोऽञ्जलिर्यया सैवंविधावादीदवोचत् । 'भर्तृदारिके ! राजपुत्रि ! किं लज्जया । गुरुजनानां पूज्यजनानां मातृपित्रादीनामपेक्षया वा किम् । प्रसीद प्रसन्ना भव । माम्, प्रेषय पुण्डरीकसमीपे । ते तव हृदयस्य दयितं प्रियं जन-मानयामि । उत्तिष्ठ वाथवा स्वयं तत्र यत्र तव प्रियस्तस्मिन् स्थले गम्यतां गमनं क्रियताम् । अतः परं प्रबलप्रकृष्ट यश्चन्द्रस्योदयस्तेन तेन विजृम्भमाणा उत्कलिका उत्कण्ठास्तरङ्गाश्च तासां शतं यस्मिन्नेवंभूतम् । मकरश्चिह्नं ध्वजोलक्षणं च यस्य स तमिमं काममुदधिमिव सोढुं न समर्थासि । पूर्णोपमा । इत्येवंवादिनीं तामवोचम् ।

उन्मत्त इति । उन्मत्ते ! उन्मादशीले ! मन्मथेन कामेन किं स्यात् ? नन्विति त्यामन्त्रणे । मृत्योर्मरणस्य तस्यैव पुण्डरीकस्यैव वा सकाशं निकटं नेता प्रापकः कुमुदवान्धवश्चन्द्रः, सर्वविकल्पान् निखिलवितर्कान् परिहरन् दूरीकुर्वन्, सर्वे ये उपायाश्चन्दनलेपादयस्तेषां दर्शनानि, उत्सारयन् विनाशयन्, अन्तरायान् विघ्नान् । 'अयं मुनिकुमारोऽहं च राजकुलोपन्नेत्युभयोर्विलक्षणकुलशीलस्वभावलोक-गर्हारूपाः' अन्तरायाः इति भानुचन्द्रः । अन्तरयन् व्यवधानं कुर्वन्, सर्वे ये संदेहाः शङ्कास्थानानि तान्, अपनयन्, अपसारयन्, सर्वशङ्काः मातृपितृ-समुद्भूतास्तिरस्कुर्वन्, लज्जामुन्मूलयन्नुत्पाटयन् । एतदौत्स्युक्यसमीपे लज्जाया अतितुच्छत्वात् । स्वयमात्मनाभिगमने तदनुसरणे लाघवदोषं लघुतादूषणम्, आवृण्वन्, आच्छादयन् सन्, आगत उपस्थित एव । विरहवेदनाव्याकुलायाः मम पुण्डरीकमभिगमनं मरणं वैकशरणमिति भावः । तत् तस्मात् कारणाद्, उत्तिष्ठ, यथाकथंचित् महता कष्टेनापि अनुगमनेनानुसरणेन जीविता श्वसिता, अहम्, यन्निमित्तमायासः क्लेशोऽनुभूयते तमायासकारिणं दुःखदायिनं हृदयस्य दयितं प्रियं जनं संभावयामि । 'अनुसरणफलीभूतेन सह संगमरूपेण समाधानं करिष्यामीत्याशयः ।' इति भानुचन्द्रः । सङ्गमाभावे स चाहं च जीवितपरित्यागं करिष्याव इत्यनेन । व्यज्यते । इत्येवम्, अभिदधाना ब्रुवाणा, मदनमूर्च्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामातिरेकस्तया जनितो यः खेदः, तेन विह्वलानि विकलानि, अंगानि तैः, तामेव तरलिकामेव कथंचित् कष्टेनावलम्ब्य धृत्वा, उदतिष्ठमुत्थितवती। चकारः समुच्चयार्थकः। उच्चलितायाः प्रस्थितायाः मे मम दुर्निमित्तानामशुभानां निवेदकं सूचकं दक्षिणं लोचनं नयनमस्पन्दतास्फुरत्। 'स्त्रीणां दक्षिणाक्षिस्पन्दोऽशुभसूचक इति शकुनशास्त्रज्ञाः।' इति बालबोधिनी। उपजाता समुत्पन्ना शङ्का यस्या मैवंविधाहं चाचिन्तयम्—दैवेन विधिना, अपरमिदं किमुपक्षिप्तं निक्षिप्तम्।

(३४) अथेति। अथ नातिदूरोद्गतेनेति प्रारभ्य अवातरमिति अग्रिमया क्रिययाऽन्वयः।

अथानन्तरं दुर्निमित्तस्फुरणानन्तरम्। त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं तदेव प्रासादः सौधस्तस्य महाप्रणालो विशालनिर्गममार्गस्तस्यानुकारिणा सदृशेन। जलसदृशशीतलकिरणनिःसारणात् वर्तुलस्वरूपत्वाच्च प्रासादशिखरस्थमहाप्रणालानुकारित्वं चन्द्रस्येत्यवसेयम्। सुधा पीयूषं तदेव सलिलं जलं तस्य प्लवाः पूरास्तानिव महता धारयता। 'अनेनास्य ज्योत्स्नासलिलेन त्रिभुवनप्लावनसामर्थ्यं सूचितम्'। इति बालवोधिनी। चन्दनरसस्य यो निर्झरस्तस्य निकराः समूहास्तानि क्षरता स्रवता। सन्तापनिर्वापणसाम्यात्। अमृतमयो यः सागरः समुद्रस्तस्य पूरान् प्लवानिव, उद्गिरता वमता। श्वेतगङ्गायाः प्रवाहाणामोघानां सहस्राणीव वमता वमनं कुर्वता। सुधासितया चन्द्रिकया प्लावितत्वादिदं साम्यम्। चन्द्रमण्डलेन ज्योत्स्नया चन्द्रिकया भुवनान्तराले लोकमध्ये प्लाव्यमाने पूर्यमाणे सति। रूपकमुत्प्रेक्षा च।

'इदं च शशिनः किंचित्कालहीनत्वमादायेत्युक्तम्। अन्यथा दंष्ट्राया वक्रत्वेन चन्द्रमण्डलस्य साम्यं न स्यात्।' इति भानुचन्द्रः।

महावराहेति। महावराहस्यादिवराहस्य यद् दंष्ट्रामण्डलं दशनसमूहस्तन्निभेन सदृशेन। उपमा, सा चार्थी। शशिना चन्द्रेण। क्षीरसागरो दुग्धसिन्धुस्तस्योदरं मध्यं तस्मात्, महीमण्डले पृथ्वीमण्डले, उद्ध्रियमाण उत्पाद्यमान इव सति। उत्प्रेक्षा।

श्वेतेति। श्वेतद्वीपे निवासं वसतिमिव सोमलोकस्य चन्द्रलोकस्य यद्दर्शनं तस्माद् यत्सुखं तमिव जने लोकेऽनुभवति सति। उत्प्रेक्षा।

प्रतीति। प्रतिभवनं प्रतिगृहम्, अङ्गनाजनेन रमणीकदम्बेन, विकचा विक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिता ये कुमुदाः कैरवाणि तेषां गन्धो येषु ते तैः, चन्दनमिश्रितैः, उदकैर्जलैश्चन्द्र-स्योदय उद्गमनं तदर्थमर्घेषु पूजावस्तुषु, उपह्रियमाणेषु दीयमानेषु सत्सु ।

अर्घ—सम्मानीय व्यक्ति, देव एवं ऋषि आदिके स्वागतार्थ अर्घ दिया जाता है। अर्घमें जल तथा दूर्वा आदि वस्तुएँ रहती हैं। कभी-कभार जल नहीं रहता :

"आपः क्षीर कुशाग्रं च दधि सर्पिः सतण्डुलम् ।
यवः सिद्धार्थकश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्त्तितः ॥"

तुलनीयः 'कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै' । मेघदूतम्—४ ।

कामिनीति । कामिनीभिः प्रहिताः प्रियसमीपे प्रेषिता याः सुरतार्थं दूत्यस्तासां संहस्रं तेन संकुलेषु व्याप्तेषु राजमार्गेषु सत्सु ।

नीलांशुकेति । नीलांशुकेन श्यामवस्त्रेण रचितम् । अवगुण्ठनं शिरोवेष्टनं याभिस्तासु । नीलवस्त्रावृतत्वेन कैश्चिज्ज्ञातुं न शक्यन्ते । तदुक्तं विश्वनाथेन :

"संलीना स्वेषु गात्रेषु मूकीकृतविभूषणा ।
अवगुण्ठनसंवीता कुलजाभिसरेद् यदि ॥"

अत एव नीलोत्पलानां प्रभाभिर्दीप्तिभिः पिहितास्वावृतासु, कमलवनस्य लक्ष्मीः श्रीस्तास्विव । अभिसारिकासु संकेतस्थानगमनपरनायिकासु । चन्द्रस्य य आलोकः प्रकाशस्तेन चकितासु जनावलोकनभीतासु । अतएव, इतस्ततः पलाय-मानासु धावमानासु सतीषु । काव्यलिङ्गोत्प्राणितोपमा । अभिसारिकालक्षणन्तु प्रागुक्तमेव ।

प्रतीति । प्रतिकुमुदम्, आवद्धं धृतं मधुकराणां भ्रमराणां मण्डलं याभिस्तासु भवनदीर्घिकाया गृहवापिकायाः कुमुदिनीषु कैरविणीषु प्रबुद्धयमानासु स्फुट-मानासु सतीषु ।

स्फुटितेति । स्फुटितं विकसितं यत् कुमुदवनं तस्य बहला निविडा या धूलिः परागस्तया धवलितं शुभ्रितमुदरं यस्य स तथा तस्मिन् । निशा रात्रिरेव नदी तस्याः पुलिनायमाने, अन्तरिक्षे आकाशे सति । निरङ्ग केवलरूपकम्, उपमा, काव्य-लिङ्गम् । सङ्करः ।

चन्द्रोदयेति । चन्द्रस्योदयस्तेन, य आनन्दनिर्भरः प्रमोदातिशयो यत्र तस्मिन् महोदधौ महासमुद्र इव स्फीत इति शेषः, जीवलोके प्राणिसमूहे, रतिरसः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शृङ्गारस्तन्मय इव शृङ्गारमय इव, विलासमय इव, लीलामय इव, प्रीतिमय इव च सति। काव्यलिङ्गमुपमा। अनयोः सङ्करः।

शशीति। शशिमणयश्चन्द्रकान्ता एव प्रणालाः जलनिर्गमनमार्गास्तेषां निर्झरा स्रुतयो। यस्मिंस्तस्मिन्, प्रमोदेन प्रहर्षेण मुखरा वाचाला ये मयूरास्तेषां रवैः केकाशब्दैः रम्ये रमणीये, प्रदोषो रजनीमुखं स एव समयस्तस्मिन् सति। इह भ्रान्तिमान्।

गृहीतेति। गृहीतानि विविधानि कुसुमानि, ताम्बूलानि नागवल्लीपत्राणि, अङ्गरागो वदनविलेपनं पटवासचूर्णानि पिष्टातकचूर्णानि यया सा तथोक्तया तरलिकया पूर्ववर्णितया सेविकया, अनुगम्यमाना, मूर्च्छायां निहितेन दास्या तरलिकया स्थापितेन, किंचिदाश्यानाशुष्का या चन्दनस्य ललाटिका भालस्थ-तिलकविशेषस्तस्यां लग्ना संसक्ता अतएव धूसरा किंचित् पाण्डुवर्णा आकुला त्रिकीर्णा अलकाः केशा यस्मिन् तेन, आर्द्रेण, चन्दनस्य रसस्तेन चर्चा मण्डनं विलेपनं वा यस्मिन्नेतादृशो यो. वेषस्तेनोपलक्षिता, तथैव तत्समय आघातप्रकारेणैव कण्ठे स्थिता धारिता तया, अक्षमालया जपमालया चोपलक्षिता, तया श्रवणयोः कर्णयोः शिखरमग्रभागं चुम्बयतीत्येवंशीलया पारिजातस्य मन्दारकुसुमस्य मञ्जर्या, उप-लक्षिता सती। पद्मरागस्य रक्तरत्नस्य रश्मिभिर्विनिर्मितेन रचितेनेव रक्तांशुकेन, अरुणवस्त्रेण कृतं शिरसो भालस्यावगुण्ठनं वेष्टनं यया सा, केनचिद्, आत्मीयेनापि परिजनेन निजसेवकेनापि, अनुपलक्ष्यमाणा, अज्ञायमाना सती प्रासादशिखराद-वातरम्। उत्प्रेक्षा।

(३५) अवतीर्येति। पारिजातस्य मन्दारस्य या कुसुममञ्जरी तस्याः परिमलो गन्धस्तेनाकृष्टेन, अतएव रिक्तीकृतं शून्यीकृतमुपवनं काननं येन। तत्रैव सर्वेषां गमनात्। नीलपटः नीलांशुकं तस्यावगुण्ठनं शिरोवेष्टनं तस्य विभ्रमं विलासं सम्पादयता रचयतेव, कुमुदवनानि कैरवखण्डान्यपहाय धावता धावनं कुर्वता मधुकरजालेन भ्रमरकुलेन, अनुबध्यमानानुव्रज्यमानाहम्। प्रमदवनस्य महाश्वेताभ-वनोपवनस्य पक्षद्वारेण पार्श्वद्वारेण निर्गत्य निःसृत्य तस्य पुण्डरीकस्य समीपमुद-चलमुदगच्छम्। उत्प्रेक्षा।

प्रयान्तीति। प्रयान्ती गच्छन्ती, तरलिकैव द्वितीयेतरा यस्य तम्, अतएव, अपरिजनम्, अन्यसेवकविहीनम्, आत्मानं स्वमवलोक्य निरीक्ष्याचिन्तयम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिशयेन प्रियः प्रियतमस्तस्याभिसरणमनुगमनं तत्र प्रवृत्तस्य व्यापृतस्य जनस्य बाह्येन परिजनेन सेवकेन किमिव किं नाम कृत्यं कार्यम् । न किमपीत्यर्थः ।

नन्विति । अवधारणार्थको ननु शब्दः । 'प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु' । इत्यमरः । एते कुसुमायुधशशीरागादयः परिजनस्य सेवकस्य लीलां व्यवहारमुपदर्शयन्ति प्रकटयन्ति ।

तथाहीति । तथाहि—समारोपितं सज्जीकृतं यत्, शरासनं धनुस्तस्मिन्नासक्त आयुक्तः सायको वाणो यस्य सः कुसुमायुधः कामोऽनुसरति पश्चाद् व्रजति । उद्दीपकत्वात् अनेनास्य रक्षित्वं ध्वन्यते ।

दूरेति । दूरं प्रसारिता विस्तारिताः करा हस्ता येनैवंविधः शशी चन्द्रः करमिव हस्तमिव कर्षति, आकर्षणं करोति । गमनाय प्रोत्साहयतीत्यर्थः ।

प्रस्खलनेति । रागो रतिरनुरागो वा प्रस्खलनं प्रपतनं तस्माद् यद् भयं तस्मात् पदे पदे प्रतिपदमवलम्बते धारयति । 'अथ चान्योऽपि सेवकः प्रस्खलनभयात् स्वामिनोऽवलम्बनं करोति' ।

लज्जामिति । हृदयं मनो लज्जां पृष्ठतः पश्चाद् भागे कृत्वा इन्द्रियैः सह पुरोऽग्रे धावति सत्वरं गच्छति । उत्कण्ठा पुण्डरीकविषयकमौत्सुक्यं निश्चयमारोप्य निश्चयेन प्रियसंगमो भविष्यति, इति कृत्वा मां नयति ।

प्रकाशमिति । प्रकाशं प्रकटं यया स्यात्तथाहमित्यवदमवोचम् । 'अयीति कोमलामन्त्रणे । तरलिके ! अपि नामेति प्रश्नेऽर्थे । 'गर्हासमुच्चयशङ्कासम्भावनास्वपि' । इत्यमरः । अयं पुरतो वर्तमानः, इन्दुहतकः दुष्टचन्द्रः मामिव तमपि कुमारं पुण्डरीकं किरणैर्यः कचानां केशानां ग्रहो ग्रहणं तेनाकृष्टमाकृष्य गृहीतं सन्तं मम, अभिमुखं सम्मुखमानयेत् प्रापयेत् । इत्येवंवादिनीम्, इत्थं ब्रुवाणां मां महाश्वेतामसौ तरलिका विहस्य हास्यं कृत्वाब्रवीत् ।

भर्तृदारिकेति । 'भर्तृदारिके ! राजपुत्रि ! मुग्धानभिज्ञासि अस्य चन्द्रस्य तेन जनेन पुण्डरीकेण किम् । कृत्यमिति शेषः । अयं चन्द्रहतक आत्मनैव स्वयमेव तावत् मदनेन कामेनातुरः पीडित इव तास्ताः प्रसिद्धाः कामिजनोचिताश्चेष्टाः भर्तृदारिकायां भवत्यां करोति । आत्मन एव त्वयि साभिलाषत्वादिति भावः । तथाहि—स्वेदसलिलं घर्मजलं तस्य कणिका बिन्दवस्ताभिः, आचितं व्याप्तं कपोलयुगलं प्रतिबिम्बस्य प्रतिच्छायायाः छलेन व्याजेन चुम्बति । 'एतेन कपोलयोः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वच्छता विरहतश्च व्यज्यते । लावण्यवति सौन्दर्यवति पयोधरभारे कुचयुगले, प्रस्फुरितः कम्पितः करो यस्य सः । पक्षे कराः किरणाः । निपतति लगति । 'एतेन पयोधरयोर्जडत्वं परिणामविशेषश्च द्योतते' । रशना कटिमेखला तस्याः मणीन् रत्नाद् स्पृशति । निर्मलाः स्वच्छा ये नखास्तत्र लग्ना मूर्त्तिर्यस्यैवंविधः सन् पादयोः पतति । अत्र 'चुम्बति' 'निपतति' इत्यत्रोत्प्रेक्षा । 'प्रस्फुरितकरः' इत्यत्र रश्मि-करयोर्भेदेऽपि श्लिष्टत्वे नाभेदारोपादतिशयोक्तिः । 'पतति' इत्यत्र उत्प्रेक्षा ।

किंचेति । अपि चेति किंचार्थः । मदनेन कामेनातुरः पीडितस्तस्येव, अस्य चन्द्रस्य वपुः शरीरं तापान् मदनज्वराच्छुष्को यश्चन्दनस्यानुलेपो विलेपनस्तद्वत् पाण्डुतां शुभ्रतां वहति । 'मदनातुरस्येव' इत्यत्र उपमा । 'तापात्' इत्यत्र उत्प्रेक्षा । सा चोपमया सङ्कीर्यते । मृणालानि विसानि तेषां वलयानि तद्वद् धवलान् शुभ्रान् करान् रश्मीन् इव हस्तान् धत्ते धारयति । अत्र रश्मिहस्तयोर्भेदेऽपि श्लिष्टेनाभेदा-ध्यवसायादतिशयोक्तिः । प्रतिमाव्याजेन प्रतिबिम्बच्छलेन स्फटिकमणीनां कुट्टिमेषु बद्धभूमिषु निपतति । तापनिवृत्तिहेतोरन्योऽप्येवमाचरति । अत्रापह्नुतिः । केतक्याः प्रसिद्धायाः या गर्भकेसरधूलिः मध्यस्थितकिंजल्कपरागस्तद्वद् धूसरावीष-त्पाण्डू पादौ यस्यैवंभूतः कुमुदसरांसि कैरवतडाकान्यवगाहते विलोडते । अत्रापह्नुतिः पूर्ववदतिशयोक्तिश्चेत्यनयोः सङ्करः । सलिलस्य जलस्य सीकराः समीरताडितकणास्तैः, आर्द्राः क्लिन्नास्तान् शशिमणीन् चन्द्रकान्तमणीन् करैः किरणैरामृशति परामृशति । अत्राभेदाध्यवसायमूलातिशयोक्तिः । विघटितानि वियोजितानि चक्रवाकानां मिथुनानि द्वन्द्वानि येभ्यस्तानि कमलानां वनानि द्वेष्टि । अत्र उत्प्रेक्षा । एतैः पूर्वोक्तैरन्यैस्तद्भिन्नैश्च तत्कालमुचिताः सदृशास्तैरालापैः संभाषणैः । तमुद्देशं पुण्डरीकाधिष्ठितप्रदेशम्, अभिलक्ष्यीकृत्योपागमम् प्राप्तम् ।

तत्रेति । कैलासस्य तटाच्छिखरात् । चन्द्रोदयेन प्रस्नुताः च्युताः ये चन्द्रकान्तमणयस्तेषां प्रस्रवणं निर्झरस्तस्मिन्, मार्गे याः लतास्तासां कुसुमानि पुष्पाणि तेषां रजांसि परागास्तैः धूसरं चरणयुगलं प्रक्षालयन्ती धावनं कुर्वन्ती, अहम् यस्मिन् प्रदेशे सः पुण्डरीक आस्ते तिष्ठति, तस्मिन्नेव स्थाने अस्याच्छोदस्य सरसस्तडाकस्य पश्चिमे तटे पुरुषस्येव पुरुषसदृशस्य विप्रकर्षाद् दूरत्वात् नातिव्य-क्तम्, अनतिस्पष्टं रुदितस्य क्रन्दनस्य ध्वनिमुपालक्षयमशृणवम् ।

दक्षिण इति । दक्षिणमीक्षणं नयनं तस्य स्फुरणं स्पन्दनं तेन च प्रथममेव,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदावेव, मनसि चित्ते, आहिता स्थापिता शङ्का यस्याः साहम्, तेन रोदनेन सुतरामतिशयेन अवदीर्णं विदीर्णं हृदयं यस्याः सैव, किमप्यनिर्वचनीयम्, अनिष्टमशुभम्, अन्तर्मध्ये कथयता ब्रुवतेव विषण्णेन खेदवता, अन्तरात्मना अन्तःकरणेन सता 'तरलिके ! सभयं यथा स्यात्तथा किमिदं किमतत्' इत्यभिदधाना ब्रुवाणा वेपमाना कम्पमाना गात्रयष्टिर्देहयष्टिः यस्याः सैवंविधा, अतित्वरितमतिशीघ्रं तदभिमुखं रोदनं लक्ष्यीकृत्य सम्मुखम् अगच्छम् ।

(३६) अथेति । अथ""विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषमित्यन्वयः । अथ, आगमनान्तरम् । निशीथोऽर्धरात्रस्तस्य प्रभावात् माहात्म्यात्, दूरादेव, हा इति खेदे, हस्ताडितोऽहमस्मि विधिना, हा इति पूर्ववत्, दग्धोऽस्मि ज्वलितोऽस्मि, हा वञ्चितः प्रतारितोऽस्मि, हा किमिदमतर्कितम्, आपतितमागतम्, किं वृत्तं निष्पन्नम् । मच्छिरसीति शेषः । उत्सन्नो सूलादुत्पाटितोऽस्मि । छिन्नमूलः सर्वथा विनष्ट इति भावः । दुरात्मन् ! दुष्ट ! मदनपिशाच ! पाप ! पापिन् ! निर्घृण ! निर्दय ! किमिदं कृत्यं दुष्कार्यं त्वयाऽनुष्ठितमाचरितम्, आः पापे दुष्कृतकारिणि ! दुर्विनीते ! महाश्वेते अनेन पुण्डरीकेण ते तव किमपकृतं कोऽपकारः कृतः । आः आक्रोशे दुश्चरित ! दुराचार ! चन्द्रचाण्डाल ! त्वं कृतार्थः कृतकृत्योऽसि, अपगतं दूरीभूतं दाक्षिण्यमनुकूलाचारो यस्य तत्सम्बुद्धौ, दक्षिणानिलहतक ! दुष्ट दक्षिणपवन । इदानीमधुना ते तव मनोरथाः पूर्णाः जाताः । हतक इति हीनोक्तिः । यत्कर्त्तव्यं करणीयं तत्कृतम् । इदानीं साम्प्रतं यथेष्टं वह संचर, हा भगवन् पुत्रवत्सल सुतहितकारक श्वेतकेतो ! आत्मानं त्वं मुषितमपहृतसर्वस्वं न वेत्सि न जानसि । हेति प्राग्वत्, धर्म । त्वं निर्गतः परिग्रहः स्वकारो यस्य स एवंविधोऽसि निष्परिग्रहो निष्परिवारो निर्मूलो निराधारो वा । हा तपः 'परिग्रहः कलत्रेऽपि मूलस्वीकारयोरपि । शपथे परिवारे च' इत्यजयः । निराश्रयमवलम्वनरहितमसि । हा सरस्वति ! त्वं विधवामृतभर्तृकासि । हा सत्य ! अनाथं स्वामिविहीनमसि । हा सुरलोकदेवालय ! शून्यो रिक्तोऽसि । तेन विनेत्यर्थः । सखे ! पुण्डरीक ! मां प्रतिपालय स्वमित्रस्य कपिञ्जलस्य प्रतीक्षां कुरु । अहं कपिञ्जलोऽपि भवन्तं त्वामनुनयास्यम्यनुगमिष्यामि । भवन्तं विना, एकाक्यसहायः, क्षणमपि मुहूर्त्तमात्रमपि अवस्थातुं वर्त्तितुं न शक्नोमि न समर्थो भवामि । अद्य साम्प्रतमपरिचित इव अजातपरिचय इव, अदृष्टपूर्व इव एकपदे सहसा । 'तत्क्षणैकपदे तुल्ये' इति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हलायुधः। माम्, उत्सृज्य परित्यज्य कथं प्रयासि गच्छसि। तवेयमतिनिष्ठुरता कुतः। कथय प्रतिपादय त्वदृते त्वदतिरिक्तेन क्व गच्छामि। कं याचे प्रार्थये। कं शरणं त्राणमुपैमि गच्छामि। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। मे मम दिशः शून्या रिक्ता जाताः। जीवितं जीवनं निरर्थकं व्यर्थम्। तपोऽप्रयोजनं प्रयोजनरहितम्। लोकाः निःसुखाः सुखविहीनाः। केन सह परिभ्रमामि भ्रमणं करोमि। कमालपामि केन सह संभाषणं करोमि। केन सह वार्तां करोमि। त्वं भवान्नुत्तिष्ठोत्थानं कुरु। मे प्रतिवचनं प्रत्युत्तरं देहि। सुहृत्! मित्र! ममोपरि तव यत्प्रेम स्नेहस्तत् क्व गतः। सा प्रसिद्धा चिरपरिचिता वा तव, स्मितपूर्वमीषद्धास्यपूर्वकमभिभाषते तच्छीलस्तस्य भावस्तत्ता क्व गता, इत्येवमेतान्यानि च विलपन्तं विलापं कुर्वन्तं विभाव्यमानः ज्ञायमानः स्वरो यस्य स तम्, उन्मुक्तः प्रमुक्तः प्रमुक्त आर्त्तनादो दुःखसूचकध्वनिर्यस्य तम्, एवंविधं कपिञ्जलमश्रौषमज्ञासिषम्।

(३७) तच्चेति। तच्च श्रुत्वा''''दूरादेव मुक्तैकताराक्रन्दा''''तमहं''''महाभागमद्राक्षमिति दूरेणान्वयः। चकारः समुच्चयार्थकः। तद्रोदनं श्रुत्वा दूरादेव, मुक्तस्त्यक्त एकस्तारोऽत्युच्च आक्रन्दः क्रन्दनं यया सा तथोक्ता, सरसस्तडाकस्याच्छोदस्य तीरे तटे या लतास्तासु, आसक्तिः परिलग्नता तया त्रुटयमानं पाटयमानमंशुकं परिधानमुत्तरीयं च यस्याः सा। 'अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात् परिधानोत्तरीयोः'। इति शब्दार्णवः। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति तेन त्वरितैः, अज्ञातोऽपरिचितो यः समो विषमश्च भूमेर्भागः उच्चावचभूभागस्तत्र विन्यस्तैर्निहितैः, पतितैः बहिर्गतैः प्राणैरिव पादानां प्रक्षेपैर्विन्यासैः पदे पदे प्रतिपदं स्खलन्ती स्खलनमधिगच्छन्ती, केनाप्युत्क्षिप्योत्पाटय नीयमाना प्राप्यमाणेवाहं तं पुण्डरीकाध्यासित प्रवेशं गत्वा महाभागमद्राक्षमिति दूरेणान्वयः। उत्प्रेक्षा।

सर इति। सरसोऽच्छोदाभिधानस्य यत् तीरं तस्य समीपवर्त्तिनि निकटस्थायिनि, शिशिराः शीतला ये शीकरा वारिकणास्तेषामासारो वेगवद्वृष्टिस्तं स्रवति क्षरतीति तस्मिन्, एवंविधे शशिमणिशिलातले चन्द्रकान्तप्रस्तरे। चन्द्रकान्तमणिश्चन्द्रं वीक्ष्य द्रवतीति समयः। तु० 'द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।' उत्तररामचरितम् ६।१२। विरचितं निर्मितम्, कुमुदानि धवलकमलानि, कुवलयानि नीलकमलानि, कमलानि सामान्यानि, विविधान्यनेकप्रकाराणि वनकुसुमानि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेषां सुकुमारा कोमला या माला तन्मयमिव मृणालमयं विसविरचितम्, अतएव कुसुमशरः कामस्तस्य ये सायकाः बाणस्तन्मयमिव, एवंविधं शयनं शय्यामधिशयानं शयनं कुर्वाणम् । उत्प्रेक्षा ।

अतीति । अतिनिष्पन्दतयातिनिश्चलतया । अभिलषितशब्दश्रवणसमुत्सुको हि निरुद्धेतरव्यापारो भवतीति भावः । मम पदशब्दं चरणध्वनिम्, आकर्णयन्तं शृण्वन्तमिव । उत्प्रेक्षा ।

अन्तरिति । अन्तःकोपेन मदनागमनकृतेनशमितः शान्तिमुपगतो मदनस्य कामस्य संतापो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया । उष्णेन हि उष्णं शाम्यतीति वैद्यकम् । तत्क्षणं लब्धं प्राप्तं यत् सुखं तेन प्रसुप्तमिव निद्रितमिव । उत्प्रेक्षा ।

मन इति मनसो यः क्षोभश्चपलता तस्य मुनेरनुचितस्य प्रायश्चित्तरूपो यः प्राणायामस्तत्रावस्थितं कृतस्थितिमिव ।

अतीति । अत्यन्तं प्रस्फुरिता प्रदीप्ता प्रभा कान्तिर्यस्य तेन, अधरेण त्वत्कृते त्वन्निमित्तं मम पुण्डरीकस्येयं पुरः परिदृश्यमाना मरणरूपा दशा जाता, इति कथयन्तमिव । उत्प्रेक्षा ।

इन्द्विति । इन्दोश्चन्द्रस्य द्वेषस्तेन परिवर्त्तितोऽधोमुखीकृतो देहो येन तस्य भावस्तत्ता तया, पृष्ठभागे पश्चाद्भागे निपतितैः, शशिनश्चन्द्रस्य किरणैः, पृष्ठं भित्त्वा हृदयभागे गमनाभावेऽपि मदनलक्षणो यो दहनोऽग्निस्तेन विह्वलं विकलं हृदयं तत्र न्यस्तो निहितो हस्तस्तस्य ते नखास्तेषां मयूखाः किरणास्तेषां छलेन मिषेण छिद्रितं संजातविवरमिव । 'अनेन देहस्य स्वच्छत्वं नखकिरणानामुदितारुणचन्द्रकिरणसादृश्यं व्यज्यते' । इति भानुचन्द्रः । उत्प्रेक्षा चात्रालङ्कारः ।

उच्छुष्केति । उच्छुष्का नीरसा चासौ पाण्डुरा चोच्छुष्कपाण्डुरा तया, स्वस्य यो विनाशस्तल्लक्षणं उत्पातस्तेनोत्पन्नया प्रकटीभूतया, मदनः कामः स एव चन्द्रस्तस्य कला तयेव, चन्दनस्य लेखिका अर्धचन्द्रतुल्यरेखा तया रचिता निर्मिता ललाटिका तिलविशेषो यस्य तम् । उत्प्रेक्षा ।

ईषदिति । ईषत् किंचिदालक्ष्या दृश्यमाना परिवृत्ता परिभ्रमन्त्यः, तारकाः कनीनिका यस्मिंस्तेन, अनवरतं संततं यद्रोदनं तेन, आताम्रेणेषत् ताम्रवर्णेन, प्राणस्य य उत्सर्गः परित्यागस्तेनोपजातः समुत्पन्नो योऽश्रुक्षयो नयनजलनाशस्तस्य भावस्तत्ता तया रुधिरमिव रक्तमिव क्षरता स्रवता, मदनः कामस्तस्य ये शरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाणाग्रेतेषां शल्यम्, अन्तःस्थबाणाग्रं तस्य या वेदना पीडा तया कूणित ईषद्वक्रीकृतस्त्रिभागो यस्मिंस्तेन नातिनिमीलितेन नातिमुद्रितेन लोचनस्य नेत्रस्य युगलेन युग्मेनोपलक्षितम् । उत्प्रेक्षा ।

मत्त इति । मदिति मत्तः । सार्वविभक्तिकस्तस् । कपिञ्जलतः, तव पुण्डरीकस्यापरो जनः प्रियतर वल्लभो जातः, इति हेतोः कुपितेन क्रुद्धेन जीवितेन प्राणेन परित्यक्तमिव । उत्प्रेक्षा ।

मन्मथेति । स्वयम्, मन्मथस्य कामस्य या पीडा तया सहैतान् असून् प्राणान्, उत्सृज्येव परित्यज्येव निश्चेतनतया यत् सुखं तदनुभवन्तम् । अत्र सहोक्तिः । उत्प्रेक्षा च । अनयोः सङ्करः । 'सहोक्तिः सा सहार्थस्य वलादेकं द्विवाचकम्' काव्यप्रकाशः १० । तु० 'लज्जया सहागलदक्षमाला' । कादम्बरी । अथवा 'पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः ।' रघु० ३।६१ ।

अनङ्गेति । अनङ्गः कामस्तत् सम्बन्धिनी योगविद्या, तद्वशीकरणविद्येत्यर्थः । तां ध्यायन्तमिव । उत्प्रेक्षा । 'अथवा अनङ्गेन यो यो योगस्तद्विद्या ताम्' । इति बालबोधिनी ।

अपूर्वेति । अपूर्वोऽद्भुतो यः प्राणायामस्तमभ्यस्यन्तमिव । उत्प्रेक्षा । 'श्वासोच्छ्वासयोरसत्त्वात् पूरकरेचकान्यतरत्वाकान्यतरत्वाभावादपूर्वत्वम्' इति बालबोधिनी ।

उपपादितेति । उपपादितं निष्पादितमस्मदागमनं तेन, अनङ्गेन कामेन, प्रणयादिव स्नेहादिव, अपहृतमाकर्षितं प्राणा एव पूर्णपात्रं पारितोषिकद्रव्यं यस्मात्तम् । अपरोऽपि संतोषप्रदं कार्यं सम्पाद्य पारितोषिकं गृह्णाति । उत्प्रेक्षा । तु०—'कन्या ते तनयजन्ममहोत्सवानन्दनिर्भरो हरिष्यति पूर्णपात्रं परिजनः । कादम्बरी । 'तत्कामं भवति पूर्णपात्रवृत्या स्वीकर्तुं मम हृदयं जीवितं च' । मालतीमाधवम् ४ ।

'उत्सवेषु सुहृद्भिर्यत्स्नेहादाकृष्य गृह्यते । तत् पूर्णपात्रम्' इति वृद्धाः । इति भानुचन्द्रः ।

'वर्धापकं यदानन्दादलङ्कारादिकं पुनः ।
आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं पूर्णानकं च तत्' ॥ इति हारावली ।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'हर्षादुत्सवकाले यदलंकारांशुकादिकम्
आकृष्य गृह्यते पूर्णपात्रं पूर्णानकं च तत् ॥'

रचितं कपिञ्जलेन निर्मितं चन्दनललाटिकाया उपरि त्रिपुण्ड्रकं यस्य तम्। धृतं कामसंतापनिवारणाय स्वीकृतं सरसमार्द्रं विससूत्रमेव यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं येन तम्। निरङ्ग केवलरूपकम्। अंसे स्कन्धेऽवसक्तं स्थापितं कदलीगर्भपत्रवत्, चारु रम्यं चीरं कौपीनं यस्य तम्। निरङ्ग केवलरूपकम्। एकावली, एव विशाला विस्तीर्णा अक्षमाला जपमाला यस्य स तम्। निरङ्ग केवलरूपकम्। अविरलो घनोऽमलो निर्मल एवंविधो यः कर्पूरस्य क्षोदश्चूर्णं तदेव भस्म विभूतिस्तेन धवलं शुभ्रम्। आबद्धा मृणालस्य रक्षार्थं प्रतिसरः करसूत्रं तेन मनोहरं शोभनम्। 'भानुचन्द्रस्त्वर्थसौष्ठवमपश्यन् धृतेत्यादीनि मृणालेत्याद्यन्तानि विशेषणानि 'महाभागम्' इति विशेष्यपरतया योजयति'। इति बालबोधिनी। 'भवेत् प्रतिसरो मन्त्रभेदे माल्ये च कङ्कणे।'

व्रणशुद्धौ चमूपृष्ठे पुंसि न स्त्री तु मण्डले।
आरक्षे करसूत्रे च नियोज्ये त्वन्यलिङ्गकः'। इति मेदिनी।

एवंविधं पूर्वोक्तं मनोभवस्य कामस्य व्रतवेषं चन्दनकर्पूरचूर्णधारणरूपम्, आस्थाय गृहीत्वा मम यः समागमस्तस्य मन्त्रं साधयन्तमिव। उत्प्रेक्षा।

कठिनेति। 'कठिनहृदये! निष्ठुरचित्ते! दर्शनमात्रकेणापि, अयमनुगतोऽनुरक्तो जनो न पुनरनुगृहीतो न स्वीकृतः। इति सप्रणयं स्नेहसहितं यथा स्यात्तथा चक्षुषा मां महाश्वेतामुपालंभमानं निन्दन्तमिव। काव्यलिङ्गमुत्प्रेक्षा। अनयोः सङ्करः।

किंचिदिति। किंचिद्विवृत्तः योऽधरस्तस्य भावस्तत्ता तया जीवितं प्राणमपहर्तुं दूरीकर्त्तुम्, अन्तःप्रविष्टैरभ्यन्तरगतैः, इन्दोश्चन्द्रस्य किरणैरिव निर्गच्छद्भिर्निःसरद्भिः, दशनानां दन्तानामंशुभिः किरणैः, धवलितः शुभ्रीकृतः पुरोभागोऽग्रभागो यस्य तम्। उत्प्रेक्षा।

मन्मथेति। मन्मथः कामस्तस्य या पीडा तया विघटमानं विभिद्यमानं यद् हृदयं तत्र निहितेन स्थापितेन वामेन पाणिना करेण। हे प्राणसमे! प्रसीद प्रसन्ना भव। अथ च त्वा प्राणैः समं सह न गन्तव्यम्। इति हृदये स्थितां सन्निहितां मां महाश्वेतां धारयन्तमिव। उत्प्रेक्षा। एतेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी महाश्वेतेति व्यज्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षतरेणेति । नखानां मयूखैः किरणैस्तैः, दन्तुरतया विषमोन्नततया, चन्दनं स्रवता क्षरतेव, उत्तानीकृतेनोर्ध्वीकृतेन, दक्षिणेन करेण चन्द्रस्यातपः प्रकाशस्तं निवारयन्तं निषेधयन्तमिव । उत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः ।

अन्तिकेति । उद्ग्रीव उत्कन्धरस्तेन, अतएव, अचिरं तत्काल उदूर्ध्वं गतं यज्जीवितं तस्य मार्गं विलोकयतेव, अन्तिकस्थेन समीपवर्त्तिना तपसः सुहृदा मित्रेण कमण्डलुना समुपेतं समन्वितम् । काव्यलिङ्गमुत्प्रेक्षा चानयोः सङ्करः ।

कण्ठेति । कण्ठे आभरणीकृतेन भूषणीभूतेन मृणालवलयेन बिसकङ्कणेनोपलक्षितम्, अतएव रजनीकरस्य चन्द्रस्य किरणास्तल्लक्षणः पाशो बन्धनग्रन्थिस्तेनेव संयम्य बद्ध्वा, अन्यल्लोकं लोकान्तरं नीयमानं प्राप्यमाणम् । 'पाशस्तु मृगपश्वादि बन्धने । कर्णान्ते शोभनार्थः स्यात् कचान्ते निकरार्थकः' । इति हैमः । निरङ्ग केवलरूपकमुत्प्रेक्षा चानयोः सङ्करः ।

कपिञ्जलेति । मद्दर्शनात् तदानीं ममावलोकनेन, अब्रह्मण्यमनुचितम् । ब्रह्मणि साधु ब्रह्मण्यं न ब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् । 'अब्रह्मण्यमवध्योक्तौ' । इत्यमरः । इत्येवं, ऊर्ध्वहस्तेनोत्थितकरेण, द्विगुणीभूतः पूर्वस्मादधिकीभूतो बाष्पस्य रोदनस्योद्गमः प्रादुर्भावो यस्मिन् यस्य वा तेन, आक्रोशता आक्षेपं कुर्वता कपिञ्जलेन, कण्ठे परिष्वक्तमालिङ्गितम्, तत्क्षणे विगतं प्रणष्टं जीवितं यस्य स तम्, तं पुण्डरीकं महाभागे पापकारिणी, अहमद्राक्षम् ।

प्राणायाम—योगके आठ अंगोंमें 'प्राणायाम' भी है । 'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।' योगसूत्रम् २।२९। श्वास (शरीरमें प्रविष्ट होनेवाला वायु) और प्रश्वास (शरीरसे निकलनेवाला वायु) की गतिका रुक जाना प्राणायाम है । 'श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः' । यो० सू० २।४९ । किसी पदार्थमें एकाग्र होनेका यह साधन है । इसके तीन भेद हैं : 'बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः' यो० सू० २।५० :—(१) बाह्यवृत्ति—इसमें शरीरसे समग्र प्राणवायुको बाहर निकाल दिया जाता है, इसे रेचक भी कहते हैं । (२) आभ्यन्तरवृत्ति—श्वासको भीतर खींचना आभ्यन्तरवृत्ति है, इसका दूसरा नाम पूरक है । (३) स्तम्भवृत्ति—इसमें मुख बन्द करके दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे नथुनोंको दबाकर श्वासकी गतिको अवरुद्ध कर देते हैं । इसे कुम्भकके नामसे भी अभिहित किया जाता है । सन्ध्योपासनामें प्रणव (ॐ) और तीन व्याहृतियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(भूर्भुवः स्वः) को लगाकर गायत्री मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्राणायाम करना नित्य कर्मोंमें प्रमुख माना जाता है। तुलनीयः "पूरकः कुम्भको रेचः प्राणायामस्त्रिलक्षणः। गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः ॥" याज्ञवल्क्यः।

(३८) उद्भूतेति। उद्भूतः प्रादुर्भूतो मूर्च्छाया अन्धकारो यस्याः साहम्, पातालतलं रसातलमवतीर्णे सती तदा तदानीं क्वागमम्, किमकरवम्, किं व्यलपम्, इति सर्वमेव नाज्ञासिषं नावोधिषम्। उत्प्रेक्षा।

असव इति। तस्मिन् क्षणे मे मम, असवः प्राणाः, अस्य मूढहृदयस्य। स्वस्यैव संतापवित्ततेर्मूढत्वम्। अतिकठिनतयातिकाठिन्येन किम्, हतशरीरकस्य निष्प्रयोजनदेहस्य। अत्र हतशब्दो निन्दावाची। अनेकानां दुःखसहस्राणां सहिष्णुतया सहनतया किम्। दीर्घशोकस्य चिरशुचः विहिततया निर्दिष्टतया किम्। जन्मान्तरोपात्तस्य भवार्जितस्य दुष्कृतस्य पापस्य भाजनतया पात्रतया किम्। दग्धदैवस्य ज्वलितभाग्यस्य दुःखानां दाने निपुणता चतुरता तया किम् 'जन्मान्तरकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।' दुरात्मनो दुष्टहृदयस्य मन्मथहतकस्य कामहतस्य, एकान्तो नितान्तो वामः प्रतिकूलस्तस्य भावस्तत्ता तया। 'वामः कामे सव्ये पयोधरे। उमानाथे प्रतिकूले', इति हैमः। एतेषां मध्ये केन हेतुना कारणेन नोद्गच्छन्ति स्म तदपि न ज्ञातवती। अत्र करुणो रसः। अस्य च वितर्काख्यभावोऽङ्गमिति प्रेयो नामालङ्कारः।

केवलमिति। दुःखभागिनी, अतिचिरात् लब्धा प्राप्ता चेतना चैतन्यं यया सैवंविधा वह्नाग्नाविव पतितम्, असह्यो यः शोकस्तेन दह्यमानं ज्वलन्तमवनौ पृथिव्यां विचेष्टमानमात्मानमपश्यम्।

अश्रद्दधानेति। तस्य मुनिकुमारस्य तन्मरणमात्मनश्च जीवितमसंभावनीयमश्रद्दधाना, अविश्वसती, उत्थाय, हा इदं किमुपनतमागतम्, इत्येवं मुक्तस्त्यक्त आर्त्तनादो यया सा। हा अम्ब! हा तातेत्यादिकं व्याहरन्ती। हा नाथ जीवितनिबन्धन प्राणधारणकारण! आचक्ष्व कथय। अकरुण! करुणारहित! एकाकिनीमसहायाम् अशरणां त्राणविहीनां विमुच्य परित्यज्य क्व यासि गच्छसि। तरलिकां पृच्छ, त्वत्कृते त्वदर्थं या अवस्था मयानुभूता। युगानां सहस्रं तद्वदाचरमाणो दिवसः कृच्छ्रेण कष्टेन नीतः प्रापितः। प्रसीद प्रसन्नो भव, सकृदेकवार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मपि, आलप संभाषणं कुरु, भक्तवत्सलतां हिताकारितां दर्शय, ईषत् किंचिदपि विलोकय दृष्टिपातं कुरु, मे मम मनोरथमभिलाषं पूरय पूर्णं कुरु आर्त्तास्मि दुःखितास्मि, भक्ता त्वदाराधनतत्परास्मि, अनुरक्तास्मि, अनाथा स्वामिविहीनास्मि, बालास्मि, अगतिका निरवलम्बास्मि, दुःखितास्मि, नास्त्यन्यत् शरणं त्राणं यस्याः सा, अस्मि। मदनेन कामेन परिभूता पराजितास्मि, किमिति हेतो दयां कृपां न करोषि ? कथय किमपराद्धं कोऽपराधः कृतः। किं वा नानुष्ठितमाचरितम्। कस्यां वाज्ञायामादेशे नादृतं नारदः कृतः। त्वदनुकूले कस्मिन् कर्मणि वा मया नाभिरतं रागो न कृतः। तुलनीय :—

ह्वेन वाज़ द आँवर,
आई एवर कन्ट्राडिक्टेड योर डिज़ायर,
आर मेड इट नाट माइन टू ?

—शेक्सपियर, हेनरी अष्टम, अङ्क २, दृश्य ४।

येन कारणेन कुपितः क्रुद्धोऽसि। अकारणात् निमित्ताभावात् दासजनं परित्यज्य व्रजन् कौलीनात् जनापवादात् न बिभेषि न भयं करोषि। 'कौलीनं पशुभिर्युद्धे कुलीनत्वापवादयोः। इति धरणिः।

अलीकेति। अलीको मिथ्या योऽनुरागस्तेन यद्विप्रतारणं वञ्चनं तत्र कुशला तया वामया प्रतिकूलया पापया दुष्कृतकारिण्या मया किं वा स्यात्। आः अहमद्यापि प्राणिमि श्वसिमि। कथं न त्वं पतिः जातः, विनयो न मर्यादा, न वा बन्धुवर्गः स्वजनसमुदायः, न परलोकः जात इति शेषः। दुष्कृतकारिणीं मां धिगस्तु धिक्कारोऽस्तु। यस्याः कृते तवेयमीदृशी दशावस्था वर्त्तते। मम सदृशी नृशंसं क्रूरं हृदयं यस्याः सा नास्ति, या अहम्, एवंविधं प्रेमानुरक्तं भवन्तं पुण्डरीकमुत्सृज्य गृहं गतवती। मे गृहेण, अम्बया वा तातेन, बन्धुभिः, परिजनेन वा किम्। हा कं शरणं त्राणमुपयामि गच्छामि। दैव ! विधे ! मयि दुःखपीडितायां महाश्वेतायां दयां कृपां दर्शय। त्वां विज्ञापयामि विनिवेदयामि। भगवति भवितव्यते दयितस्य प्रियस्य दक्षिणां देहि। कृपां दयां कुरु। अनाथामशरणां वनितामबलां नारीं पाहि रक्ष। भगवत्यो वनदेवताः प्रसीदत। अस्य प्राणान् प्रयच्छत ददत। सकलेषु लोकेषु, अनुग्रहं कृपां जनयति, इति। वसुन्धरे ! पृथ्वि ! अव पालय। रजनि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नानुकम्पसे कृपां न करोषि । तात कैलास ! ते शरणं त्राणमागतास्मि, दयालुतां कृपालुतां दर्शय । इत्येवमेतानि चान्यानि च व्याक्रोशन्ती विलपन्ती । कियत् कियन्मात्रं वा विलपनं स्मरामि । ग्रहैर्गृहीतेव, आविष्टावेशविषयीकृतेव, उन्मत्तेव । भूतैर्वेतालैरुपहता विकृतेव व्यलपम् । उत्प्रेक्षा ।

उपरीति । उपर्युपरि पतिता या नयनजलस्य धारास्तासां निकरः समूहस्तस्य च्छलेन व्याजेन विलीयमाना पृथिव्यां लयं गच्छन्तीव । द्रवतां तरलतां नीयमानेव प्राप्यमाणेव । जलाकारेण जलप्रकृत्यात्मीक्रियमाणां निजरूपतां प्राप्यमाणेव । सर्वत्र सापह्नवोत्प्रेक्षा ।

प्रलापेति । दशना दन्तास्तेषां मयूखाः किरणास्तेषां शिखा प्रान्तभागास्तत्रानुगता तया प्रलापानां विलापानामक्षरैरपि साश्रुधारैरिव निष्पतद्भिः । दशनांशूनां प्रथमं स्फुरणादक्षराणां तदनन्तरं बहिर्निष्क्रमणादनुगतत्वम् । दशनमयूखाश्रुधारयोर्धवलत्वसंततत्वसाम्यादुपमानोपमेयभावः । शिरोरुहैः केशैरपि, अविरलानि घनानि विगलितानि क्षरन्ति कुसुमानि येषु तेषां भावस्तत्ता तया, मुक्ताः वाष्पजलानां विन्दवः कणा यैस्तैः । अत्रापि पुष्पनेत्रजलयोः श्वेतत्वसाम्यादुपमानोपमेयभावः । प्रसृता वितता ये विमलमणयस्त एवाश्रूणि येषां तेषां भावस्तत्ता तया । आभरणैरपि प्ररुदितैः कृताश्रुपातैरिवोपेता, तस्य मुनिकुमारस्य जीवितं तद्वदिव, आत्मनः मरणाय स्पृहयन्ती कामयमाना, सर्वात्मना मृतस्यापि पुण्डरीकस्य हृदयं प्रवेष्टुमिच्छन्तीव । उत्प्रेक्षा । करतलेन पाणिना कपोलयोः, आश्यानं शुष्कं यच्चन्दनं तेन श्वेत शुभ्रं जटानां मूलं यत्र तस्मिन्, ललाटे मस्तके, निहितानि सरसान्यार्द्राणि विसानि ययोस्तयोः, अंसयोः स्कन्धयोः, मलयजस्य चन्दनस्य यो रसस्तस्य लवाः कणास्तैः लुलितानि मिलितानि यानि कमलिनीनां पलाशानि पत्राणि तैरवगुण्ठिते वेष्टिते हृदये च स्पृशन्ती, पुण्डरीक ! निष्ठुरोऽसि, कठोरोऽसि, एवमपि अनेन प्रकारेणाप्यार्त्तां पीडितां मां न गणयसि न गणनां करोषि । इत्येवमुपालभमाना निन्दन्ती मुहुरेनं पुण्डरीकमन्वनयमनुनीतवती । मुहुः पर्यचुम्बं परिचुम्बनं कृतीवती, मुहुर्मुहुः भूयो भूयः कण्ठे गृहीत्वा व्याक्रोशम् मुक्तकण्ठं व्यलपम् ।

आ इति । आः पापे ! त्वयापि भवत्यापि मम प्रत्यागमनमदीयागमनकालं यावदस्य पुण्डरीकस्यासवः प्राणा न रक्षिताः न त्राताः इत्येवं तां पुण्डरीककण्ठस्थितामेकावलीमगर्हयं निन्दितवती । अयीति कोमलामन्त्रणे । भगवन् प्रसीद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसन्नो भव, एनं पुण्डरीकं प्रत्युज्जीवय सप्राणं कुरु, इति मुहुः कपिञ्जलस्य पादयोरपतम्। मुहुश्च तरलिकां कण्ठे कृत्वा प्रारुदं रोदनमकरवम्।

अद्येति। तस्मिन् काले, अचिन्तितान्यविचारितानि, अशिक्षितान्यनुपदिष्टानि अदृष्टपूर्वाणि, अनवलोकितपूर्वाणि।

हतपुण्याया नष्टशुभकृत्यायाः मे मम कृपणानि दैन्यज्ञापकानि चाटूनां प्रियप्रायवचनानां सहस्राणि कुतः प्रादुरभवन्, इति, अद्य चिन्तयन्ती विचारयन्त्यपि न जानामि न स्मरामीति भावः। कुतस्ते पूर्वोक्ताः संलापाः, कुतस्तानि हृदिस्थान्यतिकरुणानि दीनानि, विक्लवो विह्वलस्तस्य भाववैक्लव्यं तस्य रुदितानि क्रन्दितानि। अन्यः भिन्न एव कोऽप्यलोकसामान्यः स प्रकारो भेदः। अतिशयोक्तिरलङ्कारः। प्रलयेति। प्रलयस्योर्मयस्तरङ्गास्ता इव अन्तर्वाष्पवेगानां मध्यनयनाश्रुप्रवाहाणामुदतिष्ठन् उत्पन्नाः। अश्रुप्रवाहाणां नयनजलधाराणां जलयन्त्राणीवामुच्यन्त। प्रलापानां विलापानां प्ररोहा अंकुरा इव निरगच्छन् निर्गता बभूवुः। दुःखानां क्लेशानां शिखरशतानीव शृङ्गसमूहा इवावर्धन्त। मूर्च्छानां मोहानां प्रसूतयः संताना इवोदपाद्यन्ताजायन्त। उत्प्रेक्षा।

(३९) इतीति। इत्येवमनेन प्रकारेण, आत्मवृत्तान्तं निवेदयन्त्या कथयन्त्याः समतिक्रान्तं व्यतीतं कथमप्यनिर्वचनीयम्, अतिकष्टं नितान्तक्लेशकरम्, अवस्थान्तरं मुनिकुमारपुण्डरीकलक्षणमनुभवन्त्या इव तस्याः महाश्वेतायाः मूर्च्छा मोहः, चेतनां जहार। सा मूर्च्छिता। उत्प्रेक्षा।

वेगादिति। वेगान्मूर्च्छावेगात्, शिलातले निष्पतन्ती तां महाश्वेतां ससंभ्रमं शीघ्रं प्रसारितकरो विस्तारितपाणिः, परिजनः सेवकजन इव जातपीडः, दुःखितः, चन्द्रापीडो विधृतवान् धारयामास। अश्रुजलं नयनवारि तेनार्द्रेण क्लिन्नेन तदीयेन महाश्वेतासम्बन्धिनैव, उत्तरीयं यद् वल्कलं तस्य प्रान्तेनैकदेशेन, शनैः शनैर्मन्दं मन्दं वीजयन् समीरं चालयन्, संज्ञां चेतनां ग्राहितवान् प्रापितवान्।

उपजातेति। उपजातं समुत्पन्नं कारुण्यं करुणाभावो यस्य सः, वाष्पसलिलं नयनजलं तस्योत्पीडः स्थूलप्रवाहस्तेन, प्रक्षाल्यमानौ धावमानौ कपोलौ यस्य सः, लब्धा संप्राप्ता चेतना चैतन्यं यया सा तां महाश्वेतामवादीत्।

भगवतीति। भगवति महाश्वेते! पापेन पापात्मना मया चन्द्रापीडेन तवायं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोकः पुनर्द्वितीयवारम्, अभिनवतां नूतनतां नीतः प्रापितः। येन कारणेन, ईदृशीं मूर्च्छान्धकारपतितां दशामवस्थाम्, उपनीतासि प्रापितासि।

तदिति। तत् तस्मात् कारणाद्, अनया त्वद्विरहसम्बन्धिन्या कथया, अलम्। कथावर्णनं व्यर्थमिति भावः। इयं कथा संह्रियतां संक्षिप्यताम्। अहं चन्द्रापीडोऽपि श्रोतुम्, असमर्थोऽक्षमोऽस्मीति शेषः। हि यतोऽतिक्रान्तानि व्यतीतान्यपि, प्रियजनस्येष्टजनस्य विश्वासवचनानि विश्रम्भालापा येषु तानि, सुहृज्जनमिलनलोकस्य दुःखानि संकीर्त्यमानानि पुनरप्यनुभवोऽनुभूतिस्तेन समां तां वेदनां व्यथामुपजनयन्ति निष्पादयन्ति। कथमपि महता कष्टेन विधृतान्येतावत्पालितानि, असुलभान् दुःप्रापान्, इमान्, असून्, प्राणान्, पुनः पुनः शोकानले शोकाग्नौ, इन्धनतां काष्ठादितामुपनेतुं प्रापयितुं नार्हसि न योग्यासि। अत्र परम्परितरूपकं शोकानलत्वारोपस्य प्राणेषु काष्ठत्वरोपरूपकारणवत्वात्।

(४०) इत्येवमिति। इत्येवमेतदाकारकेण, प्रकारेण, उक्ताऽभिहिता चन्द्रापीडेनेति शेषः। दीर्घमायतमुष्णं च निःश्वस्य श्वासमादाय वाष्पायमाने नेत्राश्रुभरिते लोचने नयने यस्याः सैवंविधा महाश्वेता, निर्वेद अवमानना तेन सहितं यथा स्यात्तथा अवादीत्। राजपुत्र! या महाश्वेता। अहमित्यर्थः। तया तस्मिन् समये। पुण्डरीकमरणवेलायामिति भावः। अतिदारुणातिशयपूर्णा तस्यां हृतनिशायामशुभरजन्यामेभिः पुण्डरीकमरणशोकसहनसमर्थैः, अतिनृशंसैः, अतिक्रूरैः, असुभिः प्राणैर्न परित्यक्ता वियुक्ता, ते प्राणाः मां महाश्वेतामिदानीं परित्यजन्ति, इति नु दूरापेतमत्यन्तासंभाव्यम्। चकारः पुनरर्थकः। अपुण्यमधर्मस्तेनोपहतायाः निवारितसकलसुखायाः पापायाः पुण्डरीकमरणे हेतुतया पापयुक्तयः मम महाश्वेतायाः, भगवान् प्राक्प्रतिपादितलक्षणः, अन्तयति अन्तं करोति यः स अन्तकः यमः। तु० 'त्वृषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽपि प्रभुः प्रहर्तुम्'। रघु०। अपि दर्शनमवलोकनं परिहरति दूरतस्त्यजति। कठिनं कठोरं हृदयं यस्याः सा तस्याः, मे मम शोकः कुतः स्यात्। अस्य शठहृदयस्य दुष्टचित्तस्य, इदं सर्वं पूर्वोक्तमलीकं मिथ्या। सर्वथा सर्वप्रकारेण त्यक्ता त्रपा लज्जा येन तेन, अहं निरत्रपाणां निर्लज्जानामग्रेसरी पुरोगामिनी कृता।

ययेति। आविष्कृतः प्रकटितः मदनो यस्य तस्य भावस्तत्ता तया, यथा वज्रमय्येव वज्ररचितयेव महाश्वेतया मया, इदं पूर्वोक्तमनुभूतम्, तस्या मम कथनं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रति का गणना, कथने किं काठिन्यमिति भावः। उत्प्रेक्षा, अर्थापत्तिश्चानयोः सङ्करः। अतोऽस्मात् परमधिकं क्विा कष्टतरं दुःखतरम्, अन्यदितरद्, आख्येयं भविष्यति, यत् श्रोतुमाख्यातुं कथयितुं वा नशक्यते, वेति पक्षान्तरे। पतनं पातो वज्रस्य पातस्तस्य सदृशस्य, अस्य, अनन्तरं पश्चाद् यदाश्चर्यमभूत्, केवलं तदाश्चर्षम्, आवेदयामि निवेदयामि। आत्मनः स्वस्य च प्रणानां धारणं तस्य कारणं तस्य लवो लेश इव; अव्यक्तोऽस्फुटो यः समाचारः समुत्पन्नस्तं च कथयामि।

यथेति। यथा दुराशैव मृगतृष्णिका मृगमरीचिका तया गृहीता स्वीकृताहम्, इदं तव पुरतो विद्यमानम्, उपरतकल्पं मृतप्रायम्, परकीयमन्यदीयमिव। भारभूतं भारस्वरूपम्, अप्रयोजनं निरर्थकम्, न कृतं जानातीत्यकृतज्ञस्तम्, हतशरीरं दुष्टदेहं वहामि धारयामि। तत् पूर्वोक्तमलं कृतमेतद् व्यतिरिक्तं श्रूयताम्। ततश्च तदनन्तरे तथाभूते तादृशे, तस्मिन् पूर्ववर्णिते, अवस्थान्तरे, दशान्तरे, मरणे एव एकः निश्चयः यस्याः सा तादृशी, तत् तद् बहुविधान् विलापान् विलप्य तरलिकामब्रवम्।

अयीति। 'अयीति' कोमलामन्त्रणे। निष्ठुरहृदये कठोरचित्ते! उत्तिष्ठ, कियत्कालं यावद् रोदिषि, काष्ठानि आहृत्यानीय चितां विरचय निष्पादय। जीवितस्य प्राणस्येश्वरः प्रभुस्तमनुसरामि, अनुसृत्य गच्छामि।

अत्रान्तर इति। अत्रान्तरेऽस्मिन् समये झटिति शीघ्रं चन्द्रस्य मण्डलं तस्माद् विनिर्गतो बहिरागतः गगनादाकशादवतीर्य, अवतरणं विधाय, केयूरयोः बाहुभूषणविशेषयोः कोटिष्वग्रभागेषु लग्नम्, अमृतस्य फेनस्य पिण्डः समूहस्तद्वत् पाण्डुरस्तं, पवनेन तरलमान्दोलितमुत्तरीयं च तदंशुकं चांशुकोत्तरीयम्, आकर्षन्। उपमा।

उभयेति। उभयोः द्वयोः कर्णयोः श्रवणयोः आन्दोलिते तरले कुण्डले कर्णभूषणे तयोर्या मणीनां प्रभा दीप्तिस्तया अनुरक्तं रञ्जितं गण्डस्थलं कपोलस्थलं यस्य सः।

स्थूलेति। उरसा वक्षःस्थलेन, स्थूलानि मुक्ताफलानि यस्य तस्य भावस्तत्ता तया, ग्रथितं गुम्फितं तारागणमिव, अतितारमतिमनोहरं स्थूलमतिशुद्धं वा। 'तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके।' इति विश्वः। हारं दधानो बिभ्राणः। उत्प्रेक्षा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धवलेति। धवलं शुभ्रं यद् दुकूलं तस्य पल्लवेन प्रान्तदेशेन कल्पितो रचित उष्णीषस्य ग्रन्थिर्वेष्टनग्रन्थिर्येन सः।

अलीति। अलीनां भ्रमराणां यत् कुलं तद्वत् नीलाः कुटिलाः वक्राः कुन्तलाः केशास्तेषां निकरः समूहस्तेन विकटः मौलिश्चूडा यस्य सः। उत्फुल्लं विकसितं कुमुदं कैरवमेव कर्णपूरो यस्य सः।

कामिनीति। कामिन्याः योः कुचौ स्तनौ तयोः कुङ्कमपत्रलताभिः कुङ्कुम-रसरचितपत्रावलिभिः, लाञ्छितौ चिह्नितावंसदेशौ स्कन्दप्रदेशौ यस्य सः। कुमुद्वत् धवलकमलवद्धवलो गौरो देहो यस्य सः। महत् प्रमाणं परिमाणं यस्य सः, तादृशः पुरुष इति०। महापुरुषाणां लक्षणैः, उपेतो युक्तः। दिव्याकृतिः।

स्वच्छेति। स्वच्छं यद् वारि जलं तद्वद् धवलं शुभ्रं तेन, देहस्य प्रभा कान्तिस्तस्याः वितानेन समूहेन दिगन्तराणि प्रक्षालयन्निव' विमलानि कुर्वन्। 'स्वच्छवारि०' इत्यादावुपमा। 'प्रक्षालयन्निव' इत्यत्र उत्प्रेक्षा। अनयोः सङ्करः।

आमोदिनेति। आमोदिना। प्रकृष्टगन्धवता, शरीरतः क्षरता स्रवता, तुषा-रस्तुहिनं तस्य पटलं समूहस्तेनेव, शिशिरेण शीतलेन, अतएव शीतज्वरं जनयता समुत्पादयता, अमृतस्य शीकराः बिन्दवस्तेषां निकरः समूहस्तस्य वर्षणं वृष्टिस्तेन, अनुलिम्पन्, दिगन्तराणीति शेषः। उपमोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः।

गोशीर्षेति। गोशीर्षाकारे मलयपर्वतैकभागे समुत्पन्नत्वाद्गोशीर्षं गोशीर्षा-भिधानमुत्पलगन्धि यच्चन्दनं तस्य रसो द्रवस्तस्य छटाभिस्ततिभिरिवासिञ्चन्। उत्प्रेक्षा।

ऐरावतेति। ऐरावतो देवगजस्तस्य करः शुण्डादण्डस्तद्वत् पीवरौ पीनौ ताभ्याम्। मृणालं बिसं तद्वद् धवलाः शुभ्रा अङ्गुल्यो यतोस्ताभ्याम्, शीतलः स्पर्शो ययोस्ताभ्याम्, बाहुभ्यां भुजाभ्यां तं पूर्ववर्णितं पुण्डरीकमुपरतं मृतं सन्तमु-त्क्षिपन्नुत्पाटयन्। उपमयोः संसृष्टिः।

दन्दुभीति। दुन्दुभिः पटहस्तद्वद् गम्भीरेण स्वरेण ध्वनिना 'वत्से! पुत्रि महाश्वेते! त्वया प्राणा न त्याज्याः परित्यक्तव्याः। अनेन पुण्डरीकेण सह तव समागमः सङ्गमः पुनर्भविष्यति'। इत्येवमनेन प्रकारेण पितेवाभिधाय कथयित्वा, अनेनैव पुण्डरीकेणैव सह गगनतलमाकाशमुद्पतदुत्पपात।

अहन्त्विति। अहं तु तेन व्यक्तिकरेण सभया सातङ्का, सविस्मया साश्चर्या,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकौतुका सकौतूहला च, उद्ध्वं मुखं यस्याः सा, इदं दृश्यमानं यदभूत् किमिति कपिञ्जलमपृच्छम् । असौ कपिञ्जलः ससंभ्रमं शीघ्रं, उत्तरं प्रतिवचनमदत्त्वैव, उदतिष्ठतोत्थितो बभूव । "संभ्रमस्त्वरिते भये । इति कोशः । इति भानुचन्द्रः ।" दुरात्मन् ! दुष्ट चित्र ! मे वयस्यं मित्रम्, अपहृत्य बलात् गृहीत्वा क्व कुत्र गच्छसि इत्यभिधाय कथयित्वा, उदूर्ध्वं मुखं यस्यासौ, संजातः कोपो यस्य सः, सावेगं सजवम्, उत्तरीयवल्कलेन परिकरं कटिभागं बध्नन्, उत्पत्योत्पतनं विधाय तमेवोत्पतन्तं चन्द्रमण्डलविनिर्गतपुरुषमेवानुसरन्ननुसृत्य गच्छन्, अन्तरिक्षमाकाशमुद्गादूर्ध्वमगात् । मे मम महाश्वेतायाः पश्यन्त्या एव च सर्व एव तारागणमध्यं नक्षत्रसमूहमध्यमविशन् प्रवेशं कृतवन्तः ।

(४१) ममेति । तेन कपिञ्जलगमनेन द्वितीयेन द्वितीयप्रियतममरणेनेव, द्विगुणीकृतः शोको यस्या एवंविधायाः, मम सुतरां नितान्तं हृदयमदीर्यत विदीर्णं बभूव । किंकर्त्तव्यमूढाहं महाश्वेता । चकारः समुच्चयार्थकः । तरलिकामब्रुवमकथयम्—'अयीति कोमलामन्त्रणे । न जानासि नावबुध्यसे । एतत् पूर्वोक्तं किमस्तीति कथय । वराकी दीना सा तरलिका तु तत् पूर्वोक्तमवलोक्य स्त्रीस्वभावेन कातरा विकला तस्मिन् क्षणे, शोकमभिभवतीति तेन शोकं प्रत्यादिशता । ततोऽप्यधिकबलेनेत्यर्थः । भयेनाभिभूता पराजिता वेपमाना कम्पमाना अङ्गयष्टिर्यस्याः सा, विषण्णं सखेदं हृदयं यस्याः सा, सकरुणं यथा स्यात्तथावादीत् ।

भर्तृदारिक इति । भर्तृदारिके ! राजपुत्रि ! अहं पापकारिणी न जानामि, किमेतज्जातम् । किंतु, इदं यदतीतं तत् महत्, आश्चर्यमद्भुतम् । एष यश्चन्द्रमण्डलाद्विनिर्गत्य पुण्डरीकमादय गतः, न मानुषस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्य सः, दिव्याकृतिरित्यर्थः । गच्छता गगनलोकमुत्पतता, अनेन दिव्याकारपुरुषेण पित्रा जनकेन भर्तृदारिका स्वामिसुता सानुकम्पं सकृपं समाश्वासिता सान्त्वनायामुपनीता । एवंविधा दिव्या आकृतय आकाराः स्वप्नेऽपि प्रायेण बाहुल्येन, अविसंवादिन्योऽव्यभिचारिण्यो भवन्ति, साक्षात् प्रत्यक्षेण किमुत कथ्यते । विचारयन्ती विवेचयन्ती, अस्य दिव्याकारस्य पुरुषस्य मिथ्याभिधानेऽसत्यभाषणे, अल्पमपि कारणमहं न पश्यामि । अतः कारणाद् विचार्य विवेचनं कृत्वैव, आत्मानम्, अस्मात् प्राणपरित्यागलक्षणो यो व्यवसायो व्यापारस्तस्मात्, निवर्तयितुं युक्तं तर्कसङ्गतम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्यामवस्थायां दशायाम्, अतिमहदिदम्, आश्वासस्याश्वासनस्य स्थानं स्थलम्। अपि च तं दिव्याकारं पुरुषमनुसरन्, अनुसृत्य गच्छन् कपिञ्जलः गत एव। तस्मात् कारणात् कुतः स्थानादयं समागतः; को वायं दिव्याकारः पुरुषः किमर्थं वानेन पुरुषेणायम्, अपगतासुर्गतप्राण उत्क्षिप्योत्पाट्य नीतः, क्व कस्मिन् स्थाने वा नीतः, कस्मात् कारणाच्च, असंभावनीयेनाचिन्तनीयेन समागमस्याशा तस्याः प्रदानेन पुनरमुना पुरुषेण भर्तृदारिका समाश्वासिता, इति सर्वमुपलभ्य प्राप्य ज्ञात्वेत्यर्थः जीवितं मरणं वा समाचरिष्यसि विधास्यसि।

अदुर्लभमिति। हीति निश्चये। अध्यवसितं निश्चितं सत्। मरणमदुर्लभं सुलभम्। एतत्, मरणं पश्चादपि भविष्यति। वृत्तान्तोपलब्ध्यनन्तरमित्यर्थः। जीवनं प्राणान् धारयन् कपिञ्जले भर्तृदारिकामदृष्ट्वा न च स्थास्यति। तेन कारणेन तस्य कपिञ्जलस्य प्रत्यागमनकालः प्रत्यावर्त्तनसमयस्तस्यावधयो मर्यादा येषां ते प्राणास्तावद् ध्रियन्तां धार्यन्ताम्। इत्यमनेन प्रकारेणाभिदधाना मे पादयोर्न्यपतत् पपात।

अहमिति। अहं तु, जीवितस्य प्राणानां तृष्णा तस्याः। सकललोकैः समस्तजनैर्दुर्लङ्घ्यतया दुरतिक्रमतया, स्त्रीस्वभावस्य क्षुद्रतया तुच्छतया च। तस्य महापुरुषस्य वचनेनोपनीतया प्राप्तया दुराशा दुष्टा वाञ्छा सैव मृगतृष्णिका मृगमरीचिका तया, तथा कपिञ्जलस्य प्रत्यागमनस्य प्रत्यावर्त्तनस्य काङ्क्षा कामना तया, तस्मिन् काले तदेव तरलिकावचनमेव, युक्तं समुचितं मन्यमाना जीवितं नोत्सृष्टवती न त्यक्तवती। हीति निश्चये। आशया किमिव न क्रियते किं न विधीयते। सर्वमेव क्रियते। अत्र निरङ्गं केवलरूपकम्। तेन भ्रान्तिमूलैव दुराशेति व्यज्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः। अर्थापत्तिश्च। उक्तालङ्काराभ्यामर्थान्तरन्यासः सङ्कीर्यते।

तामिति। उत्सन्ना मूलत उच्छिन्ना निद्रा यस्याः सा, तथैव तेन प्रकारेणैव क्षितितले भूतले विचेष्टमाना लुठमाना, रेणूनां रजसां कणास्तैर्धूसरा ईषत्पाण्डुरास्तैः। अश्रुजलैर्नेत्रसलिलैः, आर्द्रयोः क्लिन्नयोः संदानितैः संसक्तैः, विमुक्ता अनियन्त्रितत्वेन शिथिलाः, अतएव व्याकुलाः विकीर्णास्तैः शिरोरुहैः केशैः उपरुद्धं व्याप्तं मुखं यस्याः सा। निर्दयोऽत्युच्चो य आक्रन्दः क्रन्दनं तेन जर्जरः शिथिलीयः स्वरः कष्टध्वनिस्तस्य क्षयेन ह्रासेन क्षामः क्षीणस्तेनोपलक्षिता, पापकारिणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहम् । कालरात्रिः कल्पान्तक्षयरजनी तस्याः प्रतिमां तत्तुल्याम् । दुःखस्य दुःसहत्वाद् वर्षाणां सहस्रं तद्वदाचरमाणाम् । यातना जीववेदना तन्मयीमिव । अत्यन्तक्लेशजनकत्वात् । दुःखमयीमिव । स्वजनवियोगेन शरीरदुःखस्यैवानुभूयमानत्वात् । नरकं दुर्गतिस्तन्मयीमिव, निन्दितशरीरधारणाद् यातना-दुःखसान्त्यात् । अग्निमयीमिव, तीव्रसंतापज्वरोत्पादकत्वात् । सरसस्तडाकस्य तस्मिन्नेव तीरे क्षपां रात्रिं क्षपितवती क्षयं नीतवती । उपमा । उत्प्रेक्षा च । अनयोः संसृष्टिः ।

(४२) प्रत्युषसीति । प्रत्युषसि प्रभाते तु, उत्थाय तस्मिन्नच्छोद एव सरसि तडाके स्नात्वा मार्जनं विधाय, कृतो निश्चयो निर्णयो यया सा, तस्य पुण्डरीकस्य प्रीत्या प्रेरणा तमेव पुण्डरीकस्यैव कमण्डलुमादाय गृहीत्वा, तान्येवच वल्कलानि तामेव पूर्ववर्णितामेवाक्षमालां जपमालां गृहीत्वा, संसारस्य निःसारतां क्षणविनाशित्वं बुद्ध्वा ज्ञात्वा, आत्मनो मन्दपुण्यतामल्पसुकृततां ज्ञात्वा । व्यसनानामापदामुपनिपाता उपस्थितयस्तेषाम् । अप्रतीकारं प्रतिविधानरहितं च तद्दारुणं कठोरं चाप्रतीकारदारुणं तस्य भावस्तां निरूप्य विवेच्य, शोकस्य दुर्निवारतामप्रतिहतता-माकलय्याकलनं विधाय, दैवस्य भाग्यस्य निष्ठुरतां क्रौर्यं दृष्ट्वा, स्नेहस्य प्रीतेः । अतिबहुलं दुःखं यस्मिस्तस्य भावस्तत्ता तां चिन्तयित्वा विचार्य, सर्वभावानां निखिलपदार्थानामनित्यतां विनाशितां भावयित्वा च । सर्वसुखानामकाण्डेऽनवसरे भङ्गुरतां विनाशित्वमवधार्य विनिश्चित्य, तातं पितरमम्बां मातरं चाविगणय्य, परिजनेन सेवकेन सह सकलबन्धुवर्गं स्वजनलोकं परित्यज्य दूरीकृत्य, विषयसुखेभ्यो विलासादिव्यापारेभ्यो मनो निवर्त्य पराङ्मुखीकृत्य, इन्द्रियाणि संयम्य नियन्त्र्य, गृहीतं ब्रह्मचर्यं यया सा, देवं त्रैलोक्यनाथमनाथानां त्राणरहितानां शरणं स्थाणुं शिवम् । अव्ययत्वाद् स्थाणुवन्निश्चलस्वस्थानाद्वा स्थाणुः । 'ततः प्रभृति विश्वात्मा न प्रसूते शुभाः प्रजाः । स्थाणुवन्निश्चलो यस्मात्तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः ।' इति पुराणम् । शरणार्थिनी त्राणाभिलाषिणी, अहमाश्रिताश्रयेण कृतवती ।

अपरेद्युरिति । अपरेद्युरन्यस्मिन् दिवसे, कुतोऽपि कस्मादपि जनात्, समुपलब्धो ज्ञातो वृत्तान्तो येन सः, तातो मम पिता, अम्बया मात्रा गौर्या सह, बन्धुवर्गेण च सह, सुचिरं दीर्घकृत आक्रन्दः क्रन्दनं येन सः, एवंभूतः सन्, तैस्तैरुपायैः प्रयत्नैः, बह्वीभिः अभ्यर्थनाभिः प्रार्थनाभिः, अनेकप्रकारैरुपदेशैश्च, नानाविधैः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुप्रकारैः सान्त्वनैः सामवचनैश्च, मे मम गृहागमनाय प्रत्यावर्त्तनाय महान्तं यत्नमुपायमकरोत् ।

यदेति । यदा यस्मिन् काले च, इयं महाश्वेता, अस्माद् व्यवसायाद्युद्योगात्, कथंचिदपि कष्टेनापि व्यावर्त्तयितुं निवर्त्तयितुं न शक्यते न पार्यत इति निश्चयमधिगतवान् ज्ञातवान्, तदा निराशोऽपि, दुहिता पुत्री तस्याः स्नेहस्य दुस्त्याज्यतया, मया महाश्वेतया पुनः पुनर्विसृज्यमानोऽपि गृहगमनाय प्रेर्यमाणोऽपि बहून् दिवसान् स्थित्वा मत्समीपे सशोक एव, अन्तर्मध्ये दह्यमानं प्रज्वलमानं हृदयं यस्यैवंविधो गृहान् अयासीदगमत् । 'गृहाः पुंसि' इति पुंस्त्वम् ।

गत इति । ताते गते सति ततः प्रभृति तद्दिवसादारभ्य, तस्य जनस्य पुण्डरीकस्याश्रुमोक्षमात्रेण कृतज्ञतां दर्शयन्ती, तस्मिन् पुण्डरीके योऽनुरागस्तेन कृशं दुर्बलमपुण्यबहुलमधर्मप्रायम्, अस्तमितास्तं गता लज्जा यस्मिंस्तदमङ्गलभूतमशिवरूपम्, अनेकेऽगणिता ये क्लेशास्तेषामायासाः परिश्रमास्तेषां सहस्रं तस्य निवासस्तम्, बहुविधानां नियमानां शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानां शतं तैः, इदं दग्धशरीरकं शोषन्ती कृशतां प्रापयन्ती; वन्यैश्च फलानि सस्यानि, मूलानि, वारीणि तैः कृत्वा वर्तमाना वृत्तिं दधाना, जपव्याजेन तस्य पुण्डरीकस्य गुणाः धैर्यादयस्तेषां गणाः समूहास्तानिव गणयन्ती, अत्रास्मिन् सरसि तडाके त्रिसन्ध्यं त्रिसायं स्नानमुपस्पृशन्ती, दिने दिने प्रतिदिनं देवं त्र्यम्बकं त्रिलोचनं शिवमर्चयन्ती पूजयन्ती, अस्यां पुरो दृश्यमानायामेव गुहायां तरलिकया सह दीर्घं निरवधिकं शोकमनुभवन्ती, अवसं निवासमकरवम् । सापह्नवा उत्प्रेक्षा 'जपव्याजेने'-त्यादौ ।

सेति । पापकारिणी दुष्कर्मविधायिनी, निर्लक्षणाशुभलक्षणरहिता, निर्लज्जा, क्रूरा कठोरा, निःस्नेहा निष्प्रेमा नृशंसा घातुका, पित्रोरपि क्लेशनिमित्तत्वात् । गर्हणीया निन्दनीया, निष्प्रयोजनोत्पन्ना निरर्थकं जाता, निष्फलं जीवितं प्राणं यस्याः सा, निरवलम्बना निराश्रया निःसुखा सुखवर्जिता साहमस्मीति शेषः । परिकरालङ्कारः 'उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः' ।

किमिति । महाभागः कृतं ब्राह्मवधलक्षणं महापातकं ययैवंविधया मया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृष्टया पृष्टया किं करोति किं करिष्यति। इत्युक्त्वा पाण्डुना धवलेन वल्कलस्योपान्तेन अञ्चलेन, शरन्मेघस्य शरत्कालिकजलदस्य शकलेन खण्डेन शशिनं चन्द्रमिव वदनं मुखमाच्छाद्यावृत्य, दुर्निवारो दुष्प्रतिषेध्यो वाष्पो नेत्रसलिलं तस्य वेगं निवरयितुं दूरीकर्त्तुमपारयन्ती, अशक्नुवन्ती, उन्मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथा, अतिचरं दीर्घकालम्, उच्चैस्तारस्वरेण प्रारोदीत्, रुदनमकार्षीत्।

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट–१

सुभाषितानि

१. अहो जगति जन्तूनामसमर्थितोपनतान्यापतन्ति वृत्तान्तान्तराणि ।
२. अणुरप्युपचारपरिग्रहः प्रणयमारोपयति ।
३. अहो दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम् ।
४. अहो रूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोषस्याक्षीणता विधातुः ।
५. अदूरकोपा हि मुनिजनप्रकृतिः ।
६. अयत्नेनैव खलूपहासास्पदतामीश्वरो नयति जम् ।
७. अतिक्रान्तान्यपि हि संकीर्त्यमानानि अनुभवसमां वेदानामुपजनयन्ति सुहृज्जनस्य दुःखानि ।
८. आशया हि किमिव न क्रियते ।
९. एवं च नामातिमूढं हृदयमङ्गनाजनस्य ।
१०. एवं नामायमतिदुर्विषहवेगो मकरकेतुः ।
११. कालो हि गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा ।
१२. का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेष्वेवंविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवतः ।
१३. किं वा तस्य दुःसाध्यमपरम् ।
१४. क्वायं हरिण इव वनवासनिरतः स्वभावमुग्धो जनः । क्व च विविधविलासरसराशिर्गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता ।
१५. जनयति हि प्रभुप्रसादलवोऽपि प्रागल्भ्यमधीरप्रकृतेः ।
१६. तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितः सर्वात्मना निवारणीयः ।
१७. दुरुपपदपादेष्वर्थेष्वयमवज्ञया विचरति ।
१८. धैर्यधना हि साधवः ।
१९. न हि क्षुद्रनिर्घातपाताभिहता चलति वसुधा ।
२०. दैवहतकस्य विलसितानि न क्षमन्ते दीर्घकालमव्याजरमणीयं प्रेम ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२१. न हि किंचिन्न क्रियते ह्रिया ।

२२. नास्ति खल्वसाध्यं नाम भगवतो मनोभुवः ।

२३. नायं केनाऽपि प्रतिकूलयितुं शक्यते ।

२४. प्राणपरित्यागेनापि रक्षणीयाः सुहृदसवः ।

२५. प्रायेण चैवंविधा दिव्याः स्वप्नेऽप्यविसंवादिन्यो भवन्त्याकृतयः ।

२६. प्रियतमाभिसरणप्रवृत्तस्य जनस्य किमिव कृत्यं वाह्येन परिजनेन ।

२७. बलवती हि द्वन्द्वानां प्रवृत्तिः ।

२८. मूढो हि मदनेनायास्यते ।

२९. यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति मनो वा विद्यते यः पश्यति वा शृणोति वा श्रुतमवधारयति वा यो वा शुभमिदमशुभमिदमिति विवेक्तुमलं स खलूपदेशमर्हति ।

३०. स खलु धर्मबुद्धया विषलतावनं, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहते, रत्नमिति ज्वलन्तमङ्गारमभिस्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलति मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु यः सुखबुद्धिमारोपयति ।

३१. सततमतिगर्हितेनाकृत्येनापि रक्षणीयान्मन्यते सुहृदसून् साधवः ।

३२. सर्वथा न हि किंचिदस्य दुर्घटं दुष्करमनायत्तमकर्त्तव्यं वा जगति ।

३३. सर्वथा न न कंचन स्पृशन्ति शरीरधर्माणामुपतापाः ।

३४. सर्वथा दुर्लभं यौवनमस्खलितम् ।

३५. सुखमुपदिश्यते परस्य ।

३६. स्वल्पाप्येकदेशावस्थाने कालकला परिचयमुत्पादयति ।

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट—२

बाणप्रशंसावचनानि

१. शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥

—कस्यचित्

२. सहर्षचरिताब्धाद्भुतकादम्बरी कथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ॥

—राजशेखरः

३. शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥

—त्रिविक्रमभट्टः, नलचम्प्वाम्

४. युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ॥

—कीर्त्तिकौमुद्याम्

५. जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

—गोवर्द्धनः, आर्यासप्तशत्याम्

६. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्ध्रकृतसंनिधिः ॥

—धनपालः, तिलकमञ्जर्याम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७. सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ।।

—राघवपाण्डवीये

८. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ।।

—श्रीचन्द्रदेवः

९. हृदि लग्नेन बाणेन यन्मंदोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ।।

—त्रिलोचनः

१०. मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वशं याते सुबन्धौ विधेः ।
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृशः ।

—मङ्खकः, श्रीकण्ठचरिते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट—३

साहित्यिक विशेषता

साहित्यिक विशेषताकी दृष्टिसे कादम्बरीका जो एक कथा-ग्रन्थ है, बाण-की अन्य रचना हर्षचरितसे जो एक आख्यायिका ग्रन्थ है, बढ़कर है। कादम्बरी और महाश्वेताके प्रणयकी द्विवृत् कथा बड़े कौशलसे परस्पर गूँथी गयी है। सच तो यह है कि जगत्के साहित्य-इतिहासमें ऐसे ग्रन्थ बहुतही कम हैं, संस्कृतमें तो कोई है ही नहीं। यद्यपि यह ग्रन्थ गद्यमें है, तथापि रसपूर्ण और अलंकारयुक्त होनेके कारण भारतीय साहित्यशास्त्रियोंमें इसे काव्यका नाम दिया है। अंगीरस शृंगार है। इसका विकास बड़ी निपुणतासे किया गया है। मृत्युतकको सम्मिलित करते हुए कामकी दसों दशाओंको दिखलानेमें यह कवि जैसा सफल हुआ है वैसा इससे पहले या इसके बाद कोई दूसरा नहीं। अंगरसोंमें अद्भुत और करुण उल्लेखनीय हैं। इनके उदाहरणोंकी ग्रन्थमें कमी नहीं है। अलंकारोंमें श्लेष बहुत अधिक पाया जाता है। दूसरे दर्जेपर छेक और वृत्यनुप्रास हैं। रसनोपमाका उदाहरण देते हुए कहा गया है, "कपिञ्जल पुण्डरीकके लिए ऐसा ही था जैसे सौंदर्यको यौवन, यौवनको अनुराग और अनुरागको वसन्त"। अन्य अलंकारोंका वर्णन करनेकेलिए यहाँ अवकाश नहीं है। वस्तुतः बाण संस्कृत-साहित्यके श्रेष्ठ कलाकारोंमें गिना जाता है। गोवर्धनाचार्यने उसके विषय में कहा है:—

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥

धर्मदास नामक एक और समालोचकने उसके साहित्यिक कृतित्वको और ही तरहसे कहा है। वह कहता है—

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत् किं? तरुणी! नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जयदेवने और भी आगे बढ़कर कहा है—"हृदयवसतिः पंच बाणस्तु बाणः" (कविता-कामिनीके) हृदयमें बसनेवाला बाण मानो काम है। अन्य समालोचकोंने भी अपने-अपने ढंगसे बाणके साहित्यिक गुणोंकी पर्याप्त प्रशंसा की है।

बाणमें वर्णनकी, माननीय मनोवृत्तियोंके तथा प्राकृतिक पदार्थोंके सूक्ष्म पर्यवेक्षण की एवं काव्योपयोगिनी कल्पनाकी आश्चर्यजनक शक्ति है। केवल प्रधानपात्र ही नहीं, छोटे-छोटे पात्रोंका भी विशद चरित्र-चित्रण किया गया है। नायिकाओंके रागान्तम तीव्र मनोभाव और कन्योचित् लज्जालुताके साथ प्राणियोंके संवेदन और नायक-नायिकाकी अन्योन्य भक्तिका वर्णन बड़ी उत्तम रीतिसे किया गया है। एक सच्चा प्रणयी अपने प्रणयपात्रसे पृथक् होनेकी अपेक्षा मरना अधिक पसन्द करता है। हिमालय पर्वतके सुन्दर दृश्यों, अच्छोद सरोवर और अन्य प्राकृतिक पदार्थोंका सुन्दर वर्णन कविकी साहित्यिक सूक्ष्मका परिचय देता है। मुनियोंके शान्तिमय और राजाओंके आडम्बरपूर्ण जीवनका निपुण वर्णन तुलनाकी रीति पर बड़े ही उत्तम ढंगसे किया गया है।

सचमुच बाणकी वर्णन-शक्ति बहुत भारी है, इसीलिए उसके विषयमें कहा गया है कि "बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्"। बाण ने सारे जगत्को जूठा कर दिया है।

कादम्बरीके अध्ययनसे यह भी मालूम होता है कि बाणका भाषापर बड़ा विद्वत्तापूर्ण अधिकार था जिसके कारण उसने अप्रसिद्ध और कठिन शब्दोंका भी प्रयोग कर डाला है। श्लेषके संयोगसे तो उसका ग्रन्थ किसी योग्य टीकाके विना समझना ही कठिन हो गया है। आधुनिक बाटोंसे तोलनेवाले पाश्चात्य आलोचकोंने इन त्रुटियोंकी बड़ी कटु आलोचना की है। जैसा पहले कहा जा चुका है, "उसके गद्यको एक भारतीय जंगल कहा गया है जिसमें झाड़झंखाड़ोंके उग आनेके कारण पथिक, जबतक मार्ग न बना ले, आगे नहीं बढ़ सकता, और जिसमें उसे अप्रसिद्ध शब्दोंके रूपमें भयावह जंगली जानवरोंका सामना करना पड़ता है।"

ग्रन्थमें समानुपातिक अंगोपचयका ध्यान नहीं रखा गया है, कदाचित लेखक के पास किसी प्रसंगके वर्णनकी जब तक कुछ भी सामग्री शेष रही है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब तक उसने उस प्रसंगका पिंड नहीं छोड़ा है। उदाहरणार्थ, एक सीधी-सादी बात थी कि एक उज्जैन नगर था। अब इसकी विशेषणमाला जो प्रारम्भ हुई है दो पृष्ठतक चली गयी है। कभी-कभी समास-गुम्फित विशेषण एक सारी-की-सारी पंक्तितक लम्बा हो गया है। चन्द्रापीडको दिया हुआ शुकनासका उपदेश सात पृष्ठोंमें आया है। जब तक प्रत्येक सम्भव रीतिसे बात तरुण राजकुमारके मनमें बिठा नहीं दी गयी, तब तक उपदेश समाप्त नहीं किया गया। किन्तु बाणकी शैलीका वास्तविक स्वरूप यह है कि वह प्रतिपाद्य अर्थके अनुसार बदलती रहनेवाली है। बहुतसे प्रकरणोंमें बाणकी भाषा पूर्ण सरल और अवक्र है।

—प्रो० हंसराज अग्रवाल

महाकवि बाण सम्राट हर्षके समय (६०६—६४८ ई०) में हुए। उनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—हर्षचरित और कादम्बरी। बाणके व्यक्तित्वका विश्लेषण करते हुए दो बातें मुख्य ज्ञात होती हैं—एक तो जन्म से ही उनकी बुद्धि बड़ी गहरी (स्वभावगम्भीर थी) थी, उनकी मेधाका विस्तार बहुत था, जैसे एक बड़े पात्रमें बहुत-सी सामग्री समाती है, वैसेही उनके मनमें प्रत्येक विषयकी अतुलित सामग्री भर जाती थी। दूसरे, वे प्रत्येक वस्तुकी जानकारी प्राप्त करनेकेलिए सदा उत्सुक रहते थे। वे कहते हैं—"अतिपरवानस्मि कुतूहलेन (६४), अर्थात् किसी नयी बातको जाननेकेलिएँ मेरे मनमें तुरन्त ही कुतूहलका ऐसा वेग उठता है कि मैं लाचार हो जाता हूँ।" हम आगे देखेंगे कि अजिरवती के किनारे मणितारा गाँवके पास पड़ी हुई हर्षकी छावनीमें जब वे हर्षसे मिलने गये, तब महाप्रतिहारोंके प्रधान दौहारिक पारियात्रके साथ सम्राटके समीप जाते हुए उन्हें मार्गके बायीं ओर एक बाड़ा दिखाई पड़ा और उन्होंने पूछा कि यह क्या है? और, यह जानकर कि वह हर्षकी गज-शाला थी, जहाँ उनका मुख्य हाथी दर्पशाप रहता था, बाणने कहा—"हाँ, मैंने दर्पशापका नाम सुना है, उत्कण्ठा से मैं परवश हूँ; यदि आपत्ति न हो तो पहिले उसीको देख लूँ।" इस प्रकार गंभीर धारणाशक्ति और जानकारीकी पैनी उत्सुकता, इन दो जन्मसिद्ध गुणोंसे बाणका व्यक्तित्व बना था। साथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही, उनके जीवनके अल्हड़पन और घुमक्कड़ी प्रवृत्तिने एक तीसरी विशेषता और पैदा कर दी थी और वह थी संसारका अपनी आँखोंसे देखा हुआ चौचक अनुभव। उन्होंने घाट-घाटका पानी पिया था, अनेक लोगोंसे मिले थे और सब तरहकी दुनिया देखी थी।" देशान्तर देखनेकी उत्कण्ठासे भरकर मैं घरसे निकल पड़ा—देशान्तरालोकनकौतुकाक्षिप्तहृदयः गृहान्निरगात् (४२) बड़े-बड़े राजकुलोंके उत्तम व्यवहार और शिष्टाचार देखे, गुरुकुलों और विद्यापीठोंमें रहकर वहाँ का जीवन भी देखा कि किस प्रकार वहाँ निरवद्य विद्या अर्थात् उत्तम ज्ञानकी साधना की जाती थी और, मैं उन गोष्ठियोंमें भी शामिल हुआ जिनमें अनमोल बातोंका शमाँ बँधता था और जो गम्भीर गुणोंकी खान थीं। सूझबूझवाले विदग्धजनोंकी मंडलियों में भीतर घुसकर (गाहमानः) उनकी थाह ली और उनमें खोया नहीं गया।" इस प्रकार देशाचार और लोकाचारोंका गाढ़ा अनुभव प्राप्त करके और अपने-आपको घूमनेकी खुली छूट देकर जब वे लम्बे अर्सेके बाद फिर अपने घर वापस आये तब उनके अन्दर पुश्तैनी विद्याकी जो प्रतिभा थी वह स्वाभाविक रसके साथ चमक उठी—पुनरपि तामेव वैपश्चितीमात्मवंशोचितां प्रकृतिमभजत् (४३)।

बाणकी बुद्धि चित्रग्राहिणी थी। उसपर फोटोकी भाँति प्रत्येक नये चित्रकी गहरी छाप पड़ जाती थी जिसमें उन-उन दृश्योंका सांगोपांग रूप देखा जा सकता था। सूक्ष्मदर्शन बाणकी विशेषता है। पाणिनिकेलिए भी काशिकाकारने लिखा है कि उनकी निगाह वस्तुओंके ब्यौरेवार अवलोकनमें बड़ी पैनी थी—सूक्ष्मेक्षिका वर्तते सूत्रकारस्य:। सूत्र ४।२।७४। बाणकी सूक्ष्मावलोकन शक्ति और कविसुलभ प्रतिभाके अनेक प्रमाण हर्षचरित और कादम्बरीमें मिलते हैं। ये दो ग्रन्थ भारतीय इतिहासकी सांस्कृतिक सामग्रीकेलिए अमृतके झरने हैं। क्योंकि सौभाग्यसे बाणका समय निश्चित है, इसलिए यह साक्ष्य और भी अधिक मूल्यवान है।

सातवीं शतीकी भारतीय संस्कृतिका रूप-चित्रण करनेकेलिए बाणभट्ट किसी विशिष्ट कला-संग्रहके उस संग्रहाध्यक्षकी भाँति हैं जो प्रत्येक कलात्मक वस्तुका पूरा-पूरा ब्यौरा दर्शकको देकर उसके ज्ञान और आनन्दकी वृद्धि करना चाहता है। अथवा बाण उस महास्थपतिके समान हैं, जिसकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विराट् बुद्धि किसी अनगढ़ पहाड़में से सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंग-प्रत्यंगसमेत कोई नवीन महाप्रासाद गढ़कर तैयार करती है। बाण वर्णनात्मक शैलीके धनी हैं। तिलकमंजरीकार धनपाल (ग्यारहवीं शती) ने उनकी उपमा अमृत उत्पन्न करनेवाले गहरे समुद्रसे दी है। बाणके वर्णन ही उनके काव्यकी निधि हैं। इन वर्णनोंसे उकताना ठीक नहीं। इनके भीतर पैठकर युक्तिसे इनका रस लेना चाहिए। जब एक बार पाठक इन वर्णनोंको अणुवीक्षणकी युक्तिसे देखता है, तब उनमें उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है एवं बाणकी अक्षराडम्बरपूर्ण शैलीके भीतर छिपे हुए रसवाही सोते तक वह पहुंच जाता है। उस समय यह इच्छा होती है कि कविने अपने वर्णनके द्वारा चित्रपट-पर जो चित्र लिखा है, उसकी प्रत्येक रेखा सार्थक है और चित्रका समग्र रूप प्रस्तुत करनेमें सहायक है। जिस प्रकार रंगवल्लीकी विभिन्न आकृतियों से भूमि सजायी जाती है, उसी प्रकार बाणने अपने काव्यकी भूमिका मंडन करनेकेलिए अनेक वर्णनोंका विधान किया है। कभी-कभी रसलोभी पाठकका मन चाहने लगता है कि यह वर्णन कुछ और अधिक सामग्रीसे हमारा परिचय कराता। विशेषतः सांस्कृतिक सामग्रीके विषयमें इच्छा उत्कट हो उठती है। महाप्रतिभाशाली इस लेखकने अपनी विशेष प्रकारकी श्लेषमयी वर्णनात्मक शैलीके द्वारा जो कुछ हमें दिया है, वह भी पर्याप्त है और उसकेलिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

बाणके सांस्कृतिक अध्ययनका अन्तर्यामी सूत्र कुछ गहराईतक उनके शास्त्रमें पैठनेपर हमारे हाथ आया। वह यह दृष्टिकोण है कि बाणने हर्ष-चरित और कादम्बरी अपने समकालीन सातवीं शतीके पाठकों के लिए लिखे थे, जब कि वह संस्कृति जीवित थी और उसके पारिभाषिक शब्दोंका निश्चित अर्थ था। बाणको खींचकर बीसवीं शतीमें लाकर जब हम उसका अर्थ करने बैठते हैं, तब सांस्कृतिक शब्द धुंधले पड़ जाते हैं। किन्तु, जब हम स्वयं सप्तम शतीमें अपने-आपको ले जाकर बाणके पाठक बन जाते हैं, तब प्रत्येक शब्द निश्चित अर्थतक पहुंचने केलिए हमारी जिज्ञासा उत्कट हो जाती है। उदाहरणार्थ, बाणके पाठकोंकेलिए बाह्यास्थान-मंडप, राजद्वार, अलिन्द, धवलगृह, संजवन या चतुःशाल, प्रग्रीवक, चन्द्रशाला, प्रासाद-कुक्षि, दीर्घिका,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्नानभूमि, प्रतिहारगृह, प्रतोली, गवाक्ष आदि प्रत्येक शब्दका निश्चित अर्थ था, जिसके मूलतक पहुँचे विना हम हर्षचरित या कादम्बरीके वर्णनोंको स्पष्टतासे कभी नहीं समझ सकते। इस जिज्ञासाके साथ हम वाणके अध्ययन की नयी दीक्षा लेते हैं और प्रत्येक नये शब्दकेलिए क्या और क्यों प्रश्नोंका उत्तर ढूँढ़ने लगते हैं। इस नये दृष्टिकोणको हम सांस्कृतिक संप्रश्नका व्रत कहते हैं। न केवल वाणके ग्रन्थों में, वल्कि समस्त संस्कृत-साहित्यकेलिए यह संस्कृति-विषयक संप्रश्नका व्रत आवश्यक है।

वाणभट्टका समय सातवीं शतीका पूर्वार्द्ध है। उस समय गुप्तकालीन संस्कृति पूर्णरूपसे विकसित हो चुकी थी। एक प्रकारसे स्वर्णयुगकी वह संस्कृति उत्तरगुप्तकाल अपनी संध्या वेलामें आ गयी थी। और सातवीं शतीमें भी उसका वाह्य रूप भलीभाँति पुष्पित, फलित और प्रतिमंडित था। कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, आचार-विचार आदिकी दृष्टिसे वाणके अधिकांश उल्लेख गुप्तकालीन संस्कृतिपर भी प्रकाश डालते हैं। अभी तक बाणका अध्ययन प्रायः काव्यकी दृष्टिसे ही होता रहा है। किन्तु इन व्याख्यानोंके रूप में हर्षचरित्रका जो अध्ययन प्रस्तुत करनेका हमारा विचार है, उसमें विशेष-कर सांस्कृतिक सामग्रीकी दृष्टिसे बाणके वर्णनोंकी जाँच-पड़ताल की जायगी। यह दृष्टिकोण वाणके काव्यकेलिए पारसकी तरह है। इसके प्रकाश में बाणके वे अनेक वर्णन जो पहले नीरस और बोझिल प्रतीत होते थे, अत्यन्त रुचिकर, सरस और हृदयग्राही लगने लगते हैं। इच्छा होती है कि एक-एक वाक्य, पदवन्ध और शव्दके भीतर प्रविष्ट होकर उसके प्रकट अर्थ एवं श्लेषमें छिपे हुए गूढ़ अर्थको अवगत किया जाय। इस युक्तिसे वाणका हर्षचरित्र सांस्कृतिक इतिहासका अपूर्व साधन बन जाता है। उसे एक बार पढ़कर तृप्ति नहीं होती, किन्तु बारम्बार उसके अर्थोंमें रमकर शव्दोंसे निर्मित होनेवाले चित्रको आत्मसात् करनेकी इच्छा होती है।

वाणने काव्य और गद्यकी शैलीके विषयमें विचार प्रकट किये हैं। इस समय लोकमें राग-द्वेषसे भरे हुए, वाचाल, मनमाने ढंगसे कविता करनेवाले (कामकारिणः) कुकवि भरे हुए हैं। ऐसे कवि घर-घरमें हैं, जो वस्तुके यथार्थ स्वरूपमात्रके वर्णनको ही कविता समझते हैं किन्तु नवनिर्माणकारी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नयी वस्तु उत्पन्न करनेवाले कवि थोड़े ही हैं—असंख्या जातिभाजः उत्पादका न बहवः कवयः (२, ३)। इसमें जातिभाजः पदमें बाणने अपनेसे पूर्ववर्ती शैलीकी ओर संकेत करते हैं। बौद्ध संस्कृति-साहित्यकी काव्य-रचना, जिसका गुप्तकालमें उत्कर्ष हुआ, स्वाभावोक्ति पसन्द करती है। वस्तुका जो यथार्थ रूप है, उसे वैसा ही कहना पहलेके कवियोंको इष्ट था। ललितविस्तार, आर्यशूर कृतजातकमाला आदि ग्रन्थ इसी शैलीमें हैं। किन्तु शनैः शनैः काव्योक्तिसे प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई और वक्रोक्तिकी ओर लोगोंका झुकाव हुआ। वक्रोक्ति-शून्य कविता भी कोई कविता है, यह विचार जनतामें फैल गया। लोगोंका झुकाव श्लेष-प्रधान शैलीकी ओर हुआ।

बाणके पूर्ववर्ती सुबन्धुने अपनी वासवदत्तामें एक-एक शब्दमें श्लेष डालकर काव्य रचना करनेकी निपुणताका उल्लेख किया है—"प्रत्यक्ष रश्लैषमय प्रबन्धविन्यासवैदग्ध्य।" बाणने कादम्बरीकी भूमिकामें लगातार श्लेषोंसे भरी हुई (निरन्तरश्लेषघना) शैलीकी प्रशंसा की है। साथ-ही-साथ सुन्दर जाति अर्थात स्वाभावोक्ति-प्रधान वर्णनोंको भी ग्राह्य माना है। बाणका कहना है—"उदीच्य लोगोंमें श्लेष-प्रधान शैलीका रिवाज है, पश्चिम भारतमें शैलीपर उतना ध्यान नहीं जितना अर्थ या कथावस्तुपर। दाक्षिणात्य लोगोंमें कल्पनाकी उड़ान या उत्प्रेक्षाही काव्यका गुण है, लेकिन गौड़-देशवासी, अर्थात् प्राच्य भारतमें विकट शब्द-योजना (अक्षराडम्बर) ही पसन्द की जाती है। वस्तुतः यह काव्य-शैलीकी एकांगी दृष्टि थी। बाण स्वयं कहते हैं कि "बढ़िया काव्य वह है, जिसमें पाँच बातोंका एक साथ मेल हो, अर्थात विषयकी नवीनता, बढ़िया स्वभावोक्ति, ऐसा श्लेष जो क्लिष्ट न हो, स्फुटरस अर्थात जिसकी प्राप्तिके-लिए पाठकको हाथ-पैर न मारना पड़े और भारी-भरकम शब्द-योजना जिसमें ये पाँच गुण एक साथ हों, वही रचना सचमुच श्लाघनीय है।" इस समन्वय-प्रधान दृष्टिको अपनाना—यही बाणकी विशेषता है और उनकी सफलताका रहस्य भी। बाणमें विषयकी नूतनता, श्लेष-प्रधानशब्दोंकी अद्भुत योजना, वस्तुओंके यथार्थ वर्णन—हाथी, घोड़े, सेना, सैनिक आदिके और स्वभावबहुल पदविन्यास, ये चारों गुण एक साथ आदृत हुए हैं, और इनके साथ कथावस्तु एवं शैलीके ग्रंथनमें स्फुटरूपसे बहती हुई रसधाराभी सहजही प्राप्त होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रमांक

बाणकी गद्यशैली तीन प्रकारकी है—एक दीर्घ समासवाली, दूसरी अल्प-समासवाली और तीसरी समाससे रहित। समासोंसे भरी हुई शैलीका प्राचीन नाम चूर्णक और समासरहित शैलीका नाम आविद्ध था। चतुर शिल्पीकी भाँति बाण इन शैलियोंको अदल-बदलकर इस प्रकार काव्यमें सजाते हैं कि वर्णन बोझिल बनकर पाठकके मनको आक्रान्त कर दे। उनकी रीति है कि समासबहुल उत्कलिका-शैलीके बाद फिर ढील छोड़ देते हैं। प्रायः बड़े-बड़े वर्णनोंमें उत्कलिका-शैलीका आश्रय लिया गया है। प्रचण्ड निदाघकाल (४६-४७), उसमें चलनेवाली गरम लू (४८-५०) और वनको जलाती हुई दावाग्नि (५०-५२)के वर्णनमें इस शैलीकी अच्छी झाँकी मिलती है। कभी-कभी एक ही वर्णनमें शब्दाडंबरपूर्ण उत्कलिका-शैलीसे आरम्भ करके समासरहित आविद्ध शैलीसे अन्त करते हैं। इसका अच्छा उदाहरण युवक दधीचका वर्णन है (२१-२४)। उसके तुरन्त बाद ही उसके पार्श्वचरके जीवनमें छोटे-छोटे समासोंसे परिपूर्ण चूर्णक-शैलीका आश्रय किया गया है। बाणने भट्टारहरिचन्द्र के गद्यकाव्यकी शैलीको आदर्श माना है। उसमें पदोंकी सुन्दर रचना थी और उसकी शैली या रीति भी मनोहर। इस समय हरिचन्द्रकी यह गद्य-रचना उपलब्ध नहीं है। बाणकी दृष्टिमें शब्द ऐसे होने चाहिए कि जो सुखप्रबोध हों, अर्थात सरलतासे समझमें आ सकें, एवं जो सुन्दर अक्षरोंसे बने हों। ऐसे शब्दोंसे ग्रथित आख्यायिका सबको अच्छी लगनेवाली होती है। बाणने सराहनीय कथाकेलिए एक विशेषण किया है—'सर्ववृत्तान्तगामिनी' अर्थात जो सत्पुरुषोंके चरित, उपाख्यान या लोक-वृत्तान्त हैं, उन सबका परिचय कथा-लेखकको होना चाहिए। हर्षचरित और कादम्बरी दोनों में इस प्रकार की व्यापक जानकारी मौजूद है।

—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक 1255
दिनांक 1446

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमुख संस्कृत प्रकाशन

भुशुण्डि रामायण (पूर्व खण्ड)	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह	१००.००
अभिज्ञान शाकुन्तलम्	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी	१५.००
संस्कृत भाषाविज्ञान	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	१६.००
प्रारम्भिक रचनानुवाद कौमुदी	" "	३.००
रचनानुवादकौमुदी	" "	५.००
प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी	" "	१८.००
संस्कृत व्याकरण	" "	२०.००
संस्कृत निबन्ध शतकम्	" "	१५.००
अलङ्कारप्रस्थानविमर्शः	डॉ० लक्ष्मीनारायण सिंह	१०.००
मुद्राराक्षसम् (विशाखदत्त)	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी	१५.००
वेदचयनम्	विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी	१०.००
कादम्बरी : कथामुख	डॉ० देवर्षि सनाढ्य तथा विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी	६.००
पालि प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह	डॉ० रामअवध पाण्डेय तथा डॉ० रविनाथ मिश्र	१५.००
ऋ [illegible]भाष्य भूमिका	डॉ० हरिदत्त शास्त्री	५.००
अभिनव का रसविवेचन	नगीनदास पारिख तथा डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त	२०.००
अभिनव रस सिद्धान्त	डॉ० दशरथ द्विवेदी	६.००
दशरूपकम्	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी	१६.००
संस्कृत शिक्षकम्	पं० गोपालशास्त्री 'दर्शनकेसरी'	३.००
गोमहिमाभिनयनाटकम्	" "	४.००
वक्रोक्तिजीवितम्	डॉ० दशरथ द्विवेदी	२०.००

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri